चरित-सुधा

द्वितीय वृष्टि

✲ श्रीश्रीराधारमणौ जयति ✲

भज निताइ गौर राधे श्याम । जप हरे कृष्ण हरे राम ॥

चरित-सुधा

श्रीश्रीमद्

राधारमण चरणदासदेव बाबाजी महाशय

[बड़े बाबा]

का

जीवन-चरित्र

——✲——

द्वितीय खंड

न्योछावर: अजिल्द, तीन रुपए
सजिल्द, साढ़ेतीन रुपए

प्रकाशक :

डा० ब्रजवल्लभदास नवनीतलाल मेहता, एम. ए., पी. एच. डी.
निताइ-गौराङ्ग भवन रमणरेती, वृन्दावन ।

प्रकाशन तिथि :

चैतन्याब्द ४८४
विक्रम सम्वत् २०२६
ईस्वी सन् १९६९

सम्पादक एवं अनुवादक :

डा० अवधबिहारी लाल कपूर, एम. ए., डी. फिल.
श्रीब्रजगोपाल दास एम. ए.

प्राप्तिस्थान :

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवासंघ, मथुरा ।
राधारमण निवास, रमणरेती, वृन्दावन ।

मुद्रक :

मोहनचन्द्र गोस्वामी
मोहन प्रेस,
श्रीरसिक बिहारी मार्केट
वृन्दावन

श्रीश्रीमद् राधारमण चरण दास देव

सूची-पत्र

—*—

—:※:—

※ श्रीगुरवे नमः ※

बन्दना

श्रीगुरुं करुणासिन्धुं प्रेमानन्दमयं विभुम् ।
अगत्येकगतिं बन्दे मंगलालयविग्रहम् ॥

जय जय गुरु, वाञ्छाकल्पतरु,
जीवने मरने गति ।
करि प्रणिपात, एइ कर नाथ,
तोमातेइ थाके मति ॥
जय गणपति, करिये प्रणति,
अभय चरन तले ।
तोमार प्रसादे, सकल विपदे,
पार हब अवहेले ॥
देवी वीनापाणि, श्वेताजवासिनी,
अज्ञाने ज्ञानदायनी ।
अविद्यानाशिनी, विद्या प्रदायनी,
सर्व चित्त विमोहिनी ॥
शङ्कर शङ्करी, ईश्वर ईश्वरी,
परम मंगलमय ।

नवद्वीप दादा ! मातोयारा सदा,
जे कथा शुनिया तुमि ।
शे कथा बलिते, साध हय चिते,
लिखिते ना जानि आमि ॥

तब प्राणधन, श्रीराधारमण,
तोमा सबाकार सने ।
अविद्या नाशिया, तत्वज्ञान दिया,
कर दिव्य ज्ञानोदय ॥

सह साङ्गोपाङ्ग, निताइ गौरांग,
दयामय अवतार ।
सवार चरणे, कायमन प्राणे,
कोटि कोटि नमस्कार ॥

श्याम बनमाली, करेते मुरली,
चुड़ाय मयूर पाखा ।
सर्वरसधाम, जय राधाश्याम,
हृदि माझे दाओ देखा ॥

सरबस धन, श्रीराधारमण,
नीलाचले लीलाकारी ।
करुणार सिन्धु, पतितेर बन्धु,
वासना पूरनकारी ॥

जे जे लीला खेला, सदा आचरिला,
स्फूर्ति कर मोर प्राणे ॥
लाभ कि अलाभ, भाव कि अभाव,
इथे नाहि मोर दाय ।
जथा जथ जाहा, लिखाइओ ताहा,
एइ निवेदन पाय ॥
दादा श्रीचैतन्य, भक्त अग्रगण्य,
भावे गड़ा तनुखानि ।
करि निबेदन, कृपा वितरन,
कर अभाजन जानि ॥

शुद्धि-पत्र

(कृपया ग्रन्थ पढ़ने से पूर्व अशुद्धियाँ शुद्ध करलें।)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७३	नीचेसे आठवीं	धावसे	भावसे
७८	,, छटी	कहें इनमें	कहें तो इनमें
८३	,, सातवीं	उसकी	उनकी
९१	ऊपरसे सातवीं	नष्ट कर	नष्ट न कर
९७	नीचेसे छटी	भागने	मागने
११३	,, आठवीं	कह रही हैं कोई-कोई	कोई-कोई कह रही हैं
१३८	,, चौथी	यन	पन
१४०	ऊपरसे पहली	हडक	हउक
१५८	नीचेसे छटी	ध्यान कर	ध्यान न कर
२१४	ऊपरसे तेरहवीं	उत्फुल्लि	उत्फुल्लित
२१७	,, दसवीं	चाँद	चांदा
२२१	,, दूसरी	घरसे	घरको
२२२	नीचेसे छटी	निरखिला	निरखिया
२२३	,, तीसरी	नागि	लागि
२६१	ऊपरसे दसवीं	करने	करये
२६३	नीचेसे आठवीं	उसके	उनके
२७२	,, तीसरी	रिपुओको सहायता करता है; प्रकृत अप्रकृत	रिपुओंको सहायक, प्राकृत को अप्राकृत
२९२	ऊपरसे आठवीं	सबे	तबे
२९३	,, बारहवीं	भजत	भजय

-

कृष्णनगरमें नगरकीर्त्तन

श्रीमन्महाप्रभुकी नित्यविहार भूमि श्रीधाम नवद्वीपमें पूज्यपाद बाबाजी महाशय अपने गुरुदेवके आश्रममें नित्य नूतन भक्तों सहित सकीर्तनकर संकीर्त्तनानन्दकी एक अपूर्व बाढ़में बड़े-बूढ़े, स्त्री और पुरुष सभीको न जाने किस ओर बहा लिये जा रहे थे।

उसी समय एक दिन देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती † आकर बाबाजी महाशयसे बोले 'दादा! चलिये एक बार कृष्णनगर देख आयें।' बाबाजी महाशय खुश होकर बोले 'अच्छा, चलो कल ही चलें।' साथियोंका भी यही मत हुआ। दूसरे दिन प्रात: कृत्यसे निवृत होकर बाबाजी महाशय सब भक्तों को साथ ले आश्रमसे निकले। गङ्गापार होते ही 'आबार बल हरिनाम आबार बल' गाते हुए प्रेमानन्दमें विभोर हो नाचते नाचते कृष्णनगरकी ओर चल पड़े। साथी सभी सुधबुध खो कर पीछे-पीछे चले जा रहे थे। बालक, वृद्ध, स्त्री और पुरुषों

† ये श्रीधाम नवद्वीपमें 'जय निताई' नामसे विख्यात थे। पहलेसे ही बाबाजी महाशयके साथ इनका भ्रातृ भाव था। पहले ये सिलेट जिला स्कूलके हेडमास्टर थे।

का तो कहना ही क्या, घोर पाखन्डी लोग भी उन्हें देख मन्त्र-मुग्धसे हो रहे थे।

नौ बजेके लगभग सब लोग गोयाड़ी पहुंचे। स्थानीय पुलिस इन्सपेक्टर हीरालाल सिंह कहीं जा रहे थे। कीर्त्तन-ध्वनि सुनकर इधर आये और भक्तिपूर्वक सबको प्रणामकर बोले 'आप लोगोंका कहाँसे और कैसे आना हुआ ?' देवेन्द्रबाबू बोले 'हम श्रीधाम नवद्वीपसे कृष्णनगर दर्शन करने आये हैं।'

हीरालाल बाबू—आप लोगोंका कहीं ठहरनेका प्रबन्ध है क्या ?

देवेन्द्रबाबू—ना बाबा। हमने अभी कुछ ठीक नहीं किया है। यदि निताई चाँदने व्यवस्था कर रखी है तो हम नहीं जानते।

हीरालाल बाबू—मेरा एक अनुरोध है। आप अभी शहर न जायें। खड़े नदीके तटपर श्रीकन्ठ बाबूके बगीचेमें विश्रामकर वहाँ प्रसादादि पाकर शहर जायें तो अच्छा है।

देवेन्द्रबाबूने हीरालाल बाबूका प्रस्ताव स्वीकार किया और द्रुतवेगसे कीर्त्तन मंडलीके सामने जाकर उसे बगीचे की ओर मोड़ दिया। आज मानो दादा भाईके अनुगत हैं। भाईका जिधर इंगित होता है दादा उसी ओर नाचते-नाचते चले जाते हैं। श्रीकन्ठबाबूके बगीचेमें पहुँचकर बाबाजी महाशय ने कुछ देर उद्दंडकीर्त्तन किया। इधर हीरालालबाबूने बीस-पचीस भक्तोंकेलिये दाल, चावल, इत्यादि भोगकी सामग्री लाकर

उपस्थित की। बाबाजी महाशयके आदेशसे रसोई बनना आरम्भ हुआ। हीरालाल बाबू इस आनन्दमय संगको छोड एक पग भी वहाँसे हटना नहीं चाहते थे। किन्तु क्या करें। सरकारी कार्यको एक घन्टेके लिये जाना ही पड़ा। पर इनके प्रसाद पाने के समयसे पूर्व ही वहाँ आकर उपस्थित हो गये।

नवद्वीपसे एक महापुरुष संकीर्त्तन लेकर आये हैं—यह खबर क्रमशः सारे शहरमें फैल गई। धीरे-धीरे भक्त जैसे एक दो बाबू आने लगे। स्थानीय सबरजिस्ट्रार बाबू योगेशचन्द्र सान्यालभी एकवार आकर दर्शन कर गये। आप एक धर्म-निष्ठ शाक्त ब्राह्मण थे। बैरागी वैष्णवोंके प्रति आपकी विशेष श्रद्धा न थी। पर आप गुणवान व्यक्तियोंके सदा पक्षपाती थे।

आहारादिके पश्चात् कुछ देर विश्रामकर चार बजेके लगभग बाबाजी महाशय दलबल सहित कीर्त्तन करते-करते कालिजके निकट पहुँचे। इधर कालिजकी भी छुट्टी हुई। कालिजके प्रोफेसर अधरबाबू और कालजियेट स्कूलके शिक्षक ब्रजलालबाबू आकर कीर्त्तनमें सम्मिलित हुए। यह देख कालिजके बहुतसे विद्यार्थी भी कीर्त्तनके साथ हो लिये। बाबाजी महाशय कीर्त्तन करने लगे:—

निताइ गौराङ्ग बल, जनम पेयेछ भाल,
कलियुगे आर गति नाई।
जे दिल ए शव्द ज्ञान, कर ताँर गुणगान,
ए बिद्या शिखना केन भाई॥
चौराशी लक्ष जोनि, कतना भ्रमिले तुमि,
क्रिमि कीट नाना देह धरि।

बहु सुकृतिर फले, भारते जनम मिले,
नरदेह अङ्गिकार करि ॥
शत सन्धि जर जर, पेये एई कलेवर,
एत गर्व करिछ कि आशे ।
एषात्मिका व्याधि जत, बेड़िया आछये कत,
कि जानि कखन केबा नाशे ॥
जे देह आपन ज्ञाने, जतन कर रात्रि दिने,
बसन भूषन कत बेशे,
परमात्मा भगवान्, जबे हबे अन्तर्द्धान,
भस्म विट् क्रिमी अवशेषे ॥
पाय पड़ि छाड़ भ्रम, किछु नाहि परिश्रम,
हरि हरि बल, अविराम ॥
कह लक्ष कथा आन, ताहे न आलिस ज्ञान,
कि भार कि बोझा कृष्णनाम ॥
कर जुड़ि भिक्षा चाइ, हरि हरि बल भाई,
सुखे तोर जाबे परिनाम ।
ना लागिबे टाका कड़ि, ना छाड़िबे घर बाड़ि,
मुखे मात्र बल हरिनाम ॥

'तुम्हें अच्छा मनुष्य जन्म मिला है । इसलिये 'निताई गौरांग' बोलो । कलियुगमें और किसी प्रकार गति नहीं है । जिन्होंने तुम्हें शब्द-ज्ञान दिया है, उनका ही गुण-गान क्यों न करो ? यह गुण-गान करनेकी विद्या ही क्यों न सीखो ? चौरासी लाख योनियोंमें कीड़े-मकोड़े आदिका देह धारणकर न जाने कितना भ्रमण किया है तुमने । बहुत सुकृतिके फलस्व-रूप अब तुम्हें नरदेह प्राप्त हुआ है और भारतवर्षमें तुम्हारा

जन्म हुआ है। पर न जाने किस आशाको लेकर तुम सैकड़ों जोड़ और थिगलियां लगे हुए इस नरदेहका गर्व करते हो। कर्मफल जनित कितनी व्याधियां इसको घेरे हुए हैं। न जाने कब उनके कारण इसका नाश हो जायगा। जिस देहको हम अपना जानकर रात-दिन बड़े यत्नसे तरह तरहके बस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके रखते हैं, उसमेंसे जब परमात्मा अन्तर्ध्यान हो जायेंगे तब केवल राख, मल और क्रिमि अवशेष रह जायंगे इसलिये, मैं तुम्हारे पैरों पड़ कहता हूँ कि इस भ्रम जालको छोड़कर अविराम हरिनामका उच्चारण करो। सुख पाओगे। तुम्हें न पैसा खर्चना है, न घर छोड़ना है।'

इस प्रकार बहुतसी पद-पदावली गाने लगे।

शहरका कृष्णनगर नाम आज सार्थक हो रहा है। दुकानदार दुकान छोड़ 'हरिबोल' कहकर नाच रहे हैं। आफ़िस के बाबू लोग आफ़िसकी पौशाक पहने धूलमें लोट-पोट हो रहे हैं। कुली सरपर बोझा रखे आनन्दमें विभोरसे झूम-झूम कर नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय प्रेम-गद्गद् कण्ठसे केवल इतना कहते हैं 'आबार बल हरिनाम, आवार बल। एइ हरेकृष्ण नाम आबार बल। (मधुमाखा[1] हरि नाम) (नाम नामी एक आत्मा) नामेर वर्णे-वर्णे सुधा माखा) (नाम लइते प्रेम हबे) (भाई तोदेर पाये पड़ि)[2] आबार बल।'

बार-बार हरिध्वनि हो रही है और बाबाजी महाशय का शरीर पुलकावलिसे विभूषित हो रहा है। भावमें विभोर होकर वे बार-बार भूमिपर गिरने लगते हैं और पांच-सात

[1]मधुसे लिपटा हुआ।

[2]भाई तुम्हारे पैरौ पड़ूं।

लोग मिलकर किसी प्रकार उन्हें संभाल पाते हैं। इस अवस्था में जब कम्प होता है तब सभी लोग हवाके झकोरोंसे हिलते हुए केलेके पत्तोंकी तरह कांपने लगते हैं और अश्रुधार रोके नहीं रुकती। सब आत्महारा हो रहे हैं। किसीका खोल बजाते-बजाते हाथ फट गया है, पर उसे होश नहीं। करताल बजाते-बजाते किसीके हाथका चमड़ा निकल गया है, और उसे पता नहीं। किसीके हाथसे करताल गिर गया है और वह हाथसे ताली बजा-बजाकर नृत्य कर रहा है। कोई दूसरा उसी करतालको उठाकर बजा रहा है और कीर्त्तन कर रहा है। संध्यादेवी भी मानो इस सर्वचित्ताकर्षक कीर्त्तनको सुन कर विमुग्ध हो सदलबल धीरे-धीरे आकर उपस्थित हुईं। चारों ओरसे कोई लालटेन, कोई लैम्प लेकर आने लगे। इस प्रकार बहुत समयतक कीर्त्तन करनेके पश्चात् अपनी इच्छा न होते हुए भी भक्तगणोंको थका जान बाबाजी महाशयने रात्रि आठ बजेके लगभग कीर्त्तन समाप्त किया।

श्रीकण्ठ बाबूका बगीचा आज जनतासे ठसाठस भरा है। सभीके मुखसे हरिबोलकी ध्वनि निकल रही है। सब लोग अलग-अलग दल बनाकर 'हरिबोल' बोलते-बोलते बगीचेमें आ-जा रहे हैं। कभी भी जिसके मुखसे हरिनाम सुनाई नहीं पड़ता था वह भी मानो एक प्रकारके नशेमें डूबकर उद्दण्ड नृत्य कर रहा है और हाथसे ताली बजा-बजाकर 'हरिबोल' बोल रहा है। रात कोई ग्यारह बजे सबको होश हुआ और अपने अपने घर की सुध आई। अधर बाबू, जोगेश बाबू आदिने कहा 'कल शनिवार है,कीर्त्तन थोड़ा आगे ही क्यों न निकालें' बाबाजी महाशयने इसका अनुमोदन किया। सब लोग परमा-

नन्दित हो अपने-अपने घर चले गये। रात्रिमें इन लोगोंके भोजनादिकी व्यबस्था हीरालाल बाबूने ही की।

प्रभात होते ही जोगेश बाबूने आकर विनीत भावसे बाबाजी महाशयसे पूछा 'आपके साथियोंके आहारादिकी व्यवस्था क्या है?'

बाबाजी—बाबा! हम भिखारी हैं,हमारे लिये व्यवस्था का क्या प्रश्न? प्रभु जिस समय जो दे देते हैं वही पा लेते हैं।

जोगेशबाबू—यह बात तो बाबा सभीकेलिये समानरूप से लागू है। प्रभुके दिये बगैर क्या किसीको कुछ मिल सकता है? फिर भी प्रत्येक मनुष्यका अपना अलग नियम होता है, जैसे, 'मैं अमुक व्यक्तिके हाथका या अमुक प्रकारका भोजन न करूँगा'।

बाबाजी—आप लोगोंमें विधवा स्त्रियोंका जिस प्रकार आहार होता है हमारा भी उसी प्रकार होता है। परन्तु विधवा स्त्रियोंमें कोई-कोई अनिवेदित वस्तुका आहार कर लेती हैं जो हम लोग नहीं करते।

जोगेश बाबू—अच्छा, नारायणका प्रसाद क्या आप लोग ग्रहण कर लेते हैं?

बाबाजी—बाबा! नारायण ही तो हमारे देवता हैं। ऐसा कौन पाखंडी है जो नारायणका प्रसाद न ग्रहण करता हो?

जोगेश बाबू—मेरी मां और विधवा बहिन हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो उनके द्वारा भोजन पकवाकर नारायणका भोग लगाऊँ और आज आप सब मेरे घर ही प्रसाद पायें।

बाबाजी—अच्छा, निताईकी इच्छासे ऐसा ही होगा।

जोगेश बाबू अति प्रसन्न हो घर गये और माँसे बोले 'माँ

नवद्वीपसे एक महापुरुष आये हैं। आज हमारे घर भोजन करेगें। उनके साथ बारह-चौदह साधु भी हैं। अति पवित्र भाव से नारायणका भोग लगाकर उन्हें प्रसाद देना होगा।' जोगेश-बाबूकी वहिन बोलीं 'मैंने कल रात्रि एक स्वप्न देखा था। खूब दीर्घाकार एक साधु आकर मुझसे कह रहे हैं 'बहिन बड़ी भूख लगी है, कुछ खाने को दो।' मैं आनन्दमें विभोर हो गई और उनके बैठनेके लिये आसन लगा दिया। बस इतने में मेरी नींद टूट गई। जो हो हम लोग बहुत पवित्रतासे नारायणका भोग लगायेगें।' जोगेश बाबूने जितना सम्भव हो सका भोजन का आयोजन कर दिया और दफ्तर चले गये। किन्तु उनका मन इन महापुरुषके ही चरणोंमें लगा रहा। दफ्तरका कार्य करते समय बराबर इनकी मूर्त्ति उनके सामने नृत्य करती रही। बारह बजेके निकट जोगेश बाबूके यहाँसे एक व्यक्ति बाबाजी महाशयको लिवाने गया। बाबाजी महाशय भक्त मंडली सहित कीर्त्तन करते-करते जोगेश बाबूके यहाँ आकर उपस्थित हुए। कुछ देर नाम करनेके पश्चात् बाबाजी महाशय जोगेश बाबूकी बहिनको सम्बोधनकर बोले 'दीदी बड़ी भूख लगी है कुछ खाने को दो। माँ कहाँ हैं?' यह सुनकर जोगेश बाबूकी बहिन अति विस्मित भावसे माँके निकट जाकर बोलीं 'माँ मैंने कल रात जो स्वपन देखा था, वह बिल्कुल ठीक हुआ। ठीक इन्हींके समान एक साधुने कल रात ठीक इसी भावसे मुझसे खानेको मांगा था। यह अवश्य ही कोई महापुरुष हैं?' माँ बोलीं 'जोगेश ने भी यही बात कही थी। इनका आकार-प्रकार भाव-भगि आदि देखकर हृदय को यही बोध होता है कि ये कोई महात्मा हैं। इनके दर्शन मात्रसे भक्तिका उदय होता है।' यह कहकर माँने सब लोगोंसे

बैठकके कमरेमें विश्राम करनेकी प्रार्थनाकी। थोड़ी ही देरमें ठाकुरजीका भोग लग जानेपर सबको प्रसाद पानेके लिये बिठा दिया। माँ और बहिन दोनों प्रसाद परसने लगीं। माँ बोलीं, 'बाबा मनमें किसी प्रकारका सन्देह न करना। मैंने जल तक का नारायणका भोग लगाया है। नारायणके प्रसादके अतिरिक्त और कुछ भी आपलोगों को न परसूंगी।' बाबाजी महाशय बोले, 'माँ भगवत्--अनिवेदित वस्तु ग्रहण करनेसे अपराध होता है भगवदपराधीका कभी मंगल नहीं होता। फिर सन्तान का जिससे अमंगल हो ऐसा क्या कभी माँ कर सकती है?' इस प्रकार कथोपकथनके साथ सब लोग प्रसाद पाने लगे। इसी समय जोगेश बाबू आफिससे आगये, और माँ और बहिन के मुखसे सारा वृत्तान्त सुन बड़े सुखी हुए। जब सब लोग प्रसाद पा चुके जोगेशबाबू बोले, 'आज बगीची न जाकर यहीं विश्राम करें तो अच्छा हो, यहाँ से नगर कीर्त्तन निकालनेमें भी विशेष सुविधा होगी।' बाबाजी महाशय बोले, 'जिसमें आप लोगोंकी सुविधाहो वैसाही करें।' जोगेशबाबू बहुत प्रसन्न हुऐ और बैठकमें सबके विश्रामका प्रबन्धकर स्वयं प्रसाद पाने लगे। कुछ समय विश्राम करनेके पश्चात कोई साढ़े तीन बजे सबलोग कीर्त्तन निकालनेके उद्योगमें संलग्न हो गये। किसी को निमत्रित करनेकी आवश्यकता न पड़ी। बहुतसे लोग जोगेश बाबूके घर आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी, महाशय ने कीर्त्तन आरम्भ किया—

प्रकट अप्रकट लीलार दुइत बिधान।
प्रकट लीलाय करेन प्रभू निजे नृत्य गान॥
अप्रकटे नाम रूपे साक्षात् भगवान्।
कीर्तन बिहारी रुपे सदा बर्तमान॥

(प्रभुर) दक्षिणे श्रीनित्यानन्द बामे गदाधर।
सम्मुखेते नृत्यावेशे कुबेर-कुमार ॥
गदाधरेर बामे श्रीबास आर नरहरि।
चौषट्टि महान्त द्वादश गोपाल संगे करि ॥
सबाकार आगे निताइ दुबाहु तुलिया[१]।
हरे कृष्ण हरिनाम जान बिलाइया ॥
मुखे आबराबल हरिनाम आबार बल।

(आमार प्रेमदाता निताइ बले)
(निताइ जारे देखे तारे बले)
(आमि बिना मूले बिकाइब)

अक्रोध परमानन्द नित्यानन्द राय।
अभिमान शून्य निताइ नगरे बेड़ाय ॥
अधम चंडाल जनार घरे-घरे गिये।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम दिछेन जाचिये ॥
जे ना लय तारे बले दन्ते तृन धरि।
आमारे किनिया[२] लह भज गौरहरि ॥
एत बलि नित्यानन्द भूमे गड़ि जाय।
सोनार पर्बत जेनो धूलाते लोटाय ॥
ए हेन दयाल प्रभु जेबा न भजिल।
मानब-जनम सेइ हेलाय[३] हाराइल[४] ॥
गोरा प्रेमे गरगर निताइ रंगिया।
हरिबले चले जाय ढुलिया ढुलिया[५] ॥
अरुन कमल जिमि नयन जुगल।
गोरा गोरा, गोरा बलि झुरे[६] अबिरल ॥

---

[१]उठाकर, [२]खरीद, [३]वृथा, [४]खोया, [५]भूमते हुए [६]अश्रु बहाते हैं।

करुना सागर मोर प्रभु नित्यानन्द।
भज भज, भज भाई पाइबे आनन्द॥
सुखे बा दुःखे ते किम्बा जथा तथा थाक।
दिनान्ते निशान्ते किबा निताइ बोले डाक॥
निताइ, निताइ, निताइ, निताइ बल भाई॥
निताइ गौरांङ्ग बिने आर गति नाइ॥

और भी अनेक प्रकारके पदोंका कीर्त्तन होने लगा। अगणित लोग इकट्ठा हो गये। कौन कहाँ गिर रहा है, कौन किसे पकड़ रहा है, किसीको सुध नहीं। कोई भूमिमें लोट रहा है, कोई बाबाजी महाशयके चरण पकड़ उच्च स्वरसे रूदन कर रहा है, कोई प्रेमोन्मत्त भावसे उद्दण्ड नृत्य कर रहा है। बाबाजी महाशयके शरीरमें अष्टसात्विक विकारोंका पूर्ण रुपसे विकास हो रहा है। निरन्तर पुलक, अश्रु और कम्प हो रहा है। जो कोई भी उस सुमधुर नृत्य-भंगि, अविरल अश्रु विसर्जन और भाव-भूषणविभूषित विशाल शरीरका एकबार दर्शन कर लेता है वह एक अनिर्वचनीय आनन्द रसमें निमग्न हो जाता है। कृष्णनगर आज नदिया नगरकी भाँति जान पड़ता है। बालक-वृद्ध, नर-नारी, धनी और भिखारी, सभी के मुख से 'निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ बल भाई' की ध्वनि उठ रही है। जोगेश बाबू, अधरबाबू, रामगोपाल बाबू, अम्बिका बाबू, अश्विनीबाबू हरिहर बाबू इत्यादि सभी नंगे बदन, नंगे पैर, धूल में सने, अश्रु विसर्जन करते और हाथसे ताली बजाते हुए नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय बिलकुल संज्ञाहीन हैं। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान जिसे भी सामने पाते हैं उसे अपनी विशाल भुजाओंमें भर 'निताइ' कहकर मानों निताइचाँदके श्रीचरणोंमें समर्पण कर देते हैं। वह भी

मंत्रमुग्धवत् 'निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, बोलभाई,' गाकर नाचने लगता है।

इस प्रकार रात्रिमें कोई नौ बजे सबलोग जोगेशबाबूके घर लौटे और कीर्त्तन समाप्त कर कुछ देर विश्राम किया। जोगेशबाबूकी माँ और बहिनने पहलेसे ही नाना प्रकारके भोजन नारायणका भोग लगाकर तैयार कर रखे थे। सब बड़े आनन्दसे प्रसाद पाकर हरिनाम करते-करते श्रीकंठबाबूके बगीचे लौट आये।

श्रीकंठबाबूकी बगीचीमें

श्रीकंठबाबूकी बगीचीमें परमानन्दपूर्वक दिन व्यतीत होने लगे। एक दिन कालिदास बन्दोपाध्याय और नवद्वीपदास बगीचीके एक छोटे कमरेमें हाथसे ताली बजा-बजाकर 'निताई, निताई, निताई, निताई,निताई बल,भाई। निताइ गौरांग बिने आर गति नाइ' पदका कीर्त्तन कर रहे थे। क्रमशः एक एक कर आठ-दस व्यक्ति और वहां आकर कीर्त्तनमें योग देने लगे। जब कीर्त्तन अच्छी तरह जम गया तब सब लोग वहाँ जा उपस्थित हुए जहाँ बड़े बाबाजी महाशय बहुतसे लोगोंके साथ बैठे थे। बाबाजो महाशय और अन्य सभी लोग झट उठकर उनके साथ कीर्त्तन करने लगे। बहुत देर तक उद्दंड कीर्त्तन करनेके पश्चात् बाबाजी महाशयने पद उठाया:—

निताइ मोदेर जीवनधन निताइ मोदेर जाति
निताइ बिहने मादेर आर नाहिं गति॥
संसार सुखेर मुखे तुले दिये छाइ।
नगरे मांगिया खाब गाइये निताइ॥

जे देशे निताइ नाइं से देशे नाजाब।
निताइ बैमुखीर मुख कभुना हेरिब॥
कांधेर पैता जेमन ना छाड़े ब्राह्मन्।
तेमति निताइ मोदेर सरबस धन॥
गंगा जार पद जल हिर शिरे धरे।
हेन निताइ न भजिये दुःख पेये मरे॥
ताइ बलि भज भाइ गौराङ्ग निताइ।
कलिभव एड़ाइते आर गति नाइं॥

'निताई हमारे जीवनधन और जाति पाति सब कुछ हैं। निताइ बिना हमारी गति नहीं! हम संसार सुखके मुखमें राख झोंककर नगर-नगर, द्वार-द्वार मांग कर खायेंगे और 'निताइ, निताइ' गाते जायंगे। जिस देशमें निताइ नहीं वहां कभी न जायंगे। जिनके चरणोंका जल शिवजी सिरपर धारण करते हैं ऐसे निताइ को न भजकर लोग वृथा दुःखसे मरते हैं। इसलिये कहता हूँ निताइ-गौरका भजन करो। कलिकालमें भवसागरसे पार होनेका और कोई उगाय नहीं।'

सबलोग कीर्त्तनानन्दमें मतवाले हो रहे थे। कालीदास बाबू और बाबाजी महाशय एक दूसरेके गलेमें हाथ डालकर मधुर नृत्य कर रहे थे। अधर बाबूके गुरुदेव † एक ओर खड़े कीर्त्तन सुनरहे थे और नेत्रोंके जलसे उनका मुख और वक्षःस्थल भीग रहे थे। यकायक वे उच्च स्वरसे रोदन करने लगे। किसी का बस नहीं था कि उन्हें स्थिर कर सकता। उन गेरुआवस्त्र धारी, रुद्राक्षमाला-विभूषित, सिन्दूर-तिलक-शोभित, अनतिदीर्घ, स्थूलकाय, नैतिक, शाक्त ब्राह्मणकी आर्ति और उनका रजमें लोट-पोट होते उच्चस्वरसे रोदन देख सब लोग विस्मयाविष्ट

† ये एक नैष्ठिक ब्राह्मण थे। गुरुगीरी इनका पेशा था।

हो गये। कीर्त्तन इतनी तन्मयतासे होरहा था कि किसीका किसी को स्थिर करनेका प्रश्न ही नहीं उठता था। थोड़ी देरमें कीर्त्तन समाप्त हुआ। परन्तु ब्राह्मणका रोना अबभी बन्द नहीं हुआ। बाबाजी महाशयके इंगितसे कालीबाबू उनका सिर अपनी गोदीमें लेकर बैठ गये। थोड़ी देरमें जब वे कुछ सुस्थ हुए तो भरे कंठसे कहने लगे 'बाबा! मैं घोर अपराधी हूँ। निताइ-गौर भजनेवाले लोगोंपर मेरी प्रीति तो दूर रही, उनपर मेरी श्रद्धा भी न थी। आज आप दोनोंके नृत्यके समय मैंने एक अपूर्व दर्शन किये। मैंने देखा कि जैसे ठीक निताइ-गौर दोनों भाई भावमें विभोर होकर नृत्य कर रहे हों। उनके दर्शनमात्रसे मेरा कठिन हृदय द्रवित होगया और चक्षु झुलस गये। मैं और अधिक न देख सका और मुझे नेत्र बन्द कर लेने पड़े। थोड़ी देरमें आँखें खोलीं तो देखा कि वह अपरुप रुप नहीं है। यह क्या हुआ? आप लोग मेरे ऊपर कृपा करें।' इतना कह वे और अधिक व्याकुल होकर रोने लगे। कालीबाबूने बहुत प्रकारसे सान्त्वना वाक्योंसे आश्वस्त कर उन्हें बिठाया। तब बाबाजी महाशय बाबाको दृढ़ आलिंगन कर अश्रुगद्गद्कंठसे कहने लगे 'बाबा, आप मांके विशेष कृपापात्र हैं। तभी अवतारों के सार निताइ-गौरांग देवके दर्शन आपको हुए हैं। नाम नामी अभिन्न हैं। नाम रूपमें वे साक्षात् वर्तमान है।'

ब्राह्मण—बाबा! नामतो बहुत दिनोंसे सुन रहा हुं। पर आज पर्यन्त, कभी मेरा हृदय द्रवित नहीं हुआ। आपको जबसे देखा है मेरे प्राण जैसे किसी एक अपूर्व भावसे विभावित हो रहे हैं। जिन लोगोंको मैंने आज तक अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा है आज अवनत मस्तकसे उनकी पद-धूलि धारण करनेकी इच्छा हो रही है। उसे मैं नामका प्रभाव कहूँ या आपकी शक्तिका?

बाबाजी महाशय—नाम सर्वशक्तिमान है। नामके लिये असाध्य कुछ भी नहीं। भगवान् स्वयं भी जिस कार्यको नहीं कर सकते वह नाम द्वारा अनायास सम्पन्न होता है। प्रमाण रूपमें देखिये—त्रेता युगमें रामचन्द्र सीताजीका उद्धार करनेकेलिये पुल बांधकर लंका गये थे, परन्तु हनुमान उन्हीं रामचन्द्रका नाम लेकर एक फलांगमें समुद्र पार होगये थे। द्वारकामें सत्य-भामादेवीने उमाव्रतके उपलक्ष्यमें देवर्षि नारदको कृष्णके बराबर सोना तोलकर देनेका संकल्प किया। उन्होंने तराजूके एक पलड़ेपर कृष्णको बिठाया और दूसरेपर बहुतसा सोना रखने लगीं। पर वे जितना भी सोना रखती थीं सोनेवाला पलड़ा दूसरे पलड़ेसे ऊंचा ही रहा आता था। यह देख वे बहुत संकटमें पड़ गयीं। उन्होंने रुक्मिणीदेवीसे परामर्श किया। रुक्मिणीदेवी ने तराजूपरसे सारा सोना हटादिया और उसकी जगह नामाँकित एक तुलसी-पत्र रख दिया। तुलसी-पत्रके रखते ही वह पलड़ा झुक गया। इसीलिये कहता हूँ कि नामकी अपार महिमा है। नाम वृक्षादि स्थावर, पदार्थोंको भी नचा सकता है, मनुष्यों का तो कहना ही क्या।

इस प्रकार तत्वालोचना होते-होते मध्यान्ह होगया। सब लोग अपने-अपने घर गये। इन लोगोंने भी प्रसाद पाकर विश्राम किया। आगन्तुक दुःखी कंगाली लोगोंको भी महाप्रसाद दिया गया। डेढ़ महीने तक इसी तरह नित्य चार पांच सौ व्यक्ति प्रसाद पाते रहे। कहांसे नित्य प्रातःकाल इतने लोगोंके प्रसाद की सामग्री जुट जाती यह प्रभु ही जाने। पर बाबाजी महाशय जितने दिन कृष्णनगरमें रहे उन्होंने दूसरे दिनके लिये कुछ भी संग्रह न करने दिया, यहांतक कि जिस हंडियामें रसोई पकती उसे भी फिकवा देते।

इस अलौकिक व्यापारको देख बहुतसे लोग बाबाजी महाशयकी ओर आकृष्ट होने लगे। भाग्यवान श्रीकंठबाबूका निवास स्थान आनन्द कानन बन गया। आबाल-वृद्ध-बनिता यहां तककि घोर पाखण्डी लोग भी बाबाजी महाशयकी महिमा गाने लगे। महात्मा लोग प्रतिष्ठासे भय खाते हैं। शायद इसी कारण अब बाबाजी महाशय कृष्णनगरमें नहीं रहना चाहते थे।

एकदिन प्रातःकाल वे चिन्तामें बैठे थे। उसी समय देबेनबाबूने आकर पूछा 'दादा आज इतना चिन्तत क्यों हैं?' वे बोले 'ना भाई, कोई विशेषबात नहीं, पर कृष्णनगर आये बहुत दिन होगये, यही विचार रहा हूँ।' इसी समय जोगेश बाबू आकर बोले 'कल रविवार है। बहुतसे लोगों की इच्छा है कि आपके मुखसे कुछ तत्वमीमांसा सुन शंका समाधान करें। यदि आपकी अनुमति हो तो सबको सूचित कर दूँ।'

अधरबाबू बोले 'देखिये, बहुत भीड़ होनेसे असुविधा होती है। ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि जिससे अनधिकारी लोग न आसकें।' बाबाजी महाशय बोले 'भाई, मैं तो पहले ही कह चुका हूँ, जिसमें तुम्हारीं सुविधा हो वैसा करो। मेरी सम्मतिकी कोई आवश्यकता नहीं।' तब जोगेशबाबूने प्रसन्नता पूर्वक विशिष्ठ लोगोंको दूसरे दिन प्रातःकाल वहां एकत्र होनेको कहला भेजा।

रविवारको प्रातःकाल जोगेशबाबू, अधरबाबू इत्यादि आठ-दस सज्जन बाबाजी महाशयके पास उपस्थि हुए और नाना प्रकारकी तत्त्वसम्बन्धी बातें पूछने लगे। जोगेशबाबू बोले 'यथार्थ भगवत् स्वरूप क्या है? और दूसरे स्वरूपोंके साथ उसका क्या संबन्ध है?'

बाबाजी महाशय—भगवत्-स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। भगवान् कौन हैं? इस प्रश्न को लेकर वेद, तन्त्र, पुराण, एतिहास भागवत् प्रभृतिमें बहुत विचार किया गया है। निर्धारित हुआ है कि श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं, जैसे श्रीमद्-भागवत् में कहा है:—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्

ब्रह्म संहितामें:—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादि र्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥
यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य।
जीवन्ति लोमविलजा जगदगुनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो।
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

अन्यत्र

यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा
य आत्मान्तरधामिपुरुष इति सोऽस्यांशविभवः।
षड़ैश्वर्यैः पूर्णो य इह भगवान स स्वयमयं
न चैतन्यात् कृष्णाज्जगति परतत्वं परमिह ॥ इत्यादि

यही कृष्ण विभिन्न स्थानोंपर क्रिया और संगादिके भेदसे पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम रूपोंमें प्रकट होते हैं। वे श्रीधाम द्वारकामें पूर्ण, मथुरामें पूर्णतर और श्रीवृन्दाबनमें पूर्णतमरूपसे विराजमान हैं। इसलिये मैं श्रीकृष्णचन्द्रके पूर्ण, पूर्णतम स्वरूप श्रीवृन्दाबन बिहारीका वर्णन करता हूँ।

श्रीचैन्तय चरितामृतमें लिखा है,—

सच्चिदानन्द तनु ब्रजेंद्रनन्दन ।
सर्वैश्वर्य सर्वशक्ति सर्वरसपूर्ण ।।
पुरुष जोषित किम्बा स्थावर-जंगम् ।
सर्वचित्ताकर्षक साक्षात् मन्मथ मदन ।।

'सत्' शब्द का अर्थ है सन्धिनी अर्थात् सत्ता, 'चित्' का अर्थ है संवित अर्थात् ज्ञान और 'आनन्द' का अर्थ है ह्लादनी अर्थात् आह्लादकारी वृत्ति विशेष। इस सच्चिदानन्दमय विग्रहको ही भगवान् कहते हैं। यह स्वरूपसे है नव-कैशोर नटवर, गोपवेश, बेणुकर, नवजलधर, श्यामकान्ति, पीताम्बरधारी और अखिलरसामृतमूर्ति । अन्यान्य देवदेवीगण से इसका अंशांशी सम्बन्ध है, अर्थात् कोई इसकी चिद्विभूति है, कोई अंश, और कोई कलाविलास स्वरूप ।

जोगेश—मायासे श्रीकृष्ण का क्या संबन्ध है ?

बाबाजी—माया कृष्णदासी अर्थात् श्रीकृष्ण की आज्ञापरा कार्य्यकारिणी अघटन-घटनपटीयसी शक्ति विशेष है ।

जोगेश—जीवके साथ कृष्णका क्या सम्बन्ध है ?

बाबाजी—जीव है कृष्णका नित्यदास ।

जोगेश—जीव कृष्णदास है और माया भी कृष्णदासी है। फिर माया जीवोंको बांधकर इतना कष्ट क्यों देती है, और जीवके ऊपर उसका क्या अधिकार है ?

बाबाजी—अच्छा देखो तुम हो सबरजिस्ट्रार—गवर्मेन्ट के नौकर। यह हीरालालबाबू हैं पुलिस इन्सपेक्टर। यह भी

सरकारी नौकर है। यदि तुम कानूनके विरुद्ध कोई काम करो तो राजकर्मचारी होनेके कारण क्या हीरालाल बाबू तुम्हें छोड़ देगें। इसी प्रकार माया और जीव दोनों भगवत्दास हैं। जीव जब भगवदाज्ञाके विरुद्ध कोई काम करता है, तभी माया उसके हाथ पांव बांधकर नाना रूपसे दण्ड देती है ?

जोगेश—जीव ऐसा कौनसा बड़ा अपराध करता है जिसके कारण माया उसे इतना कष्ट देती है ?

बाबाजी—जीव कौनसा अपराध करता है ? क्या बताऊँ ? वह अभिमान में मत्त होकर प्रभु तकको भूल जाता है, और प्रभू बन बैठता है। विचार करके देखो प्राकृतिक राज्यमें राजा के प्रति यदि कोई अवज्ञासूचक शब्द भी कहता है तो उसे कितना दण्ड दिया जाता है।

इसलिये यदि जीव जगतके हर्त्ता-कर्त्ता-विधाताकी अवज्ञा करे तो उसे उचित दंड मिलना चाहिये या नहीं। श्रीचरितामृत में लिखा है—

जीव कृष्ण-नित्यदास, ताहा भूलि गेल।
ते कारणे माया पिशाची, गलाय बांधिल।।
कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय।
दंड्य जने राजा जेन नदी ते चुबाय।।

जोगेश—इस प्रकारका दासत्व संसार त्यागी साधुओंके लिये संभव है,किन्तु संसारी व्यक्ति यदि कर्तृत्वाभिमान न करें तो उनका संसार कैसे चले ? यदि सभी प्रभुके दास हैं यह मान लिया जाय तो अपने नौकरको काम-बिगाड़ने पर हम दण्ड

कैसे दे सकते हैं, और दण्ड दिये बगैर काम भी कैसे चल सकता है ?

बाबाजी--तुम्हारे पास कचहरीमें जो चपरासी, अरदली और अन्यान्य नौकर-चाकर रहते हैं,उनमेंसे जब कोई अन्यायाचरण करता है तब क्या तुम उसे दंड नहीं देते ? और वह क्या तुम्हें अपना स्वामी नहीं मानता ?

जोगेश—हाँ अवश्य मानता है, और अन्याय कार्य करने पर उसे दंड भी देना पड़ता है ।

बाबाजी--अब विचार करो कि सरकारी कचहरीमें तुम दोनों ही नौकर हो, पर फिर भी स्वामीरूपसे चपरासीको दण्ड देना होता है । कचहरीके कर्मचारीयोंको जिस प्रकार ध्यान रखना पड़ता है कि सरकारी नियमोंके अनुकूल कार्य न करने से दंड भोगना होगा, उसी प्रकार भगवत्-संसारमें रहकर हमें यह ध्यान रखना होगा कि भगवानकी आज्ञाके विरुद्ध कार्य करनेसे दण्डके भागी होंगे । यह स्पष्ट है कि अभिमान ही दुःख की जड़ है । अभिमान और स्वेच्छाचारिता छोड़कर जिस कार्य में भगवानने हमें नियुक्त किया है उसे यदि प्राण देकर करते रहें तो संसारमें चाहे कितना ही लिप्त क्यों न हो जायें माया कदापि हमारे ऊपर शासन नहीं कर सकती ।

अम्बिकाबाबू—प्रभु, मेरा एक प्रश्न है। यदि आज्ञा करें तो कहूँ ।

बाबाजी—देखिये मेरे सम्मुख कोई भी प्रश्न करनेमें आप संकोच न करें, क्योंकि मैं कोई पंडित या महापुरुष तो हूँ नहीं।

प्रभु मेरे हृदयमें उदय होकर जो स्फूर्ति कराते हैं वही आपसे कह देता हूँ। इससे यदि आपकी तृप्ति होती है तो मैं भगवत्-कौशल देखकर अपनेको धन्य मानता हूँ।

अम्बिकाबाबू—एक वैष्णवने मुझसे कहा था कि जगत में एकमात्र कृष्ण ही पुरुष हैं और सब प्रकृति है। यह बात मेरी समझमें नहीं आई। क्योंकि भगवान्ने ही तो पुरुष और प्रकृति—इन दो भागोंमें हमारी सृष्टि की है।

बाबाजी—अच्छा आप लोग तो पण्डित हैं। यह बतलाइये कि प्रकृति और पुरुषका धातु-प्रत्ययगत्त अर्थ क्या हो सकता है ?

अम्बिका बाबू—प्रकृति शब्दका धातुप्रत्ययगत अर्थ है प्रकृष्ट रूपसे कार्यकारिणी शक्ति विशेष और पुरुष शब्दका अर्थ है जो पुरमें बास अथवा शयन करते हैं और 'पुर' शब्दके देह, मन, बुद्धि इत्यादि और भी अनेक प्रकारके अर्थ हैं।

बाबाजी— बहुत्त ठीक, अब समझ लीजिये कि जो देह, मन, बुद्धि इत्यादिमें बास या शयन करते हैं अर्थात् जो निष्क्रय, निर्लिप्त, निर्गुण और साक्षिस्वरूप हैं उन्हीं को पुरुष कहते हैं और प्रकृति कहते हैं उस प्रकृष्ट रूपसे कार्य करनेवाली शक्तिको जो एक क्षण भी कार्य किये बगैर नहीं रह सकती। पुरुष शब्दवाच्य परमात्मा स्थावर-जंगम, कीट-पतंग, मनुष्य, पशु-पक्षी इत्यादि सब देहोंमें समभावसे वर्त्तमान हैं। इस प्रकार पुरुष शब्दका अर्थ तत्वतः अंशांशीरूपसे सभी प्राणियोंसे है। श्रीमद्भागवत्गीतामें कहा है:—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः ॥

पुरुष शब्दके इसी अर्थके अनुसार वेदान्त शास्त्र में 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यका प्रयोग हुआ है । 'प्रकृति' शब्दका अर्थ भगवान्‌की उस प्रधान शक्तिसे है जिससे दृश्यादृश्य, चेतन-अचेतन जगतकी सृष्टि हुई है ।

इसी कारण हम प्राकृत-जगतके प्रकृत जीव हैं । हममेंसे जो पुरुषपनेका अभिमान करते हैं उनसे मैं पूछता हूँ कि क्या हम क्षणमात्रको भी पुरुषकी भाँति निष्क्रिय, निर्लिप्त और निर्गुण भावसे रह सकते हैं ? हमारे हाथ पैर बंधे रहने पर भी हमारा मन देशदेशान्तर की यात्रा करता रहता है । इसीलिये गीतामें भगवान्‌ने कहा है:—

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्'

इसीलिये शास्त्रमें ब्रह्मा और शङ्करसे लेकर कीट कीटाणु तक सभी जीवोंको प्रकृति कहा है और 'पुरुष' शब्दका प्रयोग केवल भगवान् के लिये किया है ।

भगवान्‌ने निज मुखसे कहा है:—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महावाहो ययेदं धार्य्यते जगत् ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्त्तयः सम्भवन्ति याः ।

यदि कहो कि 'पुरुष' और 'प्रकृति' शब्दोंका व्यावहारिक अर्थ इस प्रकार नहीं है तो व्यवहारकी बात दूसरी है। व्यावहारिक अर्थ केवल व्यवहारके लिये होता है। उसका तत्त्वसे कोई सम्बध नहीं होता। व्यचहारमें यदि 'पुरुष' शब्दका प्रयोग अनादिकालसे स्त्रीके लिये होता रहता और 'स्त्री' शब्दका प्रयोग पुरुषके लिये होता रहता तो आज हमारे उसो प्रकारके संस्कार होते और हम उन्हीं अर्थोंमें इन शब्दोका प्रयोग करते। देखिये हमारे देशमें पिताको बाबा और पितामहको ठाकुरदादा कहते हैं और वृन्दाबनमें पिताको दादा और पितामहको बाबा कहते हैं। उड़ीसामें मांको 'बौ' कहते हैं और हमारे यहाँ पुत्रबधुको 'बौ' कहते हैं। ईसी प्रकार उड़ीसामें ब्राह्मणगण पिता को 'नना' कहते हैं और दूसरी जातिके लोग बड़े भाईको 'नना' कहते हैं। व्यावहारिक अर्थके इस पार्थक्यका क्या तात्विक दृष्टिसे कोई मूल्य हो सकता है ? 'पुरुष'शब्दका वास्तविक अर्थ है विषय या आश्रयी और 'प्रकृति' का अर्थ है आश्रय। सबका मूल आश्रयी एक है। आश्रय अनेक हैं। देखिये व्यावहारिक दृष्टिसे भी यही बात सिद्ध होती है। यदि आप किसी छोटेसे संसारके स्वयं कर्त्ताधिर्ता हैं तो आप उसे कहते हैं अपनी सृष्टि, अपना संसार, या अपनी प्रकृति और आप कहलाते हैं उसके पालन कर्त्ता, स्वामी या आश्रयदाता (आश्रयी) और आपके जमीदार या राजा इसी प्रकारसे आपके सम्बन्धमें आश्रयी होते हैं और आप उनके सम्बन्धमें प्रकृति। यह क्रम उसी प्रकार चलता रहता है जिस प्रकारसे पुत्र और पिताका क्रम चलता रहता है और जैसे अन्तमें सबका एक आदिपिता होता है और सब उसके पुत्र होते हैं, उसी प्रकार एक 'आदि पुरुष' है और सब उसकी 'प्रकृति' हैं। वह आदि पुरुष हैं श्रीगोविन्द।

पुरुष और प्रकृतिकी यह आलोचना सुन कर जोगेशबाबू आदि सब बहुत सन्तुष्ट हुए। अब बाबा महाशयके स्नानादिका समय हो आया। इसलिये सबने दण्ठवत प्रणाम पूर्वक उनसे घर जानेकी आज्ञा ली।

नगर-कीर्त्तन और हरि-लूट

तीसरे पहर फिर जोगेश बाबू, अधर बाबू प्रभृति बाबाजी महाशयके पास आये और उनसे नगरकीर्त्तनमें चलनेका अनुरोध किया। बाबाजी महाशय सबको लेकर नगर कीर्त्तनको निकले। इसके पहले कृष्णानगरमें इक प्रकारका नगर कीर्त्तन बहुत कम हुआ करता था। इसलिये जब कभी खोल करतालकी ध्वनि सुन पड़ती, आबाल-वृद्ध-बनिता सभी अपना-अपना काम छोड़ कीर्त्तनमें सहयोग देने लगते। आज भी ऐसा ही हुआ। नगरवासी सभी प्रेमोन्मत्त हो एक स्वरसे गा रहे हैं 'आबार बल हरिनाम आबार बल' और एक दूसरेसे कह रहे हैं 'आहा! आजका कीर्त्तन कितना सुन्दर है। ऐसा आनन्द तो और कभी नहीं मिला। आज नामकी ध्वनि कितनी मधुर लग रही है, प्रतिक्षण नूतनसी प्रतीत होती है। आजकी नृत्यभंगि कितनी मधुर है। भाव तरङ्ग भी कितनी मधुर है और कितनी मधुर है अभिनव पद स्फूर्ति। सुनते ही मन और प्राण मानो किसी अप्राकृत जगतमें विलीन हो जाते हैं। जिस-जिस मार्गसे होकर कीर्त्तनमण्डल जा रहा है उसीके आबाल-वृद्ध-बनिता, स्थावर-जङ्गम, पशु-पक्षी आदि सभीके हृदयको भेद एक नवीन सुनिर्मल भावका संचार कर रहा है। कोई नहीं जानता कि आज संकीर्त्तनके नेता बाबाजी महाशय अपने प्राणधन निताइ गौरको लेकर कौनसी लीला करना चाहते हैं।

धीरे-धीरे कीर्त्तन शहरके एक हिस्सेमें पहुँचा। शान्तिपुर-वासी भुवनमोहन नामक एक भक्त कुछ मनमें विचारकर अपने साथियोंसे कहने लगे 'यह कीर्त्तनमण्डली यदि मेरेघर आकर मेरी मनोकामनापूर्ण करे तो समझूंगा कि ये बाबाजी अन्तर्दृष्टि सम्पन्न कोई महापुरुष हैं।' भुवनमोहनबाबूके यह कहने की देर थी कि कीर्त्तनमंडली देखते-देखते उनकी गलीमें जा पहुँची। भुवनमोहन बाबूने कुछ आगे बढ़कर कीर्त्तनसमूहको दंडवत किया। वैसे ही बाबाजी महाशयने उन्हें आलिंगन किया और प्रसन्नभावसे नाचते-नाचते उनके घरमें प्रवेश किया। भुवनबाबूके घरमें एक छोटासा तुलसीका थामला था। उसके चारों ओर नाच-नाचकर उच्चस्वरसे कीर्त्तन होने लगा। कीर्त्तनकारी भक्तोंके आनन्दकी सीमा न रही वे कभी तो उन्मत्त भावसे कीर्त्तन करते-करते भूमि पर लोटने लगते और कभी 'हरिबोल हरिबोल' कहकर उद्दण्ड नृत्य करने लगते। सभी आनन्दमें विह्वल हैं। किसीको वाह्य स्मृति नहीं। भक्तोंकी भीड़ बढ़ती जा रही है। घरमें तिल भर भी जगह नहीं रही है। कितने ही लोग घरके बाहर खड़े होकर कीर्त्तन सुन रहे हैं।

एक भावोन्मत्त मनुष्य एकदमसे 'मां मां' कहकर रोते हुए संकीर्त्तनके बीचमें प्रवेश कर नृत्य करने लगा। उसकी भावगति देख सब लोग आश्चर्य्यान्वित होगये और थोड़ी देरमें उसे घेरकर कीर्त्तन करने लगे। किन्तु बाबाजी महाशय स्थिर भावसे एक ओर खड़े थे। धीरे-धीरे जैसे कीर्त्तनका वेग बढ़ता जा रहा थयह मनुष्य और अधिक उच्च स्वरसे 'मां मां' पुकार रहा था। थोड़ी देरमें वह वाताहत केलेके वृक्षकी भाँति भूमिपर गिर गया और लोट पोट-करता हुआ बाबाजी महाशयके निकट

पहुँच उनके चरण पकड़कर अचेतन हो गया। अचेतन अवस्था में वह बाबाजी महाशयके दाहिने पैरकी वृद्धांगुलि जोर-जोरसे चूसने लगा। उसके मुखके दोनों ओरसे ठीक स्तन दुग्धके समान दुग्धधा रा बहने लगी। न जाने यह दाताकी इच्छाका फल था या भोक्ताकी। उस संज्ञाहीन व्यक्तिका मुख पुलकित था। उसके मुखको देख जान पड़ता था कि वह परमानन्द उपभोग कर रहा है। उस समय बाबाजी महाशयके नेत्र रक्तवर्ण और अर्धमुद्रित थे। सब देखकर आवाक् रह गये। जब उस भावाविष्ट व्यक्तिको होश आया वह उठकर कहने लगा 'अहो, आज मैं धन्य हुआ! युगयुगान्तर तक तपस्या करनेपर भी जो वस्तु लाभ नहीं होती आज इन महापुरुषकी कृपासे मुझे अनायास प्राप्त हुई। बाल्यकालमें मांके स्तनका दुग्ध पीकर भी वह आस्वादन और परितृप्ति प्राप्त न कर सका जो आज हुई। कैसी इनकी अपूर्व करुणा है! कैसी आलौकिक शक्ति है! सब लोग प्रत्यक्ष रूपसे दुग्धधारा देख और इस मनुष्यके मुखसे यह शब्द सुनकर विस्मय सागरमें डूब गये। भुवनबाबूकी इच्छा थी कि कीर्त्तन समाप्तकर सब थोड़ा विश्राम करें, परन्तु उनके मनका भाव था कि वह कुछ न कहें और महापुरुष अपनी इच्छानुसार जो करें वही हो।

कीर्त्तन समाप्त कर बाबाजी महाशय 'गौर हरि बोल' ध्वनि लगा रहे थे। उसी समय भुवनमोहनबाबू एक शालपत्रके दोनेमें सवापांच आनेके बताशे लाकर बाबाजी महाशय से बोले 'बाबा हरि-लूट † भी तो देनी होगी।'

---

† बंगला देश में ऐसी प्रथा है कि कीर्त्तन समाप्त होनेपर हरि ध्वनिके साथ कुछ मिष्टान लुटाया जाता है जिसे 'हरि-लुट' (हरिर-लुट)

बाबाजी महाशय—हां, हरि-लूट करो।

भुवन—न बाबा आप स्वयं ही करें।

तब बाबाजी महाशयने मृदु-मुस्कानके साथ दोना भुवन बाबूके हाथसे ले लिया और गाने लगे:—

आयरे तोरा लुट्वि के आय।
आमार दयाल निताइ अमिया बिलाय॥
श्रीगौरांग सुधार आधार रे, निताइचांद
ताँर अंग आधा रे।
चांदे चांदे मिशे दुटि चाँद, एसे उदय
हल नदियाय,
परम दयाल गौरांग निताइ, एमन दयाल
आर तो देखि नाई॥

(जीवेर) द्वारे द्वारे कांदिये कांदिये, हरिबले, धूलाते लुटाय॥
(निताइ) माथायलये प्रेमेर गागरी, डेके बले बल गौरहरि॥
(आबार) गोरा गोरा बले ढुलिये ढुलिये, जतइ ढाले तत-
बेड़े जाय॥

'आओ लूटो, हमारे दयालु श्रीनित्यानन्द अमृत लुटा रहे हैं। श्रीगौरांग प्रेमरूपी सुधाके आधार हैं, श्रीनिताइ उनके आधे

कहते हैं। भक्तगण बड़े प्रेमसे लूट-लूटकर इसे महाप्रसाद मानकर पाते हैं। ऐसा माना जाता है कि हरिध्वनिके साथ लुटाये जानेसे यह महाप्रसाद में परिणत हो जाता है।

अंग हैं। दोनों चन्द्रमाके समान सुन्दर हृदयको शीतल करने वाले हैं। दोनों चन्द्रमा एक साथ नदियामें उदय हुए हैं। अहा ! कैसे दयालु हैं दोनों। ऐसे दयालु प्रभु और क्या कभी देखे हैं ? द्वार-द्वारपर जाकर रो-रोकर हरिनाम लेते और धूलमें लोटते हैं। निताइ प्रभु सिरपर प्रेमकी गगरी रखे पुकार-पुकारकर कह रहे हैं 'बोलो गौर हरि' और 'गोरा गोरा' कहकर प्रेमामृत ढुलका रहे हैं। जितना ढुलकाते हैं उतना ही बढ़ता जाता है, वह अपूर्व, आलौकिक प्रेम रस !

सब गानके साथ-साथ नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशय के बांये हाथमें बताशों का दोना है। वे दाहिना हाथ ऊपर उठा कर नृत्य कर रहे हैं और कभी-कभी उसी हाथसे 'गौर हरि-बोल' पुकारकर बताशे लुटाते जाते हैं। सभी प्रेमानन्द में मस्त हो नृत्य कीर्त्तन कर रहे हैं और हरि-लूटके बताशे उठा-उठा कर खारहे हैं। बाबाजी महाशय चारों ओर घूम-घूमकर बताशे लूटा रहे हैं। जो लोग बाहर खड़े कीर्त्तन सुन रहे हैं वह भीतर आकर हरि-लूट के बताशे लूटनेके लिये विशेषरूपसे व्यग्र हो रहे हैं। यह देख करुणामय बाबाजी महाशय प्रधान द्वारके पास आकर मार्गमें बताशे लुटा रहे हैं।'

सब परितृप्त और परमानन्दित हो रहै हैं। 'लूट' शब्द ही मानो मूर्तिमान हो पड़ा है। छोटे बड़ेका कोई भेद नहीं। कोई किसीके हाथसे बताशे छीन रहा है, कोई भूमिपर गिरनेसे पहले ही उन्हें लपक लेता है। कोई आँचल फैलाकर बताशे लेने की चेष्टा कर रहा है; कोई उदारतावश, लूटकर दूसरोंको बताशे दे रहा है, और कोई प्रेमावेशमें दूसरोंके मुखमें बताशे ठूंसे दे रहा है। परन्तु बाबाजी महाशय किसी ओर ध्यान न दे कर

अर्धमुद्रित नेत्रोंसे केवल बताशे लुटाते जा रहे हैं। इस प्रकार बताशे लुटाते-लुटाते प्राय एक घन्टा हो गया, परन्तु शालपत्रका दोना पहलेकी भाँति परिपूर्ण रहा। यह देख सब अवाक् हैं और एक दूसरेसे समालोचना कर रहे हैं। बाबाजी महाशयको अपनी प्रतिष्ठाका भय हो आया और उन्होंने दोना एक ओर फेंक दिया। भुवनबाबू आत्महारा हो बाबाजी महाशयके चरण पकड़कर रोते-रोते बोले 'आज मैं धन्य हुआ। मैं कभी स्वप्नमें भी आशा नहीं करता था कि मेरे जैसे पाखंडीके घर ऐसा अनिवर्चनीय आनन्द होगा। आप करुणामय हैं। आपकी करुणासे आज इस अधम जीवने एक नया जीवन लाभ किया।' बाबाजी महाशयने हंसते हुए कहा 'सब कुछ परम दयालु निताइ चांद का खेल है' और पूर्ववत् नाम करते-करते मंडली सहित मार्गपर अग्रसर हुए। धीरे-धीरे संध्या हो गई। भीड़का कुछ ठिकाना न रहा। नगरवासी अपनी इच्छासे हाथमें लालटेन लेकर कीर्त्तनमें योग देने लगे। संकीर्त्तन जिस मार्गसे गया था उसे छोड़ और नये-नये मार्गों से होकर वापस आ रहा था। ठीक किस रास्ते से जाना है कोई नहीं जानता था। किसीको इस बातकी चिंता भी न थी। किन्तु बाबाजी महाशय सुपरिचित व्यक्तिके समान आगे-आगे नृत्य करते जा रहे थे। और सब मन्त्र मुग्धसे उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इस प्रकार थोड़ी देरमें सब घर लौट आये। कुछ देर वहाँ कीर्त्तन करनेके पश्चात् कीर्त्तन समाप्त किया।

कृष्णनगरमें पदचिन्ह

एक दिन संध्या समय नाना प्रकारके कथोपकथनके पश्चात् जोगेशबाबूने बाबाजी महाशयसे कहा 'दादा! मां की इच्छा है कि कल मेरे यहाँ आप लोग प्रसाद पायें और संध्या

पीछे कीर्त्तन करें। बाबाजी महाशय बोले 'अच्छी बात है।' जोगशबाबू प्रसन्न हो घर लौट आये और माँसे सारा हाल कह सुनाया।

दूसरे दिन ग्यारह बजेके लगभग बाबाजी महाशय स्नानादिक समाप्तकर नाम-कीर्त्तन करते-करते जोगेशबाबूके घर पहुंचे, और उनकी वात्सल्यमयी मांके अनुरोधसे कुछ समय विश्रामकर प्रसाद पाने बैठे। जोगेशबाबूकी बहिन बोलीं 'दादा, सभी लोग आपको महापुरुष कहते हैं। पर हमने तो आजतक आपमें कोई अलौकिक बात देखी नहीं।'

बाबाजी—दीदी ! मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मेरे अन्दर अलौकिकता कहाँ ? यदि तुम्हें कुछ देखनेकी इच्छा है तो परम दयालु लीलामय निताइ गौरांग से प्रार्थना करो। वे चाहें तो सभी कुछ दिखा सकते हैं।

जोगेशबाबूकी मां—बाबा तुम महापुरुष हो या देवता मुझे तुमसे कुछ ऐसा स्नेह हो गया है कि मेरा तुम्हारे प्रति वही भाव रहता है जो जोगेशके प्रति।

बाबाजी—मां ! यह भाव बड़ा मधुर है। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूं कि मेरे प्रति आपका यह भाव चिरदिन रहे।

इस प्रकार कथोपकथनके साथ सबने आनन्दपूर्वक प्रसाद पाकर विश्राम किया। तीसरे पहर चार बजेके लगभग बहुतसे लोग आने लगे। उसी समय नवीनचन्द्र मुखोपाध्यायके पुत्र गोकुलगोपाल मुखोपाध्यायने आकर दंडवत् प्रणाम किया और अधीर हो रोने लगे। बाबाजी महाशय बोले 'स्थिर हो कर नाम करो बाबा। नामकी अपार महिमा है। कलियुगमें

नाम छोड़कर और किसी प्रकार गति नहीं है। नामके आभास मात्रसे मुक्ति होती है।

एक बार हरिनाम जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइं तत पाप करे॥

गोकुल बाबू बोले 'क्या भगवानके नामोंमें किसी प्रकार का तारतम्य भी है ?'

बाबाजी—बाबा! एक मनुष्यके यदि दस नाम हों तो कोई भी नाम लेकर पुकारो वह उत्तार देता है। इसी प्रकार भगवानके हरि, राम, कृष्ण, गोपाल, गोविन्द, मुकुन्द इत्यादि नाम हैं। रुचिके अनुसार तुम्हें जो नाम भी अच्छा लगे उसे पुकारनेसे वे अवश्य कृपा करेगें। परन्तु रसनिष्ट व्यक्तिके लिये नामका तारतम्य है।

गोकुल—वह कैसे ?

बाबाजी—ब्रजरसके उपासकों को द्वारकानाथ, रुक्मणी वल्लभ, यादवेन्द्र चूड़ामणि,वैकुण्ठनायक इत्यादि नामोंसे शान्ति नहीं मिलती और ब्रजरसके उपासकोंमें भी विशेष रसके उपासकों को विशेष प्रकारके नामोंमें रुचि होती है जैसे, सखागण 'भाई कन्हैया' 'भाई गोपाल' इत्यादि नामोंसे सुख प्राप्त करते हैं, और गोपिकाओंको, गोपीनाथ गोपीवल्लभ, वृजेन्द्रनन्दन, बनमाली, श्यामसुन्दर इत्यादि नाम छोड़कर दूसरे नाम अच्छे नहीं लगते। गोपियोंमें भी जो श्रीमतीराधिकाके आश्रित हैं वे राधारमण, राधावल्लभ, राधाकान्त, रासबिहारी, राधाविनोद राधामाधव, मदनमोहन प्रभृति नामोंसे आकृष्ट होती हैं। कितनी

ही विपदा आनेपर भी वे इन नामोंको छोड़ दूसरा नाम नहीं लेतीं। नाममें रुचिके अनुसार रसका परिचय मिलता है। किन्तु जो नाम व रस अपनेको प्रिय न हों उनके प्रति द्वेष भाव रखना उचित नहीं। जिसका जो भाव है उसके लिये वही सर्वोत्तम है। निन्दाशून्य हृदय और नम्रभावसे किसी एक नाम और रसमें निष्ठा रख उपासना करनी चाहिये।

गोकुल—बहुतसे वैष्णव काली, दुर्गा, शिव प्रभृति का नाम नहीं जपते। ऐसा क्यों ?

बावाजी--केवल इतनेसे ही वैष्णवताका परिचय नहीं मिल जाता। जो कृष्ण उपासना करना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले शिव और शक्ति की उपासना करनी चाहिये। गोपियोंने कात्यायनी व्रतकर कृष्णको प्राप्त किया था। महादेव श्रीवृन्दा-बनमें गोपेश्वर नाम धारणकर बास करते हैं। उनकी करुणा न हो तो किसी प्रकार कृष्ण प्राप्ति व ब्रजरस प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्रमें कहा है—

सर्वदेव पूजिबे ना हबे तत्पर।
सबार निकट मेगे लबे इष्ट भक्तिरस॥

'पूजा सब देवताओं की करो पर तत्पर न हो।
सबसे इष्ट-भक्तिकी प्रार्थना करो।'

'तत्पर' शब्द से तात्पर्य है कृष्ण कामना छोड़ अन्य कामनाओं के वशीभूत हो उन कामनाओं की पूर्त्ति करनेवाले देवी-देवताओंको सर्वेश्वर व सर्वेश्वरो मान उनकी सेवा करना। इसलिये शास्त्रका कहना है कि सब देवताओंकी सेवा-पूजा करनी चाहिये परन्तु उन्हें सर्वेसर्वा मानकर उनके द्वारा अपनी

कामना पूर्ति करानेके हेतु नहीं, बल्कि कृष्ण भक्ति प्राप्त करनेके हेतु, और उनसे यही प्रार्थना करनी चाहिये।

यह तो हुई शास्त्रकी बात। युक्तिसे भी देखो, माता पिता नाना प्रकारसे कन्याका लालन-पालनकर उपयुक्त पात्रको उसे समर्पण कर देते हैं। परन्तु क्या कन्या माता-पिता की अवज्ञा करने लगती है? या उन्हें भूल जाती है? शिव और शक्ति हैं हमारे पिता और माता। उनकी कृपासे हमें कृष्ण प्राप्ति होती है और उनकी अवज्ञा करनेसे कृष्णको खो देनेमें भी देर नहीं लगती।

इस प्रकार कथोपकथन करते संध्या हो गई। इस ओर जोगेश बाबूने बैठक खानेसे कुर्सी मेज आदि हटा गंगाजलसे उसे स्वच्छ कर धूपबत्ती इत्यादिसे सुगन्धित और सुसज्जित किया।

धीरे-धीरे भक्तगण एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशयने साथियों सहित खोल करतालादिले उस कमरेमें प्रवेश किया और आरती-कीर्त्तनके पश्चात् पद-कीर्त्तन आरम्भ किया–

गौरांग चांदेर मने कि भाव उठिल।
मंडली बंधन छांदे नृत्य आरम्भिल॥
सुमधुर गान करे मुरारी मुकुन्द।
मृदंग मन्दिरा बाजे परम आनन्द॥
नाटुया ठमके नाचे गौरांग सुन्दर।
चारिदिके नाचे जत प्रिय सहचर॥
दक्षिणे निताइ नाचे बामे गदाधर।

सम्मुखे करय नृत्य अद्वैत ईश्वर ॥
गदाधरेर बामे नाचे श्रीबास नरहरि ।
चौषट्टि महान्तगण नाचे घुरि घुरि[1] ॥
रामाइ नन्दाइ नाचे द्वादश गोपाल ।
सबंइ बिभोर भावे नाहिक सझाल[2] ॥
श्रीवास मन्दिर भेल[3] महारासस्थली ।
भकत मंडली भेल गोपिका मंडली ॥
सबेई गायेन हरे कृष्ण हरे राम ।
भुवन मंगल गोरा नाचये सुठाम ॥

सब मतवाले हो उद्दंड नृत्यके साथ गाने लगे 'भुवन मंगल नाम, हरे कृष्ण, हरे राम।' बाबाजी महाशय प्रेममें विह्वल हो गये और गदगद कंठसे गाने लगे—

निताइ गौरांग नाचे जेन[4] राधाश्याम ।
शबई गायेन हरे कृष्ण हरे राम ॥
एहेन[5] गौरांग पेते[6] जदि थाके[7] आश ।
एकान्त भाबे ते हअ नित्यानन्ददास ॥
मुखेअ जे जन बले मुञि[8] नित्यानन्ददास ।
शेइ[9] शे देखिबे गोरार स्वरूप प्रकाश ॥
गोपीगणेर जेइ प्रेम कहे भागवते ।
एकला नित्यानन्द हैते पाइबे जगते ॥
नित्यानन्द प्रेमदाता गौरांग परमधन ।
रासबिलासे पाबे श्रीराधारमण ॥

---

[1]घूम घूमकर, [2]संभाल, [3]हुआ, [4]जैसे, [5]ऐसे, [6]पानेकी, [7]हो
[8]मैं, [9]वह,

हरे कृष्ण हरे राम नाम तरी[1] आरोहणे[2] ।
संसार सागर पार चल वृन्दाबने ॥
निताइ रंगिया मोर निताइ रंगिया ।
भावेर मातोयारा[3] संगेर संगिया ॥
एई जे आमार निताइ नाचे भावेते विभोर ।
आचंडाल जारे पाय धरे देय कोल[4] ॥

गाते-गाते बाबाजी महाशय बेसुध हो गये । दोनों नेत्रोंसे मानों श्रावणकी वर्षा होने लगी । पुलकके कारण शरीर मानों साम्हरके वृक्षके समान हो गया । थोड़ी देरमें हवाके झोंकेसे गिरे कदली वृक्षके समान कम्पित हो भूमिपर गिर पड़े । भक्तगण चारों ओर घूम-घूमकर नृत्य करने लगे और उनके श्रीअंगमें भावसन्धि, भावशावल्य इत्यादि देख आश्चर्य्यान्वित हो गये । कभी शरीर सत्मभित हो जाता और ऐसा लगता कि प्राणशून्य है और कभी हास्य, रोदन, कम्प और पुलक होने लगते । यह देख भक्त कहने लगे 'मनुष्य देहमें इस प्रकारके भावविकार हमने कभी सुने भी नहीं । किसीको संकीर्त्तनमें मूर्छित होते देख हम उसकी हसी उड़ाते थे और कहते थे कि यह ढ़ोंग कर रहा है । पर आज इनकी अवस्था देख हम विस्मयमें पड़ गये हैं ।' भक्तोंके बाबाजी महाशयको घेर कर बहुत समय तक कीर्त्तन करनेके पश्चात् जब उन्हें अर्धवाह्य दशा प्राप्त हुई वे गदगद कंठसे गाने लगे 'भज निताइ गौर, पाबे राधेश्याम, जप हरे कृष्ण, हरे राम ।' भक्तगण भी बाबाजी महाशयके सुरमें सुर

[1]नौका, [2]चढ़कर [3]मतवाला [4]आलिंगन करते हैं ।

मिलाकर उच्च कंठसे गाने लगे। रात्रिके प्राय दस बजेके समय किसीको भी देह स्मृति न रही। एक दलके लोग कहते 'भज निताइ गौर पाबे राधेश्याम' तो दूसरे कहते 'जप हरे कृष्ण हरे राम।' दोनों मानों एक दूसरेको परास्त करनेके लिये प्राण खोलकर कीर्त्तन कर रहे थे और प्रेममें विह्वल हो उद्दंड नृत्य कर रहे थे। बाबाजी महाशय एक दिवालके सहारे खड़े थे। उनके अर्धमुद्रित नेत्रोंसे अश्रु धार बह रही थी। शरीर पुलकायमान था और मुखपर एक अलौकिक मृदु मुसकान थी! वे दाहिने हाथकी तर्जनी उंगली उठा न जाने क्या देख-देख भावमें विभोर हो झूम रहे थे। साथ ही घरके भीतर जितने भक्त थे सब एक अपूर्व अलौकिक सुघ्राणका अनुभवकर मत-वाले हो रहे थे और विस्मत हो देख रहे थे कि यह सुघ्राण कहाँ से आ रही है।

इसी प्रकारकी और भी अलौकिक घटनाएं होने लगीं जिन्हें देख लोगोंका मन कुछ वाह्यानुसन्धानमें लग गया। रातको प्राय बारह बजे अन्तर्यामी बाबाजी महाशयने भक्तोंको थकित जान मानो अपनी बहिर्विस्तृत शक्तियोंको कुछ संकुचित कर अन्तरनिविष्ट किया। पर कीर्त्तन समाप्त होनेपर भी वे पूर्व-वत्, दिवालके सहारे भावाविष्ट अवस्थामें खड़े रहे। एक भक्तने उन्हें दंडवत् प्रणाम करते समय देखा कि आँसू और पसीनेका जल मिलकर चरणों तक बहता हुआ नीचे गिर रहा है। दो तीन भक्त पंखेसे हवा करने लगे। थोड़ी देरमें कुछ वाह्यदशाको प्राप्त होनेपर वे कमरेसे बाहर आकर बैठ गये।

इधर एक भक्तने देखा कि बाबाजी महाशय जिस स्थान पर खड़े थे वहाँ दो चिन्ह ठीक उनके चरण चिन्होंके अनुरूप

पड़े हैं और उनमें कुछ पसीनेका जल संचित है। कौतुहलवश उसने एक कपड़ेसे उस चिन्हको मिटाना चाहा, परन्तु वह किसी प्रकार न छुटा, अपितु और उज्जवल होता गया।

धीरे-धीरे इस घटनाका सब भक्तोंको पता चला और इसे लेकर विशेष आन्दोलन होने लगा। जोगेशबाबू बार-बार अन्दर जाकर दूसरे लोगोंको उस पद-चिन्हके दर्शन कराते और फिर बाबाजी महाशयके पास आकर बैठ जाते। उनसे बहुत कुछ कहनेकी इच्छा करते,परन्तु हृदयका भाव हृदय में ही रह जाता। कुछ कहन पाते। एकदमसे अम्बिकाबाबू कमरे से बाहर निकल कर बाबाजी महाशयसे बोले 'देखिये! आप जिस स्थानपर खड़े कीर्त्तन कर रहे थे वहाँ फर्शके ऊपर ठीक आपके पद-चिन्हके समान दो चिन्ह पड़ गये हैं। इसका क्या तात्पर्य्य हो सकता है?' बाबाजी महाशयने प्रतिष्ठाके भयसे उन्हें डाट-डपटकर किसी प्रकार समझा देना चाहा, परन्तु इस शिक्षित समाजमें बाबाजी महाशयका यह प्रयत्न हाथसे सूर्यको ढकनेके प्रयत्नके समान निश्फल रहा। स्वप्रकाश वस्तु निरपेक्ष भावसे प्रकाशित होने लगी।

उस रात्रिको जोगेशबाबूने भोजनकी विशेष रूपसे व्यवस्था की थी। इसलिये प्रसाद सेवन करानेका कार्य बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। भक्तगण पदचिन्होंकी बात करते करते आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये। बाबाजी महाशयने उस रात्रि भक्त-मंडली सहित वहीं विश्राम किया।

प्रभात होते–होते जोगेशबाबूके घर उन पद-चिन्होंका दर्शन करने बहुतसे लोग आने लगे। सारे नगरमें पद चिन्होंकी

चर्चा होने लगी। कोई-कोई कहते 'नवद्वीपके ये बाबाजी अवश्य कोई महापुरुष हैं। विलायती मिट्टीके बने फर्शपर इस प्रकारका पद-चिन्ह पड़ जाना क्या कोई साधारण बात है ? और एक आश्चर्यकी बात यह है कि जोगेशबाबूके बैठकखानेमें जाते ही एक अनिर्वचनीय भावका उदय होता है और उन बाबाजी महाशयके दर्शनमात्रसे कोई कैसा भी पाषंडी क्यों न हो उसका भी हृदय द्रवीभूत हो जाता है !' परन्तु कालके विचित्र प्रभावसे कोई-कोई इस घटनाको प्रत्यक्ष देखकर भी बाबाजी महाशय पर विश्वास न करते और कहते'यह बाबाजी तो ठीक ही जान पड़ते हैं, परन्तु इनके द्वारा साधारण लोगों का उपकार न होकर अपकार होने की संभावना है; क्योंकि जिस प्रकार कालिजके छात्र पढ़ना लिखना छोड़ इनके पीछे मतवाले हो रहे हैं उससे आसार कुछ अच्छे नहीं दीखते। नव-द्वीपबाबूके पुत्र गोकुलबाबू तो कभी घरपर भी रहते है या नहीं इसमें सन्देह है।' कोई कहते 'हां, इसमें बच्चोंको फुसलानेका एक विशेष गुण दीखता है। ये बच्चोंको भगा ले जाने वाला बाबाजी जान पड़ता है।'

बाबाजी महाशय प्रातः उठकर खोल करतालके साथ 'निताइ गौरांग, निताइ गौरांग, निताइ गौरांग गदाधर। जय शचीनन्दन जगदीश तारन, कलिकलुष नाशन अवतार,' का कीर्त्तन करते-करते नवद्वीप जानेके उद्देश्यसे स्नान करनेके लिये खड़े नदीकी ओर चल दिये। एक तो प्रातःकालके समय मन वैसे ही निर्मल रहता है। दूसरे सुमधुर कंठसे मधुमय नाम-संकीर्त्तन सुन जनसाधारणके प्राण स्वाभाविक रूपसे उन्मत्त हो

उठे। धीरे-धीरे बहुतसे लोग आकर कीर्त्तनमें योगदान करने लगे और कीर्त्तनका प्रवाह इतना बढ़ गया कि बाबाजी महाशय उस दिन नवद्वीप न जा सके। कदाचित् निताइ चांदको और भी कुछ लीला दिखानी थी।

जोगेशबाबू और अन्यान्य राज्यकर्मचारी भी राज्य कार्य भूलकर कीर्त्तनमें सम्मिलित हो लिये। किसीको कार्यालय जाने की सुधि ही न रही। यह किसकी मोहिनी शक्ति थी? नामकी थी या नाम कीर्त्तनकारी महापुरुषकी? यदि कहो कि नामकी तो नाम तो नित्यही होता है,परन्तु इस प्रकारकी आत्म-विस्मृति नहीं देखनेमें आती! इसमें सन्देह नहींकि नाम सर्वशक्तिमान है, परन्तु जिस प्रकार कांच जितना स्वच्छ और शक्तिशाली होता है उतना ही प्रकाश फेंकता है, उसी प्रकार आधार जितना ऊँचा होता है उतना ही नामकी शक्ति उसके द्वारा प्रकाशित होती है।

पद-चिन्हकी घटनाके सम्बन्धमें पाठकोंके हृदयमें स्वाभाविक रूपसे अनेक प्रकारके विचार उदय हो सकते हैं। बहुतसे लोग तो इसे कल्पित ही समझेंगे, परन्तु जिन लोगोंने बाबाजी महाशयकी अलौकिक शक्तिका तनिक भी अनुभव किया है उनके लिये यह एक अति सामान्य घटना है। इस घटनाको केवल तेइस-चौबीस वर्ष हुए हैं और आज भी बहुतसे भक्त हैं जिन्हें इसका प्रत्यक्ष हुआ है। बारह वर्ष तक यह चिन्ह स्पष्ट था। परन्तु हमारे दुर्भाग्यके कारण या इच्छामयकी अपनी इच्छाके कारण या नाना प्रकारके अनाचारोंके कारण इन महापुरुषके अप्रकट होनेके दो ही तीन वर्ष पीछे यह धीरे-धीरे

विलीन हो गया; क्योंकि जोगेशबाबूकी बदली हो जानेके बाद वह मकान किराये पर उठा दिया गया और सभी तरहके अनधिकारी मनुष्य उसमें रहने लगे। उनके लिये इस अप्राकृत चिन्हकी मर्यादाकी रक्षा करना कठिन था। इसलिये चिन्ह धीरे-धीरे अन्तर्हित हो गया। बाबाजी महाशयके कुछ शिष्योंने उस चिन्हको कपड़ेसे ढक कर उसे लोगोंके पैरोंके नीचे आनेसे रोकनेका प्रयत्न किया और उसे किसी प्रकार फर्श तोड़कर वहां से हटना भी चाहा। उनका यह प्रयत्न असफल रहा, परन्तु किसी-किसीने रंगसे कपड़े पर उसकी छाप लेकर रख छोड़ी है।

बाबाजी महायशने जोगेशबाबूकी ओर दृष्टिपातकर पूछा 'तुम्हारा दफ्तर है न ? समय बहुत हो गया है।' जोगेशबाबू बोले 'आप ही जाने प्रभु' बाबाजी महाशयने हँसकर और नाना प्रकारसे प्रबोधनकर किसी प्रकार उन्हें बिदा किया और स्वयं घर लौटकर और स्नानादिकर विश्राम किया।

जोगेशबाबूकी एक अपूर्व दशा हो रही है वे नाममात्र को आफिस जाते हैं। क्लर्कोंसे बात करते समय कुछका कुछ कह जाते हैं और फिर नम्रतापूर्वक कहते हैं 'भाई, मेरी बातका ख्याल न करना।' सोते जागते केवल 'भज निताइ गौर राधे-श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नामका जप स्वतः ही होता रहता है।

कृष्णनगरमें प्राय डेढ़ महीनेसे केवल बाबाजी महाशयके सुमधुर कीर्त्तन, सुललित अनोखी नृत्यभंगि, अपूर्वभावतरंग, सुमिष्ट व्यवहार और मृदु वचनोंकी समालोचना हो रही है। जहाँ भी दो व्यक्ति एकत्र होते हैं केवल यही एक चर्चा करते

हैं। आजसे समालोचनाका एक और भी विषय हो गया है। नित्य जोगेशबाबूके घर बहुतसे लोग पदचिन्हके दर्शन करने आते हैं। एक दिन देबेन्द्रबाबू बोले 'दादा सचमुच बैठकखानेमें पक्के फर्शपर आपके पदचिन्ह पड़ गये हैं।' बाबाजी महाशय बोले 'भाई यह सब निताइ चाँदका खेल है। वही जाने, इस विषयमें किसी व्यक्ति विशेषको लक्ष्य करना ठीक नहीं।'

दिग्नगर यात्रा

बाबाजी महाशय देवेन्द्रबाबूसे बोले 'देखो, भाई। कृष्ण-नगरमें बहुत दिन हो गये, यहाँ और ठहरना ठीक नहीं। देवेन्द्र बोले 'यहाँके लोगोंकी जो अवस्था हो रही है उसे देख ऐसा जान पड़ता है कि इन्हें बताकर यहाँसे शीघ्र चलना कठिन होगा। चलिये आज दिग्नगर चलें।' बाबाजी महाशय देवेन्द्र बाबूका प्रस्ताव स्वीकारकर उसी क्षण 'भज निताइ गौर राधे श्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्त्तन करते-करते बाहर निकले। जोगेशबाबू और अन्यान्य भक्तोंने जब अपने अपने कार्या-लयों से लौटकर देखा कि बाबाजी महाशय कीर्त्तन लेकर बाहर निकले हैं तो सब समझे कि वे नगर कीर्त्तनको जा रहे हैं। परन्तु जब कीर्त्तन धीरे-धीरे पश्चिमकी ओर जाने लगा तब सभी निराश होकर चित्रवत् खड़े रह गये। कई लोग बहुत दूरतक कीर्त्तनके साथ चलते रहे। परन्तु बाबाजी महाशयने बहुत प्रकारसे समझा-बुझाकर उन्हें बिदा किया और आप दिग्नगर की ओर चल दिये। महापुरुषोंका हृदय कुसुमसे भी अधिक कोमल और बज्रसे भी अधिक कठोर होता है। कृष्णनगरवासी नरनारियोंको आशाथी कि अभी कुछ दिन और वे उस अनु-

भूतपूर्व चिन्मय आनन्दका उपभोग करेंगे। परन्तु प्रभुकी इच्छा से उनकी वह आशा पूर्ण न हो सकी। कृष्णनगर आज निरानन्दमय है। जो परमानन्दित हृदयसे नित्यकी भांति बाबाजी महाशयके दर्शन करने गये थे वे दुःखित होकर अपने-अपने घर लौट आये। बाबाजी महाशय सदलबल कीर्त्तन करते-करते दिग्नगर ग्राममें पहुँचे।

सुमधुर संकीर्त्तन ध्वनि सुनकर सातगाछियानिवासी श्रीयुत विपिनबिहारी गोस्वामी महाशयके भांजे श्रीयुतराधिका प्रसाद चक्रवर्ती महाशय बाहर निकले और बाबाजी महाशय और देबेनबाबूके दर्शनमात्रसे आनन्दित हो विशेष आग्रहपूर्वक संकीर्त्तन मंडलीको अपने घर ले गये। ग्रामवासी अनेक लोग आकर इकट्ठा होने लगे। श्रीयुतराधिकाप्रसाद चक्रवतीका घर आज आनन्द भवनमें परिणत हो गया। रात्रिमें प्राय नौ बजे कीर्त्तन समाप्तकर सब विश्राम करने लगे। राधिकाप्रसाद चक्रवर्तीने जब बाबाजी महाशयसे प्रसादादिकी व्यवस्थाके संबंधमें पूछा तो बाबाजी महाशय बोले 'इस सम्बन्धमें देबेन्द्रबाबू जो कुछ कहेंगे वही होगा।' देबेन्द्रबाबू राधिका चक्रवर्तीके साथ परामर्श कर रहे थे। उसी समय श्रीयुतपूर्णचन्द्र गोस्वामी महाशय बोले 'मेरी इच्छा है कि मैं रसोई बनाकर निताइका भोग लगाऊँ' यह सुन राधिका चक्रवर्ती प्रसन्न हो भोगकी सामग्री इकट्ठा करने लगे।

इस ओर कई सज्जन नानारूपसे परस्पर कथोपकथन कर रहे थे। एक बोले 'बड़े दुःखकी बात है। मुसलमानोंने हमारे उस प्राचीन बटके बृक्षकी एक ओरकी सारो डालें काट

दी हैं। न जाने कबसे हम उस वृक्षकी देवताके समान पूजा करते आये हैं। परन्तु वह हमारे भावका तनिक भी आदर न कर कहते हैं 'हिन्दुओंके देवता तो सभी जगह हैं। एक भी देवता दीखे तो जाने यह सुन बाबाजी महाशय बोले 'क्या बात है भाई ?' एक महाशय बोले 'हमारे दिग्नगरके सरकारी मार्ग की एक ओर प्रकांड वट वृक्ष है। उसे हम जन्मसे ही इसी प्रकार देख रहे हैं। मुसलमानोंने ताजिया निकालनेके समय उसकी डालें काट दीं।'

बाबाजी—यहाँ पर मुसलमानोंके कोई मौलवी हैं क्या ?

एक सज्जन—नहीं प्रभु यहाँ कोई मौलवी नहीं है। खोस-चांद काजी नामका एक फकीर है जो बड़ा दुष्ट है, पर हाराधन मंडल नामका एक प्रधान मुसलमान है जो इन लोगोंमें कुछ सभ्य है। सब लोग उसकी बात मानते हैं।

बाबाजी—आपलोग मंगलमय प्रभुसे प्रार्थना कीजिये। वही इसका प्रतिविधान करेंगे। युगयुगान्तरसे ऐसा होता आया है।

बातचीत करते-करते रात अधिक हो गई और सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया।

संकीर्तनमें कल्पतरु-नृत्य

बाबाजी महाशय प्रातःकाल अति शीघ्र प्रातःकृत्य समा-पनकर 'भज-निताइ गौर राधे-श्याम, जय हरे कृष्ण हरे राम।'

कीर्त्तन करते-करते गांवमें निकल लिये हैं। नाम कीर्त्तनकी यह नवीन धुन सुन धीरे-धीरे बहुतसे ग्रामवासी एकत्र हो गये हैं। पर बाबाजी महाशयका किसी ओर लक्ष्य नहीं। वे अर्ध-मुद्रित नेत्रोंसे नाचते-नाचते और कीर्त्तन करते चले जा रहे हैं। थोड़ी देरमें पूर्वोक्त बटवृक्षके निकट जा पहुंचे, और उसकी परिक्रमा तथा दंडवत प्रणामकर मुसलमानोंकी बस्तीकी ओर चल दिये। कोई-कोई ग्रामवासी बोले, 'ये कीर्त्तन लेकर मुसलमानोंके मुहल्ले में जा रहे हैं। न जाने आज क्या होगा।' कोई बोले, 'वे अपरिचित हैं, किन्तु देवेन्द्र चक्रवती तो अपरिचित नहीं वे जानते हैं कि मुसलमानोंके मुहल्ले में कीर्त्तन ले जानेसे अपमानित होना होगा।' एक ने कहा 'चलो हम उन्हें उस ओर जानेसे मना करें। दूसरेने कहा 'जाने भी दो न,देखें क्या होता है ?' पर कौन किसकी सुनता है। बाबाजी महाशय एक परिचित व्यक्ति की भांति कीर्त्तन करते-करते ठीक हाराधन मंडलके घर पहुँच गये। हाराधन घरमें ही था। अकस्मात् घरमें बहुतसे लोगोंको देख किंकर्त्तव्य विमूढ़ भावसे बाहर आया कीर्त्तन मन्डली शिक्षित सैनिकों के समान उसे घेरकर कीर्त्तन करने लगी। सब प्रेममें उन्मत्त और वाह्य स्मृतिरहित हो कीर्त्तन कर रहे थे यकायक बाबाजी महाशयने हाराधनको लक्ष्य कर कहा 'बोल, निताइ गौर राधेश्याम।,

हाराधन—बोल निताइ गौर राधेश्याम।

बाबाजी—बोल बेटा, हरे कृष्ण हरे राम।

हाराधन—बोल बेटा, हरे कृष्ण हरे राम।

बाबाजी—बोल बेटा, निताइ गौर राधेश्याम।

हाराधन—बोल बेटा, निताइ गौर राधेश्याम।

इस प्रकार प्राय पन्द्रह मिनट तक जिस स्वरमें जो शब्द बाबाजी महाशय कहते, हाराधन भी मन्त्र मुग्धकी भाँति उसी स्वरमें वही शब्द दोहराता रहा। हाराधनके शरीर पर श्रमविन्दु झलक रहे थे, नेत्रों से अश्रुधार निरन्तर बह रही थी। उसके दाहिने हाथ में रंग बिरंगी रफटिककी जपमाला थी और पैरोंमें खड़ाऊँ। इसी अवस्थामें वह दोनों हाथ उठा कर नृत्य करने लगा। तब बाबाजी महाशयने आनन्दमें नृत्य करते-करते अधीर भावसे उसे आलिङ्गन किया। उसी समय वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। बाबाजी महाशयने उसके मस्तक को अपनी गोदमें रख कानमें मन्त्र प्रदान किया। मन्त्र देते ही उसका शरीर कम्पित हो उठा। वह भूमिपर लोट-पोट होने लगा। फिर उठकर धूलिधूसरित देहसे नृत्य करने लगा। उसके परिवारके लोग यह देख अवाक् रह गये। उपस्थित ग्रामवासी बीच-बीचमें 'हरि बोल'की ध्वनि लगाते हुए सतृष्ण नेत्रोंसे इस अद्भुत व्यापारको देख विस्मय सागरमें निमग्न हो रहे थे। थोड़ी देरमें हाराधन के पैरकी खड़ाँऊ निकल गई, हाथ की माला गिर पड़ी। वह संज्ञाहीन अवस्थामें बाबाजी महाशयकी ओर टकटकी लगा न जाने क्या कह कर नृत्य करने लगा। बाबाजी महाशय धीरे-धीरे प्रेमानन्दमें नाचते हुए पूर्वोक्त बटवृक्षकी ओर चल दिये। संगी-साथी सब नाम करते-करते उनके पीछे हो लिये। हराधन भी चुम्बकाकृष्ट लोहेके समान आत्महारा हो उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मानो वह बहुत दिनके खोये हुए धनको प्राप्त कर आज अपनेको ही खो बैठा! कुलमर्यादा,स्त्री पुत्रादिकी ममता, सम्प्रदायिकता इत्यादि

उसके हृदयसे दूर हो गये। वटवृक्षके नीचे पहुँचते ही सब लोग नाम करते-करते उसकी परिक्रमा देने लगे। थोडी देरमें क्या देखते हैं कि वृक्षकी जिस-जिस डालके नीचे कीर्त्तन मण्डली जाती है वह कीर्त्तनकी तालके साथ पत्तों सहित हिलने लगती है और उस परसे छोटे-छोटे जल बिन्दु टपकने लगते हैं। दर्शकोंने पहले तो समझा किसी पशु-पक्षीके कारण ऐसा होता है। परन्तु यह भ्रम देर तक न टिक सका, क्योंकि यह प्रत्यक्ष था कि यह लोग कीर्त्तन करते-करते जिस-जिस डालके नीचे जाते थे उसी डालकी यह अवस्था होती थी। हिन्दू या मुसलमान जो भी लोग वहाँ उपस्थित थे आश्चर्यसे उस घटनाको देख रहे थे और दूसरोंको दिखा रहे थे, और बाबाजी महाशय की आलौकिक शक्तिकी मुग्ध कंठसे प्रशंसा कर रहे थे।

धीरे-धीरे हिन्दू-मुसलमान, बालक, बृद्ध, नर-नारी, सभी 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' कीर्त्तन करते-करते वृक्षराजकी परिक्रमा करने लगे। वह वृक्ष मानो आज कल्पवृक्षमें परिणत हो गया। उसके पत्ते-पत्तेमें आनन्दका संचार हो गया। नाम-कीर्त्तनके प्रभावसे उसमें अश्रु, कम्प और नृत्य आदि उत्तरोत्तर बढ़ते गये। विद्युतकी भाँति एकदम नगर के कोने-कोनेमें शोर हो गया कि कहींसे एक महापुरुष आये हैं, जिनके कीर्त्तनके प्रभावसे बटवृक्ष नृत्य कर रहा है। चारों ओर से भाग-भाग कर लोग इस दृष्यको देखने आने लगे। कोई स्नान करते जाते समय हाथमें अंगोछा लिये, कोई स्नान करते-करते भीगे वस्त्र पहने, कोई पानीका कलश सिर पर रखे भागा चला आ रहा है। रास्तेमें जिसे भी देखता है उससे पूछता है। 'अरे भाई ! क्या सचमुच पेड़ नाच रहा है ? कीर्त्तन अब भी हो

रहा है ? हाराधन क्या कर रहा है ? क्या और भी मुसलमान वहाँ हैं ? इन प्रश्नोंका उत्तर सुन वह और भी तेजीसे वृक्षकी ओरभागने लगता है । देखते-देखते वृक्षके नीचे इतनी भीड़ लग गईकि तिल रखने का स्थान न रहा । यकायक बाबाजी महाशय कीर्त्तन-मंडलीसे निकल वृक्षके तनेमें एक सन्धिस्थलके पास जाकर खडे हो गये, जो दोनों ओरसे वृक्षकी लटकती हुई जटाओंसे घिरा होनेके कारण एक सुन्दर गुफा या मन्दिर जैसा लगता था । बाबाजी महाशय ज्यों ही दोनों हाथ ऊपर कर उसके अन्दर खड़े हुए चारों ओरसे हरिध्वनि और जयध्वनि होने लगी । कीर्त्तन करने वाले और भी उच्च स्वरसे कीर्त्तन करने लगे । वृक्षराजभी मानों हर्षमें भर और अधिक नृत्य करने लगे । दर्शक गण सतृष्ण नेत्रोंसे बार-बार वृक्षराज और उसके तने में खड़े महापुरुषके दर्शनकर अधीर होने लगे ऐसा लगता था कि वृक्षराज मूर्तिमान साधु रूपसे दो डालोंके रूपमें अपने दोनों हाथ निकालकर इन महापुरुषको अपनी गोदमें ले प्रेमानन्दमें विभोर हो उद्दंड नृत्य कर रहे हैं ।

ग्यारह बजेके लगभग बाबाजी महाशय कीर्त्तन करते-करते बृक्षके नीचेसे चल दिये । उस समय हाराधन रोते-रोते बोला' मेरी क्या गति होगी ? मैं अब घरमें न रहूँगा । कृपाकर मुझे अपने साथ ले चलिये । मेरे लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है ।'

बाबाजी—देखो भाई परम दयालु निताई चाँदने तुम्हारे ऊपर कृपाकी है । यदि तुम इस बृक्षके प्रति और अत्याचार न करो तो तुम्हारे लिये कुछ भी भय नहीं । आजसे इस बृक्षका

नाम 'कल्पतरु' हुआ। इसके पास आकर जो कोई भक्तिपूर्वक जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करेगा वह उसे अनायास प्राप्त होगी। तुम प्रतिज्ञा करो कि अब कभी इसके ऊपर आघात नहीं करोगे।

हाराधन—मैं आपके पैर छूकर शपथ लेता हूँ। मेरा तो कहना ही क्या, मेरी वंशावलीमें से जो कोई इस पर आघात करेगा उसका वंश न रहेगा।

बाबाजी—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। करुणामय निताइ चाँद तुम्हारे ऊपर कृपा करें। मैं तुमसे अपना धर्म छोड़नेके लिये नहीं कहता। पर तुम किसीका अनिष्ट न करना, किसी भी धर्मके प्रति द्वेष व हिंसाका भाव न रखना। प्राणीमात्रको उद्वेग देना और गोवध न करना। और याद रखना कि तुम्हारे या किसी और के ऊपर कोई विपत्ति आये तो इस कल्पतरुकी जड़ में दूध और गंगाजल देनेसे तथा इसके नीचे घीका दीपक जलाने से दूर हो जायगी। अब घर जाओ। मैं जब तक इस ग्राममें रहूँ इसी स्थानपर आकर मिला करो।'

इतना कह बाबाजी महाशयने हारधानको आलिंगन किया और 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, 'कीर्त्तन करते-करते ग्राममें प्रवेश किया।

ग्राममें जहाँ भी दो आदमी जुटते हैं बटबृक्षके नाचनेकी चर्चा करते हैं। कोई कहता है 'बाबाजी कोई भौतिक मन्त्र जानते हैं जिससे भूत आकर पेड़ नचाने लगता हैं।' कोई कहता है 'भाई इस पेड़पर बहुतसे बन्दर रहते हैं। कीर्त्तन सुनकर वह भागने लगते हैं। तभी इसकी डालें हिलतीं हैं। कोई कहता है

'ऐसा लगता है कि उस मंडलीका कोई आदमी पेड़ पर छिपकर बैठ जाता है और यह करतूत करता है।' यह सुनकर दूसरा बोल उठता है 'यह बिलकुल असम्भव है। यदि ऐसा होता तो हम सब लोग वहाँ उपस्थित थे। क्या हमारी आँखें बंद थीं ?' दूसरा कोई गर्वमें कहता 'क्या रखा है इन बातोंमें, यदि नाम करनेसे पेड़ नाचने लगता तो असंभव ही क्या रह जाता ? फिर वहाँ समझदार व्यक्ति ही कितने थे। सब अंधविश्वासी ही तो थे। यदि हमें साक्षात् कोई दिखला सके तो हम जाने।' इस प्रकार तरह-तरहकी समालोचना होने लगी। भिन्नरुचिर्हि लोकः।

धीरे-धीरे यह बातें बाबाजी महाशयके कान तक पहुँचीं। उनका यह स्वभाव था कि किसीके कितनी ही निन्दा करनेपर अथवा अपशब्द कहने पर भी दुःखित न होते। परन्तु साधु, शास्त्र, गुरु, वैष्णव, नाम व श्रीमूर्तिकी तनिक भी निन्दा सुनते तो जैसे भी हो निन्दक व्यक्तिके हृदयमें प्रकृत तत्वकी उपलब्धि करानेकी चेष्टा करते। आज नामकी शक्तिका अपमान होते देख उनका हृदय पीड़ित हो उठा और उपस्थित सज्जनोंको लक्ष्यकर बोले 'देखिये, नाम सर्वशक्तिमान है। सामान्य पेड़ पत्थर नचाना तो साधारण बात है। इस संबन्धमें यदि किसीको कोई संदेह हो तो कीर्त्तनके साथ चले। उसका संदेह दूर होगा।'

दूसरे दिन प्रातःकाल जब बाबाजी महाशयने कीर्त्तन आरम्भ किया तब कीर्त्तनकी ध्वनि सुनते ही अनेक लोग आकर उपस्थित होने लगे। संकीर्त्तन मंडली नगरभ्रमण करते हुए करीब साढ़े नौ बजे जैसे ही कल्पतरुके नीचे पहुँची उसके ऊपरवाली शाखा पूर्ववत कीर्त्तनकी तालके साथ नाचने लगी। समालोचकगण विशेष रूपसे अनुसन्धान करने पर भी जब पेड़के नाचनेकाकोई कारण स्थिर न करसके तो बाबाजी महाशयसे बोले

'देखिये, यदि कोई इस पेड़पर चढ़कर परीक्षा करना चाहे तो आपको कुछ आपत्ति तो न होगी ?' उन्होंने उत्तर दिया 'आपत्ति तो कुछ भी नही । पर ब्राह्मण छोड़कर और कोई न चढ़े तो अच्छा है ।'

तब दस बारह वर्षके दो ब्राह्मण बालकोंको पेड़पर चढ़ाकर उनसे कहा गया कि 'देखो अच्छी प्रकार देख-भालकर बताओ कि पेड़पर कोई पक्षि, बानर इत्यादि तो नहीं है ।' जब कुछ भी न दीख पड़ा तो सबने एक मत हो स्वीकार किया कि केवल नामकी शक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता । एक व्यक्तिने कहा 'नाम तो सभी करते हैं, पर मैंने आज तक ऐसी आश्चर्यजनक घटना नहीं देखी । मुझे विश्वास होता है कि यह निश्चय ही कोई महापुरुष हैं । हम लोग कीर्त्तन लेकर मुसलमानोंके मुहल्लेमें जानेसे कितना भय खाते हैं । परन्तु उस दिन हाराधन मंडलकी दशा देखी ? देखो इस समय भी वह नाम करते-करते, और नेत्रोंसे अश्रु बहाते इधर चला आ रहा है ।' दर्शकगण सभी बृक्षराजका नृत्य, बाबाजी महाशयका प्रेमोन्मत्त भाव और हाराधन मंडलकी दशा देख मुग्ध हो गये ।

इस प्रकार बहुत समयतक कात्तनकर कोई १२ बजे बाबाजी महाशयने कीर्त्तनके साथ ग्राममें प्रवेश किया ।

नित्य सात दिन तक इसी तरह बटबृक्षके नीचे कीर्त्तन होता रहा और वृक्षराज भी परमानन्दसे कीर्त्तन करते रहे ।

एक दिन राधिका चक्रवर्तीने बाबाजी महाशयसे पूछा 'प्रभु, बटबृक्ष तो और भी बहुत हैं और उनके नीचे कीर्त्तन भी होता है, परन्तु इस प्रकारकी अद्भुत घटना तो और कहीं सुनाने

में नहीं आती। इस बटवृक्षमें क्या विशेषता हैं ? यह जाननेकी मेरी बड़ी इच्छा है।'

बाबाजी—ये एक महापुरुष है जो किसी कारण वृक्ष योनि प्राप्तकर बहुत दिनोंसे यहाँ बास करते हैं। ये नाम कीर्त्तन सुनकर प्रेमानन्दसे नृत्य करते हैं। जो इनके प्रति आन्तरिक श्रद्धा भक्तिका भाव रखेगा उसे अवश्य प्रेम भक्तिलाभ होगी और जो विपत्तिके समय इन्हें दूध और गगाजल चढ़ायेगा उसे वाञ्छित फल की प्राप्ति होगी।

राधिका—वृक्षोंमें ज्ञान व दर्शन श्रवाणादि शक्ति होती है क्या ?

बावाजी—होती क्यों नहीं। यदि न होती तो पृथ्वी से रस खींचकर कैसे अपनी पुष्टि करते और वृद्धि प्राप्त करते। श्रुतिमें लिखा है 'वृक्षः पश्यति स्वादयति च'। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यदि एक वृक्षसे दस-पंद्रह हाथ दूर कोई लता उग आये तो उसकी गति वृक्षकी ओर ही होती है और चेष्टा करनेपर भी उसकी इस गतिको नहीं रोका जा सकता। इससे स्पष्ट है कि उसके अन्दर जीवनी शक्ति है। इसलिये हमारे पूर्व-जनोंने बेलपत्र, तुलसीपत्र इत्यादि तोड़नेके समय क्षमा-प्रार्थना युक्त मन्त्रोंके उच्चारणका उपदेश किया है और बिना कारण किसी वृक्षके शाखापल्लवादि तोड़नेका विरोध किया है। शास्त्रोंमें ऐसा भी उल्लेख है कि भगवान् या भगवद्भक्तोंके प्रति अपराध हो जानेके कारण किसी-किसीको बृक्षयोनि मिली है और कर्म-समाप्त होने पर फिर नरदेहकी प्राप्ति हुई है। जैसे नलकुबर और मणिग्रीव दो भाई नारदके अभिशापसे अर्जुन बृक्षके रूपमें

बृन्दाबनमें और राजा रन्तिदेव गुरु वशिष्टदेवके कोपके कारण शालबृक्षके रूपमें चित्रकूट पर्वतपर वास करते थे।

राधिका—किन किन कारणों से जंगम जीव स्थावरत्व को प्राप्त होता है ?

बाबाजी—इसके अनेक कारण हैं। उदाहरण रूपसे यदि कोई भागवत्शास्त्र, श्रीगुरुदेव, ब्राह्मण, साधु, वैष्णव, श्रीमूर्ति, नाम, महाप्रसाद, चरणामृत, चरणतुलसी, अतिथि, एवं आरत्रिकादिको उपस्थित देख, अभ्युत्थान, अभिबन्दन,प्रणाम,अभ्यर्थना और अनुगमन न कर स्थिर भावसे खड़ा रहे तो वृक्षत्व, बैठा रहे तो पाषणत्व, और सोता रहे तो अजगरत्व को प्राप्त होता है। हम अज्ञानवश यह नहीं जानते कि कौन किस देहसे स्थावरत्व को प्राप्त हुआ है। इस कारण सभीको भक्तिके नेत्रोंसे देखना हमारा कर्त्तव्य है।

इस प्रकार पन्द्रह-सोलह दिवस पर्यन्त कीर्तनानन्दमें और नाना विधि कथोपकथनमें व्यतीत हुए।

शान्तिपुर–गमन

एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय प्रातःकृत समापन कर साथियों सहित प्रभाती सुरमें 'भज निताइ गौ राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम॥'नाम गाते हुए चल पड़े बहुतसे ग्रामवासी आकर और भी कुछ दिन दिग्नर रहने के लिये विशेष अनुरोध करने लगे। उन्होंने विनय पूर्वक सबसे विदा माँगी और शान्तिपुरकी ओर चल दिये। कोइ नौ बजे लगभग शान्तिपुरके दक्षिणी भाग में श्रीअद्वैतप्रभु के आराधना

स्थल 'बाबला' नामक स्थानमें जा पहुँचे। वहाँ पहुंचते ही अद्वैत प्रभुकी उपासनाकी स्मृति जाग उठी और वे उच्चस्वरसे रोदन करते-करते मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़े। एकदमसे उनकी ऐसी अवस्था देख साथी लोग उन्हें पकड़कर व्याकुल भावसे जोर-जोर कीर्त्तन करने लगे। कुछ देरमें उन्हें अर्धवाह्य अवस्था प्राप्त हुई और वे बैठकर नाममें आँखर देने लगे—

भज निताइ गौर राधेश्याम। (भज जीव अविराम) (गदाइ श्रीवास प्राणाराम) (श्री अद्वैत गुणधाम) (गौर आना ठाकुर आमार)

यह गाते-गाते यकायक कूदकर खड़े हो गये और फिर गाने लगे:—

जय जय अद्भुत सो पहुं[१] अद्वैत,
सुरधुनि सन्निधाने।
आँखि मूदि रहे, प्रेमे नदी बहे,
बसन तितिल[२] धामे[३]॥
निज पहु मने घन गरजने,
उठे जोड़े जोड़े लम्फ[४]।
डाके[५] बाह तुलि[६], कांदे[७] फुलि फुलि[८],
देहे विपरीत[९] कम्प॥
अद्वैत हुँकारे सुरधुनि तीरे,
उदय नदिया माझ[१०]।

[१] प्रभु, [२] भीगा, [३] पसीनेमें, [४] कूदना, [५] पुकारते हैं, [६] उठाकर, [७] रोते हैं, [८] फुट-फुट कर, [९] अद्भुत, [१०] में।

जय सीतानाथ,करैल[1] बकत[2] ।
नन्देर नन्दन हरि ।
कहे बृन्दाबन, अद्वैत चरण,
हियार माझारे धरि[3] ॥

(सीतानाथेर जय देओ भाइ) (परम दयाल पतित पावन)
(निताइ गौर आना ठाकुर[4])इत्यादि ।

अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक विकारोंने पूर्ण-रूपसे बाबाजी महाशयके शरीरपर अधिकार जमा लिया है! उपस्थित भक्तवृन्द भावमें विभोर हो कीर्त्तन सुन रहे हैं। बीच-बीचमें बाबाजी महाशयकी नामधुन और प्रेमहुंकार सुन उन्हें बोध होने लगता है कि फिरसे शान्तिपुरमें श्रीअद्वेतचन्द्र प्रकट हुए हैं—फिरसे जीवोंकी दुर्दशा देख सीतानाथ श्रीअद्वैत प्रभुके प्राण रो उठे हैं—फिरसे वह शुभ दिन आ गया है—फिरसे निताइ गौरने अपने करूणाकटाक्षसे सबके हृदयक्षेत्रको सींचकर प्रेमोन्मत्त किया है, नहीं तो यह प्रेम की बाढ़ और कहाँसे आ सकती थी।

बालक, वृद्ध, नर-नारी सभी अनिर्वचनीय आनन्द सागरमें निमग्न हैं।

इस प्रकार बहुत समयतक कीर्त्तनकर बाबाजी महाशय प्रेमाविष्ट दशामें भूमिपर लोट-पोट होने लगे। एक जटाधारी साधु उस स्थानका पुजारी था। उसीने ही उस दिन सबके प्रसाद की व्यवस्थाकी। प्रसाद पाकर सबने विश्राम किया।

---

[1] किया, [2] व्यक्त, [3] हृदयमें धारणकर, [4] महाप्रभु श्रीगौरांग को लाने वाले ठाकुर।

सुन्दरानन्ददाससे मिलन

सन्ध्यासे कुछ पूर्व एक जटाधारी, विभूतिभुषित, गौरवर्ण सुदीर्घकाय गेरुआवस्त्रधारी सन्यासीने आकर बाबाजी महाशय से पूछा 'आप लोग बंगाली हैं ?'

बाबाजी—हाँ महाराज ! हम बंगाली हैं।

साधु—आप हिन्दी भाषा नहीं समझते ।

बाबाजी–जी, हम बंगला छोड़ दूसरी भाषा नही नानते। तब साधु बंगलामें इनके साथ कथोपकथन करने लगा।

साधु—आपका कौनसा सम्प्रदाय है ?

बाबाजी—हमलोग गौड़ीय वैष्णव अर्थात् श्रीश्रीगौरांग देवके मतावलंबी हैं।

साधु—चैतन्यदेव तो गेरुआवस्त्रधारी, शिखासूत्र-माला-तिलकादि-चिन्ह-रहित भारती सम्प्रदायभुक्त, दशनामी सन्यासी थे। उनके मतावलम्बी होकर आप लोग माला, तिलक, शिखा एवं शुभ्रवस्त्र क्यों धारण करते हैं ?

बाबाजी—श्रीगौरांगदेव हैं पूर्ण-पूर्णतम भगवान्। उनकी आज्ञा षालन करना हमारा कर्तव्य है। उनके आचरणका अनु-करण करना नहीं। शास्त्रमें कहा है 'ईश्वराणांवचः सत्यं तथैवाचरणं क्वचित्।' महाजनगण भी अपनी आज्ञाननुकूल कार्य करनेको कहा करते हैं, अपने आचरणके अनुकूल करनेको नहीं। हाँ,यदि कोई ईश्वरके सदृश आचरणकर सके तो ठीक है। किन्तु पहले पूतना, अघासुर, बकासुर, प्रभृति असुर बध,

कालिया-दमन, एवं गोवर्द्धनधारण करनेकी शक्ति रखे तभी रासबिहारी बन सकता है। महाप्रभुका अनुकरण करनेवाला व्यक्ति यदि जगाई-मधाई, प्रकाशानन्द सरस्वती, वासुदेव सर्वभौम प्रभृतिका उद्धार, काजीदलन, महाप्रकाश, षड्भुजदर्शनादि आचरण कर सके तो उसका माला-तिलक-सूत्रत्याग और गेरुआ धारण करना भी शोभा दे सकता है। महाप्रभुका महावाक्य है 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥' जो हृदयसे इसका पालन करते हुए उनका अनुकरण कर सकते हैं वे भले ही करें। परन्तु जब हम जगाई-मधाई-उद्धार व तृणादपि प्रभृति श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित कोई भी कार्य करनेके लिये समर्थ नहीं, तब उनके आदेशानुसार श्रीसनातन गोस्वामीने जो सादे वस्त्र, माला-तिलक और शिखाका धारण करने, मस्तक मुंडन करने, भगवानको अर्पण की हुई सात्विक वस्तु ग्रहण करने, एवं अनिवेदित वस्तु, स्त्रीसंग, तत्संगीसंग, आमिष और परचर्चादि वर्जन करनेका विधान किया है उस विधान के अनुसार महाप्रभुके मतावलम्बी वैष्णवोंका चलना ही सब प्रकारसे कर्त्तव्य है।

साधु—अच्छा, कलियुगमें तो एक मात्र कल्कि अवतार का ही शास्त्रोंमें उल्लेख है। आप लोग चैतन्यदेवको अवतार किस प्रकार कहते हैं? और 'गौरांगौ भगवद्भक्तौ न च पूर्णो न चांशकः' प्रमाण के अनुसार भी चैतन्यदेव केवल एक भगवद्भक्त ही थे। इसलिये आप लोग यदि उनकी भक्ति करें तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु उन्हें भगवान कहना तो बड़ा आपत्ति जनक है।

बाबाजी—श्रीगौरांगदेवकी शास्त्र निर्दिष्ट अवतारों गणना नहीं है यह हम स्वीकार करते हैं। स्वेच्छाम

लीलाविग्रह और पूर्ण-पूर्णतम हैं। इसलिये वे अवतार नहीं थवतारी हैं। जिस समय उनकी लीला करनेकी इच्छा होती है उसी समय लीलाके उपयोगी अपने नित्यपरिकरगणके साथ अवतीर्ण होते हैं। उन्होंने स्वयं ही कहा है:—

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्यानामधर्म्मस्यत दात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

इस प्रकारके भगवद्वाक्य अवतार विषयक हैं, क्योंकि संहार, धर्म्मसंस्थापन एवं अधर्मविनाशादि कार्योंके लिये भगवान के स्वयं अवतीर्ण होनेकी आवश्यकता नहीं। इसलिये उन्होंने अपने मुखसे हो कहा है—

जुग प्रवर्तन हय अंशकला हइते ।
आमा बिनु केह नारे ब्रजप्रेम दिते ॥

इससे स्पष्ट है कि स्वयंरूप भगवानके अविर्भावके लिये किसी शास्त्र प्रमाणरूपी कारणकी आवश्यकता नहीं। स्वेच्छा-मय स्वतंत्र भगवान साधारण कलिकाल-पीड़ित अधर्मी जीवों को अपनी प्रेम-सम्पत्ति प्रदान करनेके हेतु विशुद्ध आश्रयजातीय भावकान्ति अंगिकारकर श्रीनवद्वीपधाममें अवतीर्ण हुए हैं। इसी लिये शास्त्रोंमें गौरांगदेवको कलियुगके प्रच्छन्न अवतार कहकर निर्दिष्ट किया है।

साधु—गौरांगदेव पूर्ण-पूणतम भगवान हैं, इसका क्या प्रमाण है ?

बाबाजी—प्रथम प्रमाण यह है कि स्वयं भगवानके अतिरिक्त और किसीका प्रेम वितरण करनेका अधिकार नहीं। शास्त्रमें कहा है—

सन्त्यवतारा बहवः पङ्कजनाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्यः कोवा लतास्वपि प्रेमदो भवति॥

यद्यपि स्वयं भगवानके सर्वमंगलमय अनेकों अवतार हैं, तथापि श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई लता-पताओं तकको प्रेम-वितरण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता। दूसरा प्रमाण है श्रीगौरांगदेवका पात्र-कुपात्रका विचार न कर निरपेक्ष भावसे प्रेमदान करना। शिव ब्रह्मादिको भी जो ब्रजप्रेमरूपी अमूल्य निधि साधन द्वारा दुष्प्राप्य है उसे बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी, म्लेच्छ और यवन तकको पाप ताप और अपराधका विचार न कर बिना मांगे लुटा-लटाकर देनेकी क्षमता स्वयं भगवानमें ही है। जैसे प्राकृत राज्यमें कोई राजा अपनी स्वतंत्र इच्छासे कारागारमें जाकर दंड भोगनेके कालाकालका विचार न कर सब कैदियोंको मुक्त कर सकता है, पर उसका कोई कर्मचारी ऐसा नहीं कर सकता, उसी प्रकार स्वयं भगवानके अतिरिक्त और कोई अवतारादि भगवन्नियम उल्लंघन पूर्वक ब्रजप्रेम वितरण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखता।

साधु—यह तो युक्तिकी बात हुई। क्या इस संबन्धमें कोई शास्त्र प्रमाण भी हैं।

बाबाजी—अवश्य हैं। ऐसा कोई इतिहास, पुराण, तन्त्रादि नहीं जिसमें श्रीगौरांगदेवकी भगवत्ता प्रतिपन्न न हुई हो। मैं आपके सामने कितने प्रमाण रखूं।

विश्वसारतन्त्रके उत्तरखंडके ग्यारहवें पटलमें:—

गंगाया दक्षिणे भागे नवद्वीपे मनोरमे।
कलिपापविनाशाय शचीगर्भे सनातनि॥
जनिष्यते प्रिये मिश्रपुरन्दर गृहे स्वयम्।
फाल्गुने पौणमास्याञ्च निशायां गौरविग्रहः॥

श्रीमद्भागवत् में—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य ग्रन्हतोऽनुयुगं तनुम्।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

अनन्त संहिता में—

वृन्दाबने सदा कृष्णमानन्दसदने मुदा।
बामे च राधिकादेवी स्थित्वा रमयते प्रिये॥
नवद्वीपे च स कृष्ण आदाय हृदये स्वयम्।
गजेन्द्रगमनां राधां सदा रमयते मुदा॥
ललिताद्याश्च याः सख्यः श्रीराधाकृष्णयोः शिवे।
सेवन्ते निजरुपेण वृन्दारण्ये च तौ सदा॥
नवद्वीपे तु ताः सख्यो भक्तरूपधराः प्रिये।
एकाङ्गं श्रीगौरहरिं सेवन्ते सततं मुदा॥
य एव राधिका कृष्णः स एव गौरविग्रहः।
यच्च वृन्दाबनं देवी नवद्वीपञ्च तत्शुभम्॥
वृन्दाबने नवद्वीपे भेदबुद्धिश्च यो नरः।
तथैव राधिकाकृष्णे श्रीगौरांगे परात्मनि॥
मच्छुलपातर्निर्भिन्नदेहः सोऽपि नराधमः।
पच्यते नरके घोरे यावदाहुतसंप्लवम्॥

इस प्रकार और भी बहुतसे शास्त्र प्रमाणों द्वारा बाबा जी महाशयने श्रीगौरांगदेवके पूर्ण-पूणतमत्वको सिद्धकिया। तब

सन्यासी महाराज बोले 'आज मेरे हृदयमें जो बहुत दिनोंसे संदेह था आपकी कृपासे दूर हुआ। परन्तु मेरी एक दो शंकायें और भी हैं। यदि आज्ञा हो तो कहूँ।

बाबाजी—भाई तुम्हारे प्रश्नोंसे मैं परमानन्दित होता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो निःसंकोच पूछ सकते हो।

साधु—श्रीगौरांगदेवने स्वयं हरिनाम संकीर्त्तन किया और दूसरोंको भी हरिनाम करनेका उपदेश किया। फिर महाप्रभुके सम्प्रदायके वैष्णव निताई-गौर नामका कीर्त्तन क्यों करते हैं। इससे क्या महाप्रभुकी आज्ञा उलंघन करनेका अपराध नहीं होगा?

बाबाजी—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। श्रीगौरांगदेवके श्रीमुखका आदेश है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुणा।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

अर्थात्—

उत्तम हइया आपनाके मानेतृणाधम।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम॥
वृक्ष जेन काटिलेओ किछु ना बलय।
शुकाइया मैले[1] कारो पानी ना मांगय॥
जेइ जे मागये तारे देय आपन धन।
धर्म्म[2] वृष्टि सहि आनेर[3] करये पोषण॥

---

[1]सूखकर गिर पड़ता हैं, [2]धूप, [3]दूसरे का

उत्तम हइया हबे निरभिमान।
जीबे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान॥
एई मत हइया जेइ कृष्ण नाम लय।
श्रीकृष्ण चरणे तार प्रेम उपजय॥

हम हैं कलिहत जीव' हमारे लिये इस प्रकार महाप्रभू का आदेश पालनकर हरिनाम करना नितान्त असम्भव है। इस लिये श्रीचैतन्य चरितामृतकार ने कहा है,—

एकबार कृष्णनामसे जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइ तत पाप करे॥
सेइ कृष्णनाम जीव लय वहुबार।
तथापि ना हय प्रेम पुलकाश्रु धार॥
तबे जानि अपराध आछये प्रचुर।
कृष्णनाम्-बीज ताहे ना हय अंकुर॥
निताइ गौरांगे नाहि से सव विचार।
नाम लैते प्रेम हय बहे अश्रु धार॥

प्रेम ही जीवकी एक मात्र वाञ्छित वस्तु है। यह प्रेमधन श्रीनिताइगौरका नाम लेनेसे सहज ही प्राप्त होता है। इस लिये हमारे मतसे नानापराध, सेवापराध और वैष्णवापराधादि वर्जन पूर्वक, तृणादपि श्लोकका पालन करते हुए बहुप्रयास साध्य हरिनाम संकीर्त्तन करनेकी अपेक्षा निताइगौरांग नामका कीर्त्तन करना ही कलिकालमें जीवोंके लिये अधिक उपयोगी है। देखिये, यदि हमें कोई थोड़ासा अर्थादि दान करता है तो हम उसके प्रति चिरजीवन कृतज्ञतापाशमें बंध जाते हैं, और संवाद-

पत्रोंमें नानाप्रकारसे दाताका गुणगान करते हुए उसके नामका कीर्त्तन करते हैं। किन्तु जो चिर-अनर्पित, शिवब्रह्मादिको भी दुष्प्राप्य, और श्रीमती राधिकाकी अमूल्य निधि प्रेमधनको जनसाधारणमें लुटानेकेलिये श्रीराधिकाकी भावकान्ति अंगिकारकर मृत्युलोकमें घर-घर डोले हैं और जिन्होंने बिन मांगे जीवोंको पुकार-पुकारकर विनय और आग्रह पूर्वक उस निधिका वितरण किया है, उनके प्रति जिस-किसी रूपमें जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करें,जितना भी उनका गुणगान और नामकीर्त्तन करें उतना क्या थोड़ा नहीं हैं? हमारे विचार से तो जीवमें यदि थोड़ा भी कर्त्तव्यज्ञान है तो अहर्निश निताइ-गौरांगका नाम लेना ही उसके लिये सब प्रकारसे उचित है।

साधु—तो श्रीगौरांगदेवका नाम भले ही करते। निताइ का नाम क्यों करते हैं।

बाबाजी—श्रीगौरांग और श्रीनित्यानन्द हैं विषय-आश्रय तत्व। श्रीनित्यानन्दका नाम करनेसे श्रीगौरांग महाप्रभुकी प्राप्ति होती है, जैसे—'कृष्णेर गाने भाई, राधिका चरण पाई, राधा नाम गाने कृष्णचन्द्र' उसी प्रकार 'गौरांग पाइते जदि थाके अभिलाष। एकान्त भावे ते हओ नित्यानन्ददास।'श्रीगौरांगदेवने निज मुखसे कहा है—

जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइएर नाम।
आमि बिकाइ तारे देखाई जुगल राधाश्याम॥

मुखेओ जेजन बले मुइ, नित्यानन्ददास।
निश्चय देखिबे आमार स्वरूप प्रकाश॥

गापीगणेर जेइ प्रेम कहे भागवते।
एकला नित्यानन्द हइते पाइबे जगते॥

साधु—अच्छा यदि निताइका नाम लेनेसे और उनका चरणाश्रय करनेसे गौरांगकी प्राप्ति होती है तो गौरांगका नाम लेने की क्या आवश्यकता है।

बाबाजी—निताइका चरणाश्रय करनेकेलिये गौरांग नामकी आवश्यकता है। निताइने निज मुखसे कहा है—

दिन गेले हा गौरांग बले एकबार।
से जन आमार हय आमि हइ तार॥
भज गौरांग कह गौरांग लह गौरांगेर नाम।
जे जन गौरांग भजे शेई आमार प्राण॥ इत्यादि।

इस प्रकार बहुत समय तक साधुके साथ तत्वालोचना हुई। शान्तिपुर निवासी प्रभु सनातन और अन्यान्य भक्तगण जो वहाँ उपस्थित थे बाबाजी महाशय के मुखसे अति सरल भाषामें निताइ-गौरांग तत्वकी व्याख्या सुन परमानन्दित हुए। सन्यासी महाराज अति व्याकुल भावसे बाबाजी महाशयके चरणोंमें गिर कर रोते हुए बोले 'मैं इतने दिनोंसे अभिमानमें मत्त हो और साधुका ढोंग बना जगतको ठग रहा था। आज आपकी कृपासे मेरा अभिमान मिट गया, मेरे ज्ञान चक्षु खुल गये, मेरे सारे संशय दूर हो गये और मुझे एक नया जीवन प्राप्त हुआ। आज मैं समझ गयाकि अपने ही ठाकुर परमदयाल प्रेमदाता निताइगौरांगको भूलकर मनुष्य जीवनके अमूल्य समय को मैंने वृथा नष्ट किया। अब आप मेरे ऊपर कृपा करें। मैं

आपके चरणोंमें आत्म समर्पण करताहूँ। जिस उपायसे मेरा चित्त स्थिर होकर निताइगौरांगके चरणोंमें आसक्त हो आप कृपा कर वही कीजिये।'

बाबाजी महाशयने प्रेमार्द्र हृदयसे साधुको उठाकर आलिंगन किया और गदगद कण्ठसे कहने लगे। 'बाबा! धन्य कलियुग। कोई चिन्ता नहीं, हमारे प्रभु अदोश-दर्शी हैं। वे पाप, ताप, अपराधादि नहीं देखते। व्याकुल प्राणसे उन्हींको पुकारो। शान्तिमय शान्ति विधान करेंगे।

इसी समय आरतीका घण्टा बजा। सब लोग ठाकुरजी के सम्मुख जाकर आरती कीर्त्तन करने लगे। रात्रिको दस बजे आरती-कीर्त्तन समाप्तकर सबने विश्राम किया। सन्यासी भी वहीं रहे। ये वही सन्यासी पुजारी थे जिन्होंने बाबाजी महाशयके प्रसादकी व्यवस्था की थी। ये एक बंगाली सधु थे और इनका नाम सुन्दरानन्द था। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रातः कृत्य समापनपूर्वक नाम करते-करते जब बाबाजी महाशय वहाँसे चलने लगे सुन्दरानन्द सिर मुंड़ाये और सादे कपड़े पहने रोते-रोते आये और बाबाजी महाशयके चरण पकड़कर बोले 'गुरुदेव! कृपाकर मंत्र देकर मेरा उद्धार कीजिये। आजतक मैं साधुका वेश बनाकर घूमा करता था। मैंने किसीसे दीक्षा नहीं ली थी और न इसकी आवश्यकता ही समझी थी। आज आपकी कृपासे मेरे हृदयका अज्ञानांधकार दूर हो गया है और मैं समझ गया हूँ कि अदीक्षित जीवन पशु जीवनके समान है। इसलिये आप दीक्षा देकर मेरा पशुत्व दूर करनेकी कृपा करें। बाबाजी महाशयने सन्यासीकी व्यकुलता देख

आलिंगनपूर्वक उनके कानमें मन्त्र प्रदान किया। संगीगण प्रेमानन्दसे नृत्य करने लगे।

गुप्तिपाड़ामें बृन्दाबनचन्द्र-दर्शन

कुछ देर पीछे बाबाजी महाशय सदल कीर्त्तन करते-करते गुप्तिपाड़ा घाटपर पहुंचे। इन्हें देखते ही घाटका मल्लाह दंडवत् प्रणामकर हाथ जोड़कर बोला 'प्रभो! यदि उस पार जानेकी इच्छा हो तो इस अधमकी नौकापर चलिये।'

बाबाजी—बाबा, हमारे पास पैसे नहीं हैं।

मल्लाह—आपके पास आशीर्वाद तो है, प्रभु। अधमके प्रति थोड़ी कृपा होनी चाहिये, फिर पैसोंकी क्या कमी।

सब आनन्दित हो उसकी नौकापर चढ़ गये। गुप्तिपाड़ा के घाटपर पहुंचकर मल्लाहने पूछा, 'आप लोग क्या वृन्दावन-चन्द्रके मन्दिर जायेंगे?'

बाबा—हाँ, बाबा! वृन्दावनचन्द्रके दर्शन करनेकी बड़ी तीव्र इच्छा है।

मल्लाह—वहाँ नौकापर जानेमें ही सुविधा होगी, चलिये मैं लिये चलता हूँ।

बाबाजी—बाबा तुम्हें कष्ट होगा। ठहरो, हम पैदल हीं चले जायेंगे।

मल्लाह—प्रभु, रोज तो पैसेके लिये नाव चलाता ही हूँ। आज परमार्थके लिये सही।

मल्लाहने थोड़ी ही देरमें ठीक ठाकुरजीके सामनेवाले घाटपर ले जाकर नाव लगादी। बाबाजी महाशय सबके साथ कीर्त्तन करते-करते बृन्दाबनचन्द्रके सामने उपस्थित हुए और उनके मुखचन्द्रका दर्शनकर प्रेमानन्दमें नृत्य करते हुए गाने लगे:—

श्रीराधारमण, रमणी मनोमोहन,
बृन्दाबन बनदेवा।
अभिनव रास रसिकबर नागर,
नागरीगणकृत सेवा॥
व्रजपति दम्पती[1] हृदय आनन्दन[2],
नन्दन नव घनश्याम।
नन्दीश्वरपुर, पुरट[3] पटाम्बर,
रामानुज गुणधाम॥
श्रीदाम सुदाम, सुबल सखा सुन्दर,
चन्द्रक चारु अवतंस।
गोवर्द्धनधर, धरणी सुधाकर,
मुखरित मोहन वंश॥
कालीय दमन, गमन जिति कुञ्जर[4],
कुञ्ज-रचित-रतिरंग।

---

[1]नन्द-यशोदा, [2]आनन्द देनेवाले, [3]सुनहरा, [4]हाथीको भी पराजित करनेवाली चाल।

गोविन्ददास, हृदय मणिमन्दिरे,
अबिचल मुरति त्रिभंग ॥

मधुर-मधुर, रूप मनोहर,
नागरी नागर राज ।

मधुर-मधुर, बदन सुन्दर,
मधुर-मधुर साज ॥

नव नटवर, श्यामल सुन्दर,
नटिनी रंगिनी राधा ।

नव जलधर, जनु सौदामिनी,
नयने-नयने बांधा ॥

सुदंर अधरे, मोहन मुरली,
राधे-राधे बलि बाजे ।

राइर अधरे[1] मृदु मृदु हांसी,
किबा सुमधुर माझो[2] ॥

श्याम गले दोले[3], बनफुल हार,
राइ-गले गजमति ।

आध बरण, कषित काञ्चन,
आध नीलमनि ज्योति ॥

श्याम शिरे सोहे, मयूर मुकुट,
राइ-शिरे दोले बेनी ।

रसेर हिल्लोले, सुमधुर दोले,
शिखि-कोरे जनु फणी ॥

---

[1] राधाके अधरोंपर, [2] बीचमें, [3] झूल रहा है ।

श्याम कटितटे सुपीत बसन,
राइ नीलाम्बरी साजे।
रातुल[1] चरणे, सोनार नूपुर,
रुनुर झुनुर बाजे॥
श्याम करे सोहे, कनक बलया[2],
राइ करे निल चूड़ि।
भ्रमरा भ्रमरी, गाय शुकसारी,
नाचे मयुरा मयुरी॥
ललिता विशाखा, चित्रा इन्दुरेखा,
चम्पकलतिका धनी।
सुदेबी श्रीरूप, मञ्जरी अनूप,
सेवये समय जानि॥
रंगदेबी आर तुंग विद्यासार,
श्रीरति संगिने सने[3]।
सेबे मनोरंगे, ललित त्रिभंगे,
परम आनन्द मने॥

भक्तगण सभी उद्दंड नृत्य कर रहे हैं। पूर्वोवत गोकुलबा[बू] भी इन्द्रके समान ऐश्वर्य और अप्सराके समान स्त्रीको त्याग कर जभीसे बाबाजी महाशयके साथ हैं। वे भी आनन्दमें विभोर हो नृत्य कर रहे हैं। थोड़ी देरमें बृन्दावनचन्द्रके पुजारी ने प्रसादी माला लाकर बाबाजी महाशयके गलेमें डाली। माला डालते ही कीर्तनानन्दका श्रोत इतने वेगसे बहने लगा कि जो

[1] रक्तवर्ण, [2] कड़ा, [3] साथ।

कोई भी उसके निकट आता वह उसकी तरंगमें बहकर प्रेमानन्द सागरमें निमग्न हो जाता। जब कीर्तन समाप्त हो गया तब उपस्थित सेवाइतगणोंने आकर बृन्दाबनचन्द्रका महाप्रसाद पाने के लिये अनुरोध किया। सबने स्नानादिकके पश्चात् महाप्रसाद सेवनकर कुछ देर विश्राम किया। चार बजे बाबाजी महाशय ने सातगाछिया जानेकी प्रबल इच्छा प्रकट की, परन्तु बहुत लोगोंके अनुरोधसे एक रात गुप्तिपाड़ामें रहनेके लिये स्वीकृति देनेको बाध्य होना पड़ा। धीरे-धीरे बहुतसे लोग आकर उनसे तरह-तरहके प्रश्न करने लगे। एक भक्तने पूछा, 'प्रभु माया-मोहाच्छन्न इस दुःखमय संसारमें रहकर किस प्रकार भगवान्को प्राप्त कर सकते हैं ?'

बाबाजी—बाबा, संसार केवल दुःखमय ही नहीं है। इसमें सुख-दुःख दोनों ही हैं। व्यवहार दोषसे कभी सुखमय और कभी दुःखमय प्रतीत होता है।

भक्त—संसारी लोग जिसे सुख कहते हैं वह तो क्षणिक ही होता है। इसलिये उसे सुख न कहकर दुःख ही कहना ठीक जान पड़ता है।

बाबाजी—बाबा, गृहस्थ आश्रम शिक्षा-क्षेत्र है। इससे ब्रह्मचर्य्य, बाणप्रस्थ और भिक्षु इन तीनों आश्रमोंका पालन होता है। इसीलिये शास्त्रोंने इसे दूसरे आश्रमोंके पिता-माताके समान कहा है। शास्त्रानुमोदित पंथानुसार व्यवहार करनेसे इस आश्रममें भगवान्को प्राप्त करना जितना सहज है उतना और आश्रमोंमें नहीं है। ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, मीराबाई, करमा-बाई इत्यादि सभी तो गृहस्थ थे, श्रीमन्महाप्रभुके परिकर भी

प्राय सभी गृहस्थ थे। उन्हें क्या भगवत्प्राप्ति नहीं हुई। शुक नारदादि भी उस गृहस्थ आश्रमकी लालसा रखते हैं जिसमें रहकर ब्रजगोपिकाओंने श्रीकृष्णको प्राप्त किया था। हाँ, इतना अवश्य है कि केवल गृहस्थ आश्रम भगवत्प्राप्तिका साधन नहीं है। भगवत्प्राप्तिमें बाधक या साधक तो अपना आचरण होता है।

भक्त—गृहस्थ आश्रममें विधिपूर्वक रहनेके क्या नियम हैं ?

बाबाजी--माता-पिताकी सेवा, अतिथि सत्कार, परोपकार, सत्यप्रतिपालन, दृढ़प्रतिज्ञा, इष्टनिष्ठा, देवता ब्राह्मण और वैष्णवोंकी सेवा, निर्हेतुकदान, संतोष, विषयोंमें अनासक्ति, सुखदुखमें भगवत्कृपाका अनुभव करना, भगवद्दास-दासी समझ स्त्री-पुत्र आदिका प्रतिपालन करना इत्यादिको शास्त्रकारोंने गृहस्थोंके लिये मुख्य कर्त्तव्य बताया है। गृहस्थको अपनी सम्पत्तिके चार भागकर उनमेंसे एक देवता, ब्राह्मण, और अतिथिकी सेवाके लिये, दो सांसारिक व्यय, निर्वाह और संचयके लिये और बाकी अपने लिये रखना चाहिये। इस बाकी अंशको संचयके लिये न रखकर केवल तीर्थपर्यटन, परोपकार, निर्हेतुकदान प्रभृति निज परमार्थके लिये व्यय करना चाहिये। केवल अर्थके ही चार भाग करने हों सो नहीं, व्यावहारिक जगतकी प्रत्येक वस्तुके इसी प्रकार भाग करने चाहिये। दिनरातमें जो आठ प्रहर होते हैं उन्हें चार भागोंमें बाँटकर दो भाग अर्थात् चार प्रहर सांसारिक कार्यमें, दो प्रहर सत्संग, परोपकार इत्यादि में, और बाकी दो प्रहर अपने परमार्थ साधनमें लगाने चाहिये। इसके

विरुद्ध आचरण करनेसे हम भगवन्नियमोंका उलंघन कर अपराधके भागी होंगे और नाना प्रकारके दुःख-भोग करेंगे । विचार कर देखो कि हमारे जीवनमें कितना भ्रम है । हम सवेरेसे संध्या तक संसारके निमित्त कितना परिश्रम करते हैं । हमें एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलता और न हम किसी प्रकारकी क्लान्ति बोध करते हैं । इसके पश्चात् रात्रिके प्रथमार्धको जो परोपकारादिके लिये निर्दिष्ट है हम परनिन्दा परचर्चा और नाच-गाने इत्यादि आमोद-प्रमोदमें व्यतीत करते हैं । हमारे पास इतना भी समय नही रहता कि किसीके घर आग लग जाय तो यथाशक्ति उसकी सहायता कर सकें । यदि कोई अनुरोध भी करे तो हम विरक्तिके साथ कह देते हैं 'भाई सबेरेसे संध्यातक तो बैलकी तरह जुता रहा । अब कहीं जानेकी सामर्थ्य कहाँ ।' किन्तु इसी समय यदि कोई मित्र आकर कहे 'चलो थोड़ा टहल आये' तो झट, छड़ी हाथमें लेकर प्रसन्नता-पूर्वक उसके साथ घूमनेको तैयार हो जाते हैं । रात्रिके शेषार्धको जो भगवान्‌ने शान्तिपूर्वक परमार्थ साधनके लिये बनाया है हम चोरी, डकैती लाम्पट्य और क्रीड़ा कौतुकमें गवाँ देते हैं । यदि किसी प्रकारका सुयोग न मिले तो निद्रामें ही समय काट देते हैं । क्योंकि यह तो हमारा अपना समय है । इसकेलिये किसीको क्या आपत्ति हो सकती है । कितने आश्चर्यकी बात है कि बारह घण्टे स्त्री-पुत्रादिके लिये लगातार परिश्रम करते हैं और दस मिनटका भी अवकाश नहीं चाहते । यदि कोई धर्मकी बात कहना चाहे, तो उसके लिये भी हमारे पास ससय नहीं रहता, यहाँ तक कि संध्या-पुजादिके लिये भी हमारे पास समय नहीं रहता । किन्तु परमार्थके लिये परम करुणामय भग-

वान्के चरणारबिन्दमें मन लगानेका जो समय है उसे व्यर्थ व्यय करनेमें हमें तनिक भी संकोच नहीं होता। अपने सुखके लिये दूसरेका सर्वस्व लूटनेको तैयार रहते हैं। अपने देहकी पुष्टिके लिये दूसरेके प्राण लेलेनेमें भी आनंदका अनुभव करते हैं। अपने पुरुष देहके क्षणमात्रके इन्द्रिय सुखकेलिये परस्त्रीका सतीत्व लूटनेमें अथवा अपने स्त्री देहकी इन्द्रिय परितृप्तिकेलिये जिस किसी भी उपायसे निष्किञ्चिन. परमयोगी महापुरुषकी परमार्थ सम्पत्ति लूटनेमें हमारा हृदय तनिक भी कुण्ठित नहीं होता। ऐसे व्यक्तिके लिये संसार सुखमय कैसे हो सकता है? बाबा! सुख और दुख दोनों गृही-उदासी, धनी-दरिद्र, पंडित-मूर्ख, कुलीन, स्त्री-पुरुष, व बालक- वृद्धका विचार नहीं करते। सभी के ऊपर इनका समान अधिकार है। सुख-दुख मानसिक बृत्तियाँ हैं। गृहस्थ या उदासी चाहे कोई भी आश्रम क्यों न हो आश्रमोचित कर्त्तव्यपालन करनेसे ही सुख मिलता है। चिरदरिद्र सुदामा विप्र, विदुर, श्रीवास और केला बेचने वाले श्रीधरके सुखका कभी क्षय नहीं हुआ। उनके आनन्दकी दिनप्रतिदिन वृद्धि होती रही, और दुर्योधन, कंस, शिशुपाल इत्यादिका सुख क्षणस्थायी रहा। सारांश यह कि अपनेको भगवत्-दास मानकर और यह समझकर कि हम उनकी आज्ञापालन करने ही संसारमें आये है और आज्ञापालन कर चले जायेंगे, फलाफलके भागी वही होंगे, जीवन व्यतीत करें तो सुख-दुःखकी कोई सम्भावना नहीं रहती। इसप्रकारके अनासक्त संसारी व्यक्ति प्रातःकाल उठकर भगवान्से प्रार्थना करते हैं,—

लाकेश चैतन्यमयाधिदेव †श्रीनाथ विश्वम्भर दीनवन्धो।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्त्तयिष्ये॥

---

†'श्रींकान्त विक्षोभवदाज्ञयैव'—पाठान्तर

और सोते समय निजकृत कर्म्मोंका फलाफल भगवच्चरणों में अर्पितकर देते हैं—

जानि कानि च कर्म्माणि ज्ञानाज्ञानकृतानि वै ।
तानि तान्येव सर्व्वाणि तुभ्यमेव समर्पये ॥
तवास्मीति तु विज्ञाय मत्कृतं यत् शुभाशुभम् ।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर ॥

'हे प्रभो ! मैंने प्रातःकालसे आपके संतोषके हेतु संसार यात्राकी । मैं अपने ज्ञान-अज्ञानकृत अच्छे-बुरे सभी कर्म तुम्हें अर्पित करता हूँ । मैं जब तुम्हारा ही हूँ तो मेरे किये हुए कर्मों के फलाफलके भोक्ता भी तुम्हीं हो, इसलिये मेरे ऊपर प्रसन्न हो ।

तब भक्त बाबाजी महाशयके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते' बोले, 'बाबा ! मैं नितान्त आत्म-सुख-परायण, मायामुग्ध कलि कालका जीव हूँ । साधन द्वारा इस प्रकारका अनासक्त भाव प्राप्त करना मेरे लिये असंभव है । एकमात्र आपके समान महापुरुष की कृपाके अतिरिक्त मेरे लिये दूसरा कोई उपाय नहीं । इसलिये इस अधम दासपर कृपा करें जिससे किसी जन्ममें अनासक्त धावसे संसार कर सकूं ।' बाबाजी महाशयने कृपा परवश हो भक्तको आलिंगनकर कृतार्थ किया ।

संध्या समय वृन्दाबनचन्द्रकी आरती आरम्भ हुई। बाबीजी महाशय भक्तोंके साथ खोल करताल लेकर आरती कीर्त्तन करने लगे । कुछ देरमें रूपाभिसार और मिलन कीर्त्तन करनेके पश्चात 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, नाम करते-करते उद्दंड नृत्य करने लगे। उपस्थित भक्तगण एक अनिर्वचनीय अभिनव आनन्दमें विभोर हो गये । रात्रिको कोई

दस बजे कीर्त्तन समाप्तकर और श्रीबृन्दाबन चन्द्रका प्रसाद ग्रहणकर सबने वहीं विश्राम किया।

सातगाछियामें शारदीय दुर्गापूजा

दूसरे दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम, कीर्त्तन करते-करते भक्त मंडली सहित सातगाछियाकी ओर चल दिये। पूर्वोक्त श्रीपाद विपिनविहारी गोस्वामी प्रभु भी इनके साथ थे। बाबाजी महाशय आगे-आगे नृत्य करते जा रहे थे। धीरे-धीरे श्रीमदन गोपालजीके मन्दिरमें जा पहुंचे और श्रीमूर्ति दर्शनकर प्रेमानन्दमें विभोर हो उद्दंड नृत्य करने लगे। श्रीमदनगोपालजीके सेवाइत बाबाजी महाशयको पाकर जिस अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव कर रहे थे उसे भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्रीमदन गोपालजीकी सेवामें अनेक हिस्सेदार हैं। उस दिन श्रीपाद कुंज विहारी प्रभुकी सेवाको बारी थी। श्रीमदनगोपालजीके मन्दिर में अभिनव आनन्द-उत्सव हो रहा था। एक ओर अभिनव कीर्त्तनानन्द और दूसरी ओर भोगरागका विराट आयोजन। ग्रामवासी सभी आनन्दमें मतवाले थे और तरह-तरहके शाक, सब्जी, कन्द-मूलफलादि लाकर श्रीमदनगोपालजीके मन्दिरमें उपस्थितकर रहे थे।

कुछ देर के कीर्त्तन करने पश्चात् सब विश्राम करने लगे। इसी समय श्रीपादविपिनविहारी गोस्वामी प्रभु आकर बोले 'समय अधिक हो गया है, श्रीमदनगोपालजीका भोग भी हो गया है। अब कृपाकर स्नानादि कर प्रसाद पाने चलिये।' बाबाजी महाशयने भक्तगण सहित प्रसाद पा विश्राम

किया। आजसे नित्य इस ग्राममें इसी प्रकार महामोत्सव होने लगा और ग्रामवासियोंका उत्साह क्रमशः बढ़ने लगा। एक दिन श्रीपादकुञ्जबिहारी गोस्वामीप्रभु बाबाजी महाशयसे बोले 'प्रभु आपके यहाँ आनेसे श्रीमदनगोपालजी भी नित्य नाना प्रकारकी उपादेय वस्तु भोग कर रहे हैं। इसलिये और कुछ दिन यहां रहकर हमारा लौकिक और पारमार्थिक दोनो प्रकारका सुख वर्धन करने की कृपा करें।

बाबाजी बोले 'देखो कुञ्ज! सुखमय भगवान ही एकमात्र जीवोंके सुखदाता हैं। वे जीवोंके सुखकेलिये सर्व्वदा व्यस्त रहते हैं। यद्यपि जीव उन्हें नहीं भजते वे सदा जीवको भजा करते हैं। फिर यदि जीव अनन्य भावसे उनका भजन करे तव तो कहना ही क्या? उन्होंने स्वयं कहा है—

जेइ जन भजे मोरे अनन्य हइया।
तारे भिक्षा देइ मुजि माथाय †बिहिया॥

आज शारदीय दुर्गापूजाका अधिवास है, ग्रामवासी सब अपूर्व आनन्दमें उन्मत्त हो रहे हैं। इस ग्राममें प्रचलित प्रथाके अनुसार केवल ब्राह्मणको छोड़ और किसी जातिके मनुष्यके यहाँ पूजाके उपलक्षमें बलि नहीं होती। इसलिये बाबाजी महाशय प्रसन्नतापूर्वक कुञ्जबाबूसे वोले 'देखो, कल हम लोगोंको योगमाया देवीकी पूजाके दर्शन कराने होंगे।' कुञ्जबिहारी गोस्वामी विनीतभावसे बोले 'जो आज्ञा, पर प्रातः स्नानादिकर

---

†अपने माथे पर ढोकर

बाहर निकलना अच्छा होगा, क्योंकि वापस आनेमें समय अधिक हो जायगा ।'

दूसरे दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय भक्तमण्डलीके साथ गंगा स्नान करने गये। बाबाजी महाशयका एक स्वाभाविक नियम था कि किसी भी स्थानको जाते समय नाम करते जाते थे। इसलिये वे स्नान करनेके पश्चात् योगमाया देवीके दर्शन करने 'भज निताइ गौर राधेश्याम । गौरी शंकर सीताराम' का कीर्त्तन करते-करते एक मन्दिरमें पहुंचे। वहाँ परिकर सहित दशभुज-मांके दर्शनकर साष्टांग प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर प्रेम-गद-गद कण्ठसे गाने लगे—

योगमाया योगेश्वरी जगतपालिका ।
जगबासी जीब तव बालक बालिका ॥
भक्तिदायिनी मा गो भवानी शंकरी ।
सन्ताने भक्ति दे गो करुणा बितरि ॥
बिशुद्ध भक्ति प्रेम जीबे बुझाइते ।
जोगमाया रूपे अबतीर्ण अबनीते ॥
वृन्दाबने अप्राकृत लीला करिबारे[1] ।
पौर्णमासी रूपे थाकि[2] बरज नगरे ॥
गोपीसह गोपीनाथे परकीय भावे ।
लीला कराइले तुमि आपन प्रभावे ॥
कात्यायनी रूपे पूजि तोमार चरण ।
गोपीगण पाइलेन श्रीनन्दनन्दन ॥
तब कृपा बिने हेन[3] काहार[4] शक्ति ।
लभिते[5] पारये[6] ब्रजेर बिशुद्ध भक्ति ॥

---

[1]करनेको, [2]रहकर, [3]ऐसी, [4]किसकी, [5]पा, [6]सके ।

ताइ कर जुड़ि मागो करि ए प्रार्थना ।
कृष्ण भक्ति बिना जेन ना करि कामना ॥
गोपिकार आनुगत्ये गोपी देह पेये ।
भजिब राधिकानाथे ब्रजे जनमिये ॥
अनंगानन्ददा कुंजे ललितार जुथे ।
श्रीराधारमण सेबि राधिका सहिते ॥
एइ से प्रार्थना मागो तोमार चरणे ।
पूर्ण कर पौर्णमासी निज दयागुणे ॥

गानेके साथ अश्रु धार निरन्तर बह रही है। क्षण क्षणपर कम्प, पुलक और कण्ठरोध हो रहा है। शैव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वैष्णव, बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सब इस अभूतपूर्व प्राणभेदी कीर्त्तनको सुन मतवाले हो रहे हैं। किसीको वाह्य स्मृति नहीं। जो भी वहां आता है वही प्रेममें विह्वल होकर नृत्य करने लगता है। छोटे-बड़ेका कोई विचार नहीं। जाति, कुल और विद्याभिमानी अनेक ब्राह्मण भी नेत्रोंसे अश्रु बहाते हुए आत्महारा होकर भूमिपर लोट-पोट हो रहे हैं।

बहुत समयतक इसी प्रकार कीर्त्तनकर बाबाजी महाशय 'कात्यायनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरि । कृष्णभक्ति प्रदे देवीयोगमाये नमोऽस्तुते ।।' कहकर साष्टांग दण्डवत्‌कर दूसरी ओर चले। इस प्रकार प्रत्येक घर जा-जाकर योगमायाके दर्शन और प्रणाम,बन्दना कीर्त्तन, स्तवादिकर बारह बजेके लगभग श्रीमदनगोपालजीके मन्दिरमें लौट प्रसादादि सेवनकर विश्राम किया। यथासमय आरती कीर्त्तनादिमें वह रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर पूर्ववत् गंगा स्नानादिकर मांके दर्शन केलिये निकले।

आज महाष्टमी है। ब्राह्मणोंके मोहल्लेमें बड़ी धूमधाम है। बलिपर बलि चढ़ रही है। रक्तारक्ति हो रही है। सुनकर बाबाजी महाशय कांप उठे और 'ओह ! कैसा भीषण व्यापार है ! कैसी निष्ठुरता है !' कहकर रोते हुए बोले 'हा निताइ ! कब इनकी चित्तशुद्धि होगी।' हाय ! हाय ! मांके सम्मुख इतना अत्याचार !

मां किस प्रकार इस हत्याकाण्डको सहन करती हैं, समझमें नहीं आता। इस हिंसावृत्तिके प्रवर्तक एकबार विचार कर नहीं देखते कि उन्होंने धर्मके नामपर वंश परम्परासे यह कितनी भीषण, अमानुषिक और लोमहर्षक प्रथा चला रखी है।'

गिरीशचन्द्र मुखोपाध्याय नामक एक सज्जन बाबाजी महाशयकी यह व्याकुलता देख बोले 'महाशय इस समय आपकी अवस्था देख मनमें होता है कि जैसे यह हिंसा बहुत बड़ा पाप है। परन्तु बात यह है कि पूर्वाचार्य्यगण जो रीति चला गये हैं उसका पालन न करनेसे जगतमें निन्दा होती है। यदि वेद तन्त्रादिकी बात कहें इनमें वैधी हिंसाकी व्यवस्था भी है और निशेध भी।जैसे—

'अश्वमेधेन यजेत।' 'वायव्यां श्वेतछागलमा लभेम।'

तन्त्रमें कहा है—

'यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः॥ इत्यादि

अन्यत्र यह भी कहा है कि—'अहिंसा परमो धर्म्मः'। इससे वास्तवमें हमारा धर्म क्या है यह बात समझमें नहीं आती। यदि आप शास्त्र और युक्ति द्वारा समझानेकी कृपाकरें तो बहुत अच्छा हो।'

बाबाजी—बाबा ! वेदके दो विभाग हैं। एक कर्मकाण्ड और दूसरा ज्ञानकाण्ड। 'कर्म्मकाण्डके भी प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके अनुसार दो प्रकार हैं। 'अश्वमेधेन यजेत' इत्यादि प्रमाण प्रवृत्तिमार्गसे सम्बन्ध रखते हैं और 'अहिंसा परमो धर्म्मः, मा हिंसी सर्व्वाभूतानि,अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ सर्व्ववैरत्यागः' इत्यादि निवृत्ति मार्गसे। प्रबृत्तिमार्ग सकाम और स्वर्गादिभोग-साधक है। निर्दिष्ट कालतक भोग-भोग लेनेके पश्चात फिर पहलेकी स्थिति प्राप्त कराता है। निवृत्तिमार्ग निष्काम और मुक्ति व भक्तिपथका साधक होनेके कारण अखंड, अव्यय और नित्य सुखका देने वाला है। 'स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात्।, (महतोभयात् काल भयात् इति यावत्) शक्ति उपासना तन्त्रोक्त एवं आचारगत है। आचार तीन प्रकारका है। यथा—पश्वाचार, दिव्याचार एवं वीराचार।

पश्वाचार यथा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं स्वयमेवाहरेत् पशुः।
न शूद्रदर्शनं कुर्य्यात् मनसा न स्त्रियं स्मरेत्॥

दिव्याचार यथा—

दिव्यश्च देवताप्रायः शुद्धान्तःकरणः सदा।
द्वन्द्वातागे वीतरागः सर्व्वभूतसम क्षमी॥

वीराचार यथा—

वीरसाधन कर्म्माणि पञ्चतत्वादितानि च।
मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रामैथुनमेवच।
एतानि पञ्चतत्वानि त्वया प्रोक्तानि शंकर।

हम कलिकालके जीव हैं। स्वभावसे ही द्वेष हिंसा और पापकी ओर हमारी प्रवृत्ति है। इसके ऊपर यदि हिंसा कार्यमें शास्त्रका अवलम्बन प्राप्त हो तो हमारी दुरवस्थाकी सीमा ही न रहेगी। इसीलिये महानिर्वाणतंत्रमें वीराचारके सम्बन्ध में पार्वतीजीने कहा है—

कलिजा मानवा लुब्धाः शिश्नोदर परायणाः।
लोभात् तत्र पतिष्यन्ति न करिष्यन्ति साधनम्॥
इन्द्रियाणां सुखार्थाय पीत्वा च बहुलं मधु।
भविष्यन्ति मदोन्मत्ता हिताहित विवर्जिताः॥
परस्त्रीधर्षकाः केचिद्दस्यवो बहवो भुवि।
न करिष्यन्ति ते मत्ताः पापा योनिविचारणम्॥
अतिपानादिदोषेण रोगिणो बहवः क्षितौ।
शक्तिहीना बुद्धहीना भूत्वा च विकलेन्द्रियाः॥
हृदेगर्त्ते प्रान्तरे च प्रासादात् पर्वतादपि।
पतिष्यन्ति मरिष्यन्ति मनुजा मदविह्वलाः॥
केचिद्विवादयिष्यन्ति गुरुभिः स्वजनैरपि।
केचिन्मौना मृत-प्राया अपरे बहुजल्पकाः॥
अकार्य्यकारिणः क्रूरा धर्म्ममार्गविलोपकाः।
हिताय यानि कर्म्माणि कथितानि त्वया प्रभो।

मन्ये तानि महादेव विपरीतानि मानवे ॥
के वा योगं करिष्यन्ति न्यासजातामि केऽपि वा ।
स्तोत्रपाठं यन्त्रलिप्तं पुरश्चर्य्यां जगत्पते ॥
युगधर्म्मप्रभावेन स्वभावेन कलौ नराः ।
भविष्यन्त्यतिदुर्वृत्ताः सर्वथा पापकारिणः ॥

तो विचार कर देखे, यदि प्रवृत्तिमार्गोक्त कौलाचारमत के अनुसार महामायाकी उपासना करनेसे पापवृत्ति की ही वृद्धि हुई तो यह मनुष्य जीवनकी उन्नतिका साधन हुआ या अवनति का । तभी इस तन्त्रके उपसंहारमें शंकरदेवने कहा है—

अतो बहुविधं कर्म्म कथितं साधनान्वितम् ।
प्रवृत्तियेऽल्पबोधाना दुश्चेष्टितनिवृत्तये ॥
यतो हि कर्म्म द्विवधं शुभश्चाशुभमेव च ।
अशुभात् कर्म्मणो यान्ति प्राणिनस्तीव्रयातनाम् ॥
कर्म्मणोऽपि शुभाद्देवि फलेष्वासक्तचेतसः ।
प्रयान्त्यायान्त्यमुत्रेह कर्म्मश्रृङ्खलयन्त्रिताः ॥
यावन्न क्षीयते कर्म्म शुभं वाशुभमेव वा ।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि ॥

इसीलिये आचार्योंने कहा है, 'यदि मनुष्य-जीवनकी उन्नति चाहते हो, यदि इन्द्रियोंको पाप-पथसे हटाकर सत्पथ पर लगाना चाहते हो, यदि कलिके बन्धनसे छूटकर भक्तिपथके पथिक बनना चाहते हो, तो एकमात्र निवृत्तिमार्गका अवलम्बन करो । इसलिये पश्चाचारके अनुसार महामायाकी पूजा करना ही हमारा कर्त्तव्य है । शास्त्रमें कहा है 'अतस्तां कालिकां भद्रां पशुभावेन पूजयेत् ।'

गिरीश—प्रभु, प्रवृत्तिमार्गसे ही तो मनुष्य निवृत्तिमार्गको पहुंचता है। क्योंकि भोग-विलाससे इन्द्रियवृत्तिकी ह्रासता और वासनाकी निवृत्ति होती है, लालसाका विनाश होता है और विशुद्ध सात्विक भावका उदय होता है।

बाबाजी—बाबा! कोटि-कोटि युगोंतक भोग करनेसे भी वासनाकी निवृत्ति नहीं होती। भगवान्‌ने गीतामें कहा है-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भुय एवाभिवर्द्धते॥

सत्य, त्रेता और द्वापर युगमें अश्वमेध गोमेधादि यग्यों का जो विधान था उसके द्वारा ऋषिगण बृद्ध और जरातुर गाय घोड़ों इत्यादिका बधकर यज्ञके अन्तमें फिर उन्हें पुनर्जीवितकर नवयौवन सम्पन्नकर दिया करते थे। कलियुगके ब्राह्मण ऐसा नहीं कर सकते, इस लिये शास्त्रों ने विधान किया है:—

अश्वमेधं गवालम्भं सन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

अन्यान्य युगोंमें केवल यज्ञके लिये ही पशुबध किया जाता था। परन्तु आजकल उस यज्ञकी जगह केवल इन्द्रिय यज्ञ होता है अर्थात् केवल इन्द्रिय तृप्तिके लिये ही बेचारे निर्दोष पशुओंका बध किया जाता है। कितना विभत्स व्यापार है!

स्वप्राणान् यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः।
स याति नरकं धोरं यावदाहूतसंप्लवम्॥

अच्छा मैं पूछता हूँ कि मां जगदम्बाके सम्मुख उनकी इन अबोध और निरीह सन्तानोंका निर्दयतासे बध क्यों होता

है ? क्या वे केवल मनुष्योंकी ही माता और पालयत्री हैं ? मानव ही क्या अशेष दोषोंसे दूषित होनेपर भी उनकी क्षमाके पात्र हैं ? क्या केवल मानवोंके लिये ही वे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई हैं ? हाय हाय ! हमारी कितनी भयानक स्वार्थपरता है। देखो, किसीके सन्तान नहीं होती तो वह मांके सामने कहता है 'मां जगदम्बे ! यदि मेरे सन्तान होजाय तो तुम्हें उदयास्त बलि प्रदान करूंगा।' कोई एकसौ आठ, कोई एक लाख बकरों की बलिकी प्रतिज्ञा करता है। कोई इस बातका विचार नहीं करता कि मां जगदम्बा केवल मनुष्योंकी ही मां नहीं हैं, वे प्राणीमात्रकी मां हैं। हम अत्यन्त कठोरतासे जिन जीवोंका प्राणबध करते हैं, वह भी जगदम्बाकी ही सन्तान हैं। हमें भी एक दिन इस कर्मके फलके कारण इसी प्रकारकी देह प्राप्तकर इन्हीं जीवोंके हाथ अपने प्राण देने होंगे। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

येत्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशूनद्रह्यन्ति विश्रद्धाः प्रेत्यखादन्ति ते च तान्॥

देवी पुराणमें भी कहा है—सुरथ राजाने एक लाख बलि देकर मां जगदम्बाकी पूजाकी थी। उन्होंने मृत्युके समय देखा कि एक लाख खड्गधारी पुरुष उसकी ओर दृष्टि लगाये खड़े हैं। उस समय राजाने भयभीत होकर कांपते-कांपते पूछा 'आप लोग कौन हैं ? और मेरी ओर आपकी तीक्ष्ण दृष्टि क्यों है ?' वे बोले 'क्या हमें तुम भूल गये ? तुमने राज अहंकारमें मत्त होकर निर्दयतासे मांके सामने एक लाख पशुओंकी बलि दी थी। हम वही एक लाख प्राणी हैं। तुम्हें एक लाख जन्मतक पशुदेह धारण करनी होगी और हम लोग एक-एककर आगे-

पीछे तुम्हारा वध करेंगे।' यह सुनकर सुरथ राजाके नेत्रोंमें जल आगया। वे कांपते-कांपते शुष्क कंठसे कहने लगे 'हा प्रभो! मैंने अज्ञानवश जो अपराध किये हैं, उनके लिये मुझे क्षमा कीजिये और ऐसी मति प्रदान कीजिये कि अब संसारमें जन्म लेकर कभी इस प्रकारका पापाचरण न करूं।'

इस प्रकार बहुत प्रार्थना स्तुति करनेपर भगवान्ने सन्तुष्ट हो वर दिया कि तुमने बहुत दान पुण्य किया है, इसलिये उस सुकृतिके प्रभावसे तुम्हें एक लाख जन्म न ग्रहण करने होंगे। एक जन्ममें ही यह एक लाख प्राणी तुम्हारे ऊपर खड्गाघात करेंगे। ओह! कितनी भयानक कष्टप्रद मृत्यु! इन सब शास्त्रोंको देखसुनकर भी हमारे प्राणोंको भय नहीं लगता!

गिरीश—मां अद्याशक्ति, त्रिजगदधिष्ठात्री, त्रिजगन्माता और जीवमात्रकी पालयत्री हैं, इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा। फिर भी मांने महिषासुर इत्यादिका बध किया था। इस कारण सम्भव है कि जिन प्राणियोंका उसी प्रकारका रूप है उनका बध करनेसे मांको सन्तोष होता हो।

बाबाजी—ठीक! यह युक्ति अच्छी है। मांने महिषरूपधारी किसी असुरका विनाश किया था इसलिये महिषरूपधारी सब प्राणियोंका बध करनेसे मांको सन्तोष होगा! इससे सिद्ध होता है कि जिन-जिन शक्लोंके राक्षसोंका विनाश किया गया है उन्हीं शक्लोंके प्राणियोंका बध करनेसे मांको सुख होगा। मांने तो शुम्भ, निशुम्भ, धूम्रलोचन, रक्तबीज प्रभृति मानव देहधारी असुरोंका बध किया था; तब पशुबलि की भांति नरबलि भी होनी चाहिये और दूसरे अवतारोंमें अघ,

बक, धेनुक, वृष, वत्स, सम्वर प्रभृति असुरोंका विनाश किया। इसलिये तत्तत्‌रूपविशिष्ट प्राणियोंका भी बध होना चाहिये। परन्तु इन सबकी बलि क्यों नहीं चढ़ाई जाती ? कैसी अनोखी युक्ति है ! कोई तो पाप करे और कोई उसका फल भोग करे ! किसी युगमें कोई महिषासुर हुआ था, इसलिये उसकी जातिके सब निरपराध प्राणियोंका बध किया जाय, इस युक्तिके अनुसार राक्षसवंशध्वंसकारी रामचन्द्रके विभीषणका और हिरण्यकशिपुविनाशी नृसिंहदेवके प्रह्लादका भी बध उचित था। और एक बात पूछता हूँ। आप लोगोंको बलि शब्दका यह बध करनेका अर्थ कहांसे मिला ? अभिधान है—'बलिः पूजोपहारः स्यात !' जिस प्रकार धर्म, सूर्य्य और शिवके नामपर बैलोंको उत्सर्गकर छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार उपहाररूपसे भेड़, भैंस इत्यादिको भी मांको उत्सर्गकर छोड़देना उचित है। श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धके पंचम अध्यायमें चमसयोगेन्द्र ने कहा है—

यद् प्राण भक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्यै हेमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्म्मम् ॥

सारांश यह कि किसी भी शास्त्र-युक्तिसे हिंसाजनित अपराधोंका खंडन नहीं किया जा सकता। लोग बिना विचारे ही हिंसादि घृणित कार्य करते हैं। पर हम जितना सोच विचार। कर विषय कार्य करते हैं उससे सौगुना विचार करनेकी आवश्यकता है उपासनादि विषयोंके सम्बन्धमें।

गिरीशबाबू और अन्यान्य सभी लोग बाबाजी महाशय की सदुपदेशपूर्ण बातें सुनकर परमानन्दित हुए। जिनके घर

बलि नहीं होती थी उन्हें अब इसका कुछ दुःख न रहा और वह समझ गये कि बलि न देना ही श्रेयस्कर है। बाबाजी महाशय अन्यान्य और कई मन्दिरोंमें मां के दर्शनकर श्रीमदनगोपालजी के मन्दिर लौट आये और महाप्रसाद पाकर उस दिन भी पूर्ववत् कीर्त्तनानन्दमें वहीं रात्रि व्यतीतकी।

कालनामें श्रीश्रीनिताइगौर दर्शन

बाबाजी महाशय दूसरे दिन प्रातःकृत्य समापनपूर्वक सातगाछियानिवासी भक्तवृन्दसे विदालेकर कालनाकी ओर चले। सातगाछिया निवासी बहुतसे लोग बहुत दूरतक संकीर्त्तनके साथ-साथ गये। किसीका मन इस आनन्दमय मधुर संगको छोड़कर घर लौटनेको नहीं चाहता था। परन्तु लौटे वगैर भी नहीं बनता था। इसलिये मनको छोड़ केवल देह लेकर घर लौटे। संकीर्त्तन ध्वनिने जैसे ही कालना ग्रामको स्पर्श किया कालनाग्राम निवासी सब भाग आये और कीर्त्तनमें योग-दान करने लगे। आनन्दकी सीमा न रही। यह लोग कहाँ जा रहे हैं, किसके घर ठहरेंगे कुछ ठीक नहीं। बाबाजी महाशय चरणपर चरण रख त्रिभंग कलेवरसे नाचते-नाचते आगे जा रहे हैं। इस प्रकारकी सुन्दर नृत्यभंगि कभी किसीने न देखी थी। बहुत ऊँचा नीचा पहाड़ी मार्ग होनेपर भी इनके चरणोंकी केवल दो तीन उगलियाँ पृत्थवीसे स्पर्श करती हैं। फिर भी नृत्यके समय आप इतने वेगसे गमन कर रहे हैं कि भक्तोंको इनका अनुसरण करना कठिन हो रहा है। इस नृत्यभंगिका

भाषामें वर्णन करना असम्भव है। जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा है वेही जानते हैं। बावाजी महाशय कभी किसी शहर व ग्राममें किसी परिचित व्यक्तिको साथ नहीं लेते थे और न किसीसे मार्ग के विषयमें पूछताछ ही करते थे। यह उनका सदाका नियम था। कीर्त्तनके साथ नाचते-नाचते अति सुपरिचित व्यक्तिकी भांति ठीक गन्तव्य स्थानपर पहुंच जाते थे। कोई पूछता 'यह स्थान क्या आपका परिचित है?' तो कहते 'मैं नहीं जानता तो क्या, निताइ चाँद तो जानते हैं। नाम और नामी अभिन्न हैं। नामरूपमें निताइ चाँद हमारे साथ चलते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्मांडमें हमारे निताइका राज्य है। निताइ चाँदका अपरिचित स्थान क्या कहीं है? ग्राम, शहर पर्वत, गुफा किसी भी स्थान में से जिसकी जहाँ भी जानेकी इच्छा हो एकमात्र नामका आश्रयलेकर जानेसे वह ठीक गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाता है। यदि नामका साहरा लेकर प्राकृत राज्यमें ही गमनागमन नहीं किया जासके तो नाम अप्राकृत, नित्य-चिन्मय धाममें पहुंचा सकेगा इस पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में तुम्हें कोई भ्रम न होना चाहिये। इस जगतमें और परजगत में ऐसा कोई कार्य नहीं जो एक मात्र नामके सहारे न हो सकता हो।' नाम करते-करते धीरे-धीरे चले जा रहे हैं। उसी समय सात आठ वर्षका एक बालक आकर हंसते-हंसते कहताहै 'आप लोग कीर्त्तन लेकर मेरे साथ आइये। मैं आपको महाप्रभुजीके मन्दिर ले चलंगा।'

अकस्मात् आये हुए इस बालककी भावभंगि देख प्राय सभी लोग कुछ विस्मित हुए। पर धूलि धूसरित अंगकी नृत्यभंगि

और उसके सुहास्यपूर्ण मुखारविन्द और टूटी-टूटी भाषाने सबको मोह लिया । महाप्रभु के मन्दिरके समीप जाकर वह बोला 'वह महाप्रभुजीका मन्दिर दीखरहा है' और कीर्त्तन करने लगा । इस समय और भी कई बालक आकर कीर्त्तमें नृत्य करने लगे । बालक-बालक सब एक साथ मिल गये । इसखेलको निताइ चाँद और ऊनके कुछ अन्तरंग भक्तोंके अतिरिक्त और कोई न समझ सका ।

महाप्रभुके मन्दिरमें पहुंचकर यह लोग प्राय दो घंटे तक कीर्त्तन और उद्दंड नृत्य करते रहे । धीरे-धीरे ग्यारह बज गये। एक गोस्वामीप्रभु आकर बोले 'आपलोग स्नान ध्यानकर यहीं महाप्रसाद सेवन करें। यह सुनकर बाबाजी माहाशयने महाप्रभुकी दयाका अनुभव किया और उनका आनन्द और भी बढ़गया। सबने गंगास्नानादिके पश्चात् परमानन्दसे महाप्रसाद ग्रहणकर वहाँ विश्राम किया ।

नाम-ब्रह्माके मन्दिरमें नियमसेवा

तीसरे पहर चार साढ़ेचार बजे बाबाजी महाशय भक्तों सहित दर्शन करने निकले । बहुतसे स्थानोंके दर्शनकर जैसे ही नाम-ब्रह्म † दर्शन करने पहुंचे भगवानदास, बाबाजी महाशयके प्रधान शिष्य विष्णुदास बाबाजीने आकर इन्हें 'भ्रातुष्पुत्र' कह

†यहाँ सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशयकी स्थापित सेवा थी ।

कर आलिंगन किया। बाबाजी महाशयने सगण उन्हें दंडवत प्रणामकर नाम-ब्रह्मके दर्शन किये और फिर सिद्ध भगवानदास बाबाजी माहाशयकी समाधिके दर्शनकेलिये व्याकुल हो रोदन करने लगे। उनकी आर्ति, स्नेहमयी याचना, और पाँच वर्षके बालककी भांति रोना देख आगन्तुक दर्शकगण अवाक् रह गये। उस समयकी उनकी अवस्था देखकर कौन नहीं समझता था कि सिद्ध भगवानदास बाबाजीसे उनका साक्षात् कथोपकथन हो रहा है। कुछ देर बाद विष्णुदास बाबाजी महाशयने अपने सुमधुर सान्त्वना वाक्यों द्वारा समझा-बुझाकर उन्हें आलिगन-पूर्वक अपने पास बैठाया और नानाविध इष्टालाप करने लगे।

किस प्रकार बाबाजी महाशय विष्णुदासबाबाजी महाशयके भ्रातुष्पुत्र हुए यह जाननेके लिये पाठकगण स्वाभाविक रूपसे उत्कंठित होंगे। श्रीभगवानदास बाबाजी महाशय, श्रीचैतन्यदास बाबाजी महाशय और श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाशय, यह तीन महापुरुष एक ही समय तीन भिन्न-भिन्न भावोंसे साधना करते-करते भाव सिद्ध हुए थे। श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाशय बड़े विधि निष्ट थे। देहान्तकाल पर्यन्त आपके साधनमें किसी दिन आन्हिक, पूजा, व्रत और नियमनिष्ठाका किसी प्रकार व्यतिक्रम नहीं हुआ। श्रीचैतन्यदास बाबाजी महाशयका भाव ठीक इसके विपरीत था। वे सदा भावमें विभोर रहा करते थे। विधि की गन्ध भी उन्हें स्पर्श नहीं करती थी। श्रीगौरांगदेव उनके पति और वे उनकी पत्नि यह भाव अनुक्षण उनके हृदयमें रहता था। वे सर्वदा कहा करते 'भजन हल सारा, आमार साधन हल सारा। नदेर चांदेर कान्ता आमिकान्त आमार गोरा कभी-कभी भावावेशमें श्रीगौरांगदेवकी श्रीमूर्ति

के बांई ओर जाकर खड़े हो जाते। कोई यदि अपनेको गौरदासी व गौरांगदेवको प्राणवल्लभ कहता तो प्रणय रोषमें भर गौरांगदेव और गौरदासीको बहुत कुछ बुरा भला कहते। श्रीभगवानदास बाबाजी महाशय एकमात्र नामनिष्ठ थे। वे सर्वदा नाम जप किया करते थे। नाम करते-करते उनकी अनामिका उंगली मालासे घिसकर पतली हो गई थी। वे परम वैष्णवसेवी और वैष्णवाधरामृतनिष्ट थे। उनकी कुटीके द्वारपर एक चौभच्चा था जिसमें वैष्णवोच्छिष्ट,पत्तलादि फेंके जाते थे। श्रगाल और कुत्तेभी उसमेंसे प्रसादादि खाते थे। वे प्रातःकाल उठकर अलक्षितभाव से जबतक इस चौभच्चेसे कुछ अधरामृत ग्रहण न कर लेते तब तक और कोई भी कार्य्य न करते।

ये तीन महापुरुष भिन्न-भिन्न भावसे भजन करते हुए भी परस्पर एक-आत्म भाव रखते थे। एक दूसरेके मानोभावको जानकर परमआनन्दित होते थे। उनमें परस्पर इतनी प्रीति थी कि एक दूसरेके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहते थे। कभी एक दूसरेके भाव और भजन को लेकर टीका टिप्पणी नहीं करते थे। इसीको कहते हैं अप्राकृत भाव। परस्पर भ्रातृभाव होनेके कारण वे एक दूसरेको 'दादा' कहा करते थे। इसी सम्बन्धसे विष्णुदास बाबाजी महाशय बाबाजी महाशयको भ्रातुष्पुत्र कहा करते थे। कैसा मधुर सम्बन्ध था! हम यदि इनके स्थान पर होते तो एक दूसरेको परास्त कर अपने भजनपथ पर लानेके लिये कितनी समालोचना और कितना कुतर्क करते और शास्त्रप्रमाण दिखाकर अपने-अपने मार्गको सर्वश्रेष्ठ, महाप्रभु अनुमोदित और गोस्वामीगण-सम्मत सिद्ध करने की चेष्टा करते। हम जन-साधारणके निकट अपना पांडित्य स्थापित

करनेके लिये कितनी परचर्चा और परनिन्दा करते हैं। परन्तु इस बातका विचार नहीं करते कि परचर्चा, परनिन्दा, लब्धपद प्रतिष्ठारूप चंडालिनी जिस हृदयको स्पर्श कर लेती है उस हृदय में फिर भक्तिदेवीके लिये स्थान नहीं रहता। न हम यही समझते हैं कि किसीकी साधन प्रणाली लेकर वाद-विवाद करना मूर्खता है और गोस्वामियोंके मतके विरुद्ध है। अब इस समालोचना पर अधिक समय नष्ट कर केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि हमारा सबका यह याद रखनेका कर्त्तव्य है कि:—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचिनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नानापथजुषां,
नृणमेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

धीरे-धीरे संध्या हो आई। विष्णुदास बाबाजी महाशय बाबाजी महाशयसे बोले, 'देख! कल दशमी है। परसोंसे नियमसेवा आरम्भ होगी। एक मास तक यहांसे कहीं जाना नही। बाबाजी महाशयने कहा 'आप लोगों की कृपा और निताइ चांदकी इच्छा जैसी होगी वैसा ही करना होगा। मेरी तो पूरी इच्छा यही है कि आप लोगोंके चरणोंमें पड़ा रहूँ।'

दूसरे दिन प्रभातमें बाबाजी महाशयने बहुत देर तक प्रभाती सुरमें 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' का कीर्त्तन किया और सिद्ध बाबाजी महाशयकी समाधिके सामने जाकर बैठ गये। त्रिसंध्या कीर्त्तन करना उनका स्वाभाविक नियम था। अपनी भक्तमंडलीको उनका आदेश था कि लीला कीर्त्तन चाहे न हो त्रिसंध्या कीर्त्तन अवश्य होना चाहिये।

वैष्णवदास बाबाजी किसी वैष्णवको देख उससे उपासना प्रणाली सम्बन्धी प्रश्न अवश्य करते थे, किन्तु वह प्रकृत तत्वजिज्ञासु थे। जब कोई उन्हें यथार्थ तत्व समझा देता तो बहुत सन्तुष्ट होते। उन्होंने बाबाजी महाशयसे पूछा 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' यह नाम तुझे कहाँसे मिला। नामतो बड़ा सुन्दर है पर आधुनिक है। पूर्व-पूर्व महाजनोंकी कृपासे हमें किसी प्रकारका अभाव तो है नहीं, फिर इस नये नामको चलानेकी क्या आवश्यकता ?'

बाबाजी—बाबा, आपतो मेरे गुरुजनोंमें से हैं। यदि अपराध ग्रहण न करें तो मैं हृदय खोल कर कहूँ।

विष्णुदास—भाई मेरा स्वभाव उस तरहका नहीं है। मेरे साथ कोई कितना ही वादानुवाद करे परन्तु शास्त्र युक्तिसे यथार्थ तत्व समझादे तो मुझे किसी प्रकारका असन्तोष नहीं होता। फिर तुम्हारे मेरे बीचतो पिता-पुत्रका सम्बन्ध है। इसलिये अपराधकी कोई संभावना नहीं।

बाबाजी—आपने कहा 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे राम' आधुनिक है। निताइ, गौर, राधे, श्याम, हरे कृष्ण, हरे, राम—इन आठ नामोंमें कौनसा नया है मुझे समझानेकी कृपा करें तो उसी नामको निकाल दूँ।

विष्णुदास—(कुछ विचार कर) नाम तो कोई नया नहीं पर नामका क्रम नया है।

बाबाजी—क्रम नया है यह में ठीकसे नहीं समझ सका।

विश्णुदास—नये क्रमके माने यह कि श्रीगौरांगदेव पूर्ण-

पूर्णतम हैं, निताइ उनके स्वरूप प्रकाश और अद्वैताचार्य उनके अंशावतार हैं। श्रीगौरांगदेव महाप्रभु और निताइ अद्वैत प्रभु हैं। सुतरां आगे महाप्रभुका नाम न लेकर प्रभुका नामलेना ठीक नहीं लगता। 'गौर निताइ,राधे श्याम' कहना उचित होता।

बाबाजी—यदि अंशाशीभावसे परिवर्तन करना है तो कृष्ण भी तो पूर्णपूर्णतम हैं और महाभाव स्वरूपणी राधारानी उनकी शक्ति हैं। इसलिये 'गौर निताइ श्याम राधे, कृष्ण, हरे, राम हरे' इस प्रकार रखना ठीक होगा।

विष्णुदास—भाइ! विषय-आश्रय तत्वके अनुसार श्रीमती राधारानी आश्रय और श्रीकृष्ण विषय हैं। आश्रयके आनुगत्यके बिना विषयकी प्राप्ति नहीं होती।

बाबजी—ठीक। वृजमें वृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र एक मात्र विषय, अर्थात् प्राप्य वस्तु हैं। रक्तक पत्रक दास्य भावसे, और, सुबल मधुमंगल सख्यभावसे, नन्द-यशोदा वात्सल्य भावसे और गोपीगण मधुरभावसे उनकी आश्रय हैं। जो जिस रसके उपासक हैं, वह उसी रसके आश्रयके आनुत्गयमें उपासनाकर उसी भावयुक्त विषयको अनायास प्राप्त करते हैं। इसीलिये आगे राधानाम न लेकर कृष्णनाम लेना भूल है। अब बताइये शचीनन्दन गौरचन्द्रका किस प्रणालीसे भजन करना चाहिये ? किसके आनुगत्यमें भजन करनेसे गौरांग प्राप्ति हो सकती है ?

विष्णुदास—राधाशक्ति गदाधर पंडित गोस्वामी आश्रय और गौरांगदेव विषय हैं। अतएव गदाधर पंडितके आश्रयमें भजन करनेसे सहजमें गौरांगदेवकी प्राप्ति हो सकती है।

बाबाजी—अच्छा गुरुप्रणालीका क्या तत्पर्य्य है और उपासना मार्गमें इसकी आवश्यकता क्यों है।

बिष्णुदास—महाप्रभुकी अनेक शाखाएं हैं। जो व्यक्ति जिस शाखाका अनुगत है उस शाखाकी परम्पराश्रेणीका नाम ही उसकी गुरुप्रणाली है। जिस प्रकार किसी ऊँचे स्थानपर जानेके लिये सीढ़ीकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अखिलरसामृतमूर्ति श्रीगौरांगचन्द्रके निकट जानेके लिये गुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु प्रभृतिका आश्रयलेनेकी आवश्यकता होती है। इनको भी आश्रय कहा जा सकता है।

बाबाजी—कहा जा सकता है नहीं, कहना ही होगा। श्रीगौरांगदेवको प्राप्त करनेके लिये किसीएक प्रणाली अर्थात् किसी उनके अन्तरंगजनोंका आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है। इसलिये निताइ, गदाधर व अद्वैताचार्य्य इत्यादिका आश्रय न लेकर किसी भी प्रकारसे गौरांगलाभ करना संभव नहीं है। इसीसे निताइ नाम आगे रखनेका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। श्रीगौरांगदेव भावनिधि और सभी प्रकारके रसोंके आकर स्वरूप हैं और उनके गणोंमें सब प्रकारके रसोंके पात्र वर्त्तमान हैं। जो व्यक्ति जिस रससे उनको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, उनमें तदनुकूल भावसे उसी रसके पात्रका आश्रय लेना चाहिये। सबको केवल निताइ, गदाधर व अद्वैतका भाव तो रुचिकर होगा नहीं। 'जार जेइ भाव सेई सर्वोत्तम।' इसीको कहते हैं प्रणाली, सीढ़ी व आश्रय। ब्रज और नवद्वीप दोनों क्षेत्रोंमें एक ही बात है। ब्रजमें जिस प्रकार 'ब्रजबासी कोनओ एक भाव लइया भजे। भाव योग्य देह पाइया कृष्ण पाय ब्रजे' नवद्वीपमें भी उसी प्रकार 'गौरगणेर आनुगत्ये भजे जेइ जन। अनायासे पाय सेइ गौरांगचरण ॥'

विष्णुदास—इससे यह सिद्ध हुआ कि यह नाम सार्वजनीन नहीं है। एकमात्र नित्यानन्द परिवारके लिये ही इसका

विधान किया गया है ।

बाबाजी—जिस प्रकार गौरांगदेव भाव-निधि हैं उसी प्रकार निताइ चांद सब भावोंके आश्रय स्वरूप हैं। श्रीगौरांग जिस प्रकार सभी रसोंके आकर हैं, निताइ चांद उसीप्रकार सभी रसोंके गुरु हैं। इसलिये कोई किसी भाव या रसका उपासक क्यों न हो एकमात्र निताइका आश्रय लेनेसे उस भावसे गौरांग-देवको प्राप्त करेगा।

निताइ नागर, रसेर सागर, सकल रसेर गुरु।
जे जाहा चाय, से ताहा पाय, वाञ्छाकल्पतरु ॥

अन्यत्र:—

अन्तरे निताइ, बाहिरे निताइ, निताइ जगतमय।
नागर निताइ, नागरी निताइ, निताइ कथा से कय ॥
साधन निताइ, भजन निताइ, निताइ नयन-तारा।
दश दिकमय, निताइ सुन्दर, निताइ भुवनभरा ॥
राधार माधुरी, अनंगमंजरी, निताइ नितु[1] से सेवे।
कोटि शशधर, बदन सुन्दर, सखा सखी बलदेवे ॥
राधार भगिनी, श्याम सोहागिनी, सब सखीगण प्राण।
जाहार लावनी, मंडप साजनी, श्रीमणिमन्दिर नाम ॥
निताइ सुन्दरे, योगपीठे धरे रत्न सिंहासन सेजे।
बसन निताइ, भूषन निताइ, बिलसे सखिर माझे ॥
कि कहिब आर, निताइ रुबार आंखि मुख सर्वअंग।
निताइ, निताइ, निताइ, निताइ, निताइ नूतन रंग ॥
निताइ बलिया दुबाहु तुलिया चलिब बरजपुरे।
दास वृन्दाबन, करे निबेदन, निताइ न छेड़े[2] मोरे ॥

---

[1] नित्य, [2] छोड़े।

अब पर्य्यायक्रमसे इस नामका अर्थ सुनिये—'भज निताइ गौर' अर्थात् यदि तुम मनुष्य जीवन सफल करना चाहते हो तब निताइका आश्रय लेकर गौरको भजो, अर्थात् सेबा करो। निताइ हैं प्रेमदाता, यदि प्रेमधन ही न होगा तो गौरांगकी सेवा काहेसे होगी। गौरांग तो प्रेमके भूखे हैं। वे धन, मान, कुल और मर्यादाके भूखे नहीं हैं। वरं, धन, मान, कुलाभिमानीके लिये वे सुदुर्लभ ही हैं। इसीलिये महाजनों ने कहा है:—

गौरांग पाइते जदि थाके अभिलाष।
एकान्त भावे ते हओ नित्यानन्ददास॥
मुखेओजे जन बले मुजि नित्यानन्ददास।
निश्चय देखिबे गोरार स्वरूप प्रकाश॥

महाप्रभुने निजमुखसे भी कहा है—

जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लय निताइएर नाम।
आमि बिकाइ, तारे देखाइ जुगल राधाश्याम॥

इसलिये सोते समय या उठते समय जो एक बार निताइ कहकर पुकारेगा उसे ही गौरांगदेवकी प्राप्ति होगी। गौरको पाकर फिर राधागोविन्दकी प्राप्तिकेलिये कोई और भजन साधन न करनेसे भी निज-निज हृदयके भावके अनुसार गौर ही राधाश्यामसे मिला देंगे।

विष्णुदास—महाप्रभुने 'हरेकृष्ण हरेकृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥' इस महामन्त्र का जप करनेके लिये कलिके जीवोंको आदेश किया था क्या तुम कहना चाहते हो कि उस हरेकृष्ण नामको परित्याग कर 'निताइ गौर राधेश्याम' नामका ही जप करना चाहिये?

बाबाजी—'निताइ गौर राधेश्याम, हरेकृष्ण हरे राम।' नाममें हरेकृष्ण नाम परित्याग करनेकी कोई बात है ही नहीं। वरं जपनेकी व्यवस्था दी हुई है जिसमें गुरुदेव कहते हैं 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरेकृष्ण हरेराम॥' अर्थात् निताइ गौरका भजन करना है तो हरेकृष्ण महामन्त्रका जप करो। इससे निताइ गौरकी प्राप्ति होगी, और निताइ गौरकी कृपासे अनायास राधागोविन्दकी प्राप्ति होगी। गुरुदेवने इस भजन प्रणालीके अनुसार ही इस नामकी रचनाकी है।

नित्यानन्द प्रेमदाता गौराङ्ग परमधन।
रासबिलासे पाबे श्रीराधारमण॥
हरे कृष्ण हरे राम नाम तरी आरोहणे।
संसार सागर पार चल वृन्दाबने॥

यह देखकर कि हमारी किसी प्रकारका भजन-साधन करने व विधि-नियम पालन करनेकी सामर्थ्य नहीं है गुरुदेवने आदेश किया है 'तुझे और कुछ भी करना न होगा। इस नाम का कीर्त्तन करते हुए देश विदेश भ्रमण कर। नामके निकट देश, काल, पात्र, शुचि अशुचिका विचार नहीं है। श्रद्धासे व अश्रद्धासे एक बार भी उच्चारण करनेसे सर्वसिद्धि होगी, किन्तु नामसे कुछ मांगनेकी आवश्यकता नहीं। नाम जैसे प्रयोजनका बोध करेंगे वैसी ही व्यवस्था करेंगे।' और भी कहा है 'तुम बहुत जन्मोंसे संसारी लोगोंके निकट अनेक प्रकारसे ऋणी हो। तुम्हारे पास ऐसा कोई परमार्थधन तो संचित है नहीं जिसके द्वारा अपने ऋणका परिशोध कर सको। अतएव कोई ग्रहण करे या न करे अयाचित भावसे इस अमूल्य धनको

सर्व साधारणमें निष्काम भावसे बिना विचारे वितरण करते चलो। तुम सारे ऋणोंसे मुक्त हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिये गुरुदेवकी आज्ञा शिरोधार्य कर इस नामके अवलंबन से देश-देशमें भ्रमण करता फिरता हूँ। मैं किसीका उपदेष्टा व शिक्षाक नहीं हूं।

विष्णुदास बाबाजी महाशय अबतक नीरव होकर इनकी गुरुनिष्ठा एवं गुरु चरणोंमें आत्मनिर्भरताकी बात सुनकर नेत्रों से आंसुओंकी नदी बहा रहे थे। अब उनसे न रहा गया और एकाएक उच्च स्वरसे रोते-रोते बाबाजी महाशयको आलिंगन कर कहने लगे 'बाबा ! मैंने अज्ञानसे तुम्हारे और नामके ऊपर कटाक्ष किया है। में घोर अपराधी हूँ। मेरी क्या गति होगी?' बाबाजी महाशयने कहा 'बाबा ! मैं आपकी सन्तान हूँ। यह तो मेरी शिक्षा है। आप इस सम्बन्धमें कुछ चिंता न करें।' यह कह कर आनन्दसे 'भज निताइ गौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कीर्त्तन करते-करते नृत्य करने लगे। कुछ समय कीर्त्तनकर सब नाम करते-करते गंगा स्नानके लिये गये। स्नानादि शेषकर और महाप्रसाद ग्रहणकर सबने विश्राम किया।

तीसरे पहर कोई साढ़े चार बजे सब मिलकर कीर्त्तन करते-करते महामायाके विजयादर्शन करने गये। आज गंगातट पर कैसा कोलाहल है ! मां आनन्दमयी चिरदिन जगवासी जन साधारणको आनन्द सागरमें निगग्नकर मानों स्वयं परमानन्दित हो शंकरजटा निवासिनी द्रवमयी जान्हवीदेवीको आलिंगनकर रही हैं। हरिध्वनि, उलुध्वनि, शंख, घन्टा, ढोल, और सहनाई

की ध्वनिसे दसों दिशायें गूँज उठी हैं। आज मांको आनन्दित देख सन्तानके और सन्तानको आनन्दित देख मांके आनन्दकी सीमा नहीं है। मांने जैसे ही भागीरथीको प्रेमालिंगन किया वैसे ही उनकी सन्तान आबाल-बुद्ध-बनिताने द्वेषभाव रहित हो प्रेमानन्दोतफुल्लित चित्तसे एक दूसरेको आलिंगन किया। बाबाजी महाशय रातको प्राय दस बजे तक गंगातटपर कीर्त्तनकर नामानन्दमें मग्न हो कीर्त्तन करते-करते नाम-ब्रह्मके मन्दिर लौटे और महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया।

प्रभात होते-होते सब गंगा स्नानकर लौटे। आज एकादशी है। अष्टप्रहर नामकीर्त्तन होगा! प्रभातीसुरमें 'निताइ गौर राधेश्याम' नामकीर्त्तन आरम्भ हुआ। निताइ गौर राधे-श्याम नाम मानो कल्पतरु है। जिस समय जिस सुर और रागनीमें गाया जाय उसीमें परमानन्दकी प्राप्ति होती है और पद-पदावली भी नामके साथ सहजमें जोड़ कर उसे और भी सुमधुर बनादेती है। दिन जैसे-जैसे चढ़ता गया कीर्त्तनानन्दकी भी वृद्धि होती गई। चारों ओर खबर फैल गयी—'नवद्वीप से एक साधु आये हैं। उनका अपूर्व प्रेम है, अपूर्व कीर्त्तन है और अपूर्व शक्ति है। वे नामसे पेड़ नचा देते हैं और पत्थर गला देते हैं।' इत्यादि

धीरे-धीरे बहुतसे लोग एकत्र हो गये हैं। 'निताई गौर राधेश्याम' सरल नाम बालकबृद्ध सभी उच्चारण कर समान रूपसे आनन्द उपभोग कर रहे हैं। किसी-किसी समय वोध होता है कि सिद्ध बाबाजी महाशय प्रकट होकर नाममें योग दे रहे हैं। सब अक्लान्तभावसे प्रेमानन्दमें मतवाले होकर क्षुधा तृष्णा विस्मरणपूर्वक नामानन्दमें नृत्य कर रहे हैं। बालकगण

कीर्त्तनमें इतने लवलीन हैं कि उनके माता-पिता बहुत प्रयत्न करके भी उन्हें घर नहीं लेजा सक रहे हैं। धीरे-धीरे नाम इतना मधुर लगने लगा कि रात दिनमें परिणत हो गई, फिर भी किसीको नाम छोड़नेकी इच्छा न हुई।

इसी प्रकार रात-दिन कथा-कीर्त्तन और तत्वालोचनामें बाबाजी महाशय और उनके साथियोंको एक महीने पांच दिन नाम ब्रह्मके मन्दिरमें कैसे बीत गये किसीको पता न चला।

गुरप यात्रा

एक दिन प्रातःकाल स्नानान्हिकादि समापनपूर्वक बाबाजी महाशयने विष्णुदास बाबाजी महाशयसे स्थानान्तर जानेके लिये बिदाकी प्रार्थनाकी। विष्णुदास बावाजी उन्हें आलिगनकर अश्रुभरे नेत्रोंसे कहने लगे 'बाबा! मैंने इतने दिन तुम्हारे साथ जिस सुखका अनुभव किया है उसे व्यक्त करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं। मेरी बड़ी इच्छा है कि और भी कुछ दिन तुम्हारे साथ इस आनन्दका उपभोग करूं। इच्छामयकी क्या इच्छा वही जाने।'

बाबाजी—बाबा! मेरी भी यही वासना है। पर न जाने किस उद्देश्यसे निताइ चांदने मानसिक वृत्ति कुछ चंचल कर रखी है। इसलिये कुछ दिन घूम फिरकर यदि प्रभुने चाहा तो फिर यहाँ आकर एक साथ आनन्द करेंगे।

यह कहकर विष्णुदास बाबाजी महाशयको दण्डवत् प्रणामकर सिद्ध बाबाजी महाशयकी समाधिके निकट

गये और उन्हें साष्टांग दंडवत्‌कर कीर्त्तन करते-करते समाधि स्थलसे बाहर निकल लिये।

कहाँ, किस ओर जारहे हैं कुछ ठीक नहीं। स्वच्छंद गतिसे नाचते-नाचते, कीर्त्तन करते बढ़ते चले जा रहे हैं। जिस ग्राममें जिस दिन विशेष आग्रहके साथ रहनेको कहा जाता है उस दिन उसी ग्राममें रहकर कीर्त्तनानन्दमें समय व्यतीत करते हैं। इस प्रकार बहुतसे स्थानोंमें भ्रमणकर एक दिन दस बजेके निकट गुरप नामक एक ग्राममें पहुंचे। किसीसे भी कुछ परिचय न था तथापि आपके व्यवहारसे जान पड़ता था कि न जाने कबका परिचित स्थान है। कीर्त्तन करते-करते किसी ठाकुर मन्दिरके निकट होकर जारहे थे। उसी समय एक गोस्वामी सन्तान मंदिरसे निकले और संकीर्त्तनको दंडवत्-प्रणामकर इन लोगोंको भीतर ले गये।

मन्दिर में श्रीराधागोविन्दकी जुगल मूर्ति विराजमान है। विग्रहका नाम है श्रीराधावल्लभजी। सब लोग दर्शन कर दुगने उत्साहसे कीर्त्तन करने लगे। राधावल्लभजीके मंदिरमें अकस्मात् खोल करतालके साथ कीर्त्तन ध्वनि सुन ग्रामवासी स्त्री-पुरुष बहुतसे लोग आ गये। नूतन नृत्य और कीर्त्तन देख सब अवाक् रह गये। बाबाजी महाशय श्रीराधा गोविन्दको लक्ष्यकर नाना रूप पदावली कीर्त्तन कर रहे थे और नृत्य कर रहे थे। धीरे धीरे समय अधिक हुआ देख कीर्त्तन समाप्त किया। पूर्वोक्त गोस्वामी प्रभुके आग्रहसे स्नानादिकर सबने श्रीश्रीराधावल्लभजी का प्रसाद ग्रहणकर कुछ विश्राम किया।

अपराह्नमें फिर बहुतसे लोग एकत्र होने लगे। गोस्वामीप्रभु और अन्यान्य सभी लोगोंकी इच्छा थी कि यह लोग श्रीश्रीराधावल्लभजीके मंदिरमें अवस्थान करें। एक व्यक्ति ने जब बाबाजी महाशयके निकट ये अभिप्राय प्रकाश किया तो वे बोले, 'बाबा ! जाने निताइ चाँद किस लीलाके उद्देश्यसे यहां लाये हैं। आप लोग निताइ चाँदसे प्रार्थना करें। यदि उनकी इच्छा हो तो दासको क्या आपत्ति हो सकती है।

इस प्रकार नानाविधि कथोपकथन करते-करते सन्ध्या हो आई। श्री श्रीराधागोविन्दजीकी आरतीका समय हुआ। और इन्होंने आरती-कीर्त्तन आरम्भ किया। क्रमसे रूप अभिसार और मिलन कीर्त्तनकर कीर्त्तन समाप्त किया। उस रात्रि किसीने प्रसाद न पाया और मन्दिरमें शयन किया। दूसरे दिन प्रभातमें प्रभाती कीर्त्तन समाप्तकर जब उस स्थानसे चलनेको हो रहे थे उसी समय नवद्वीपदासने कहा, 'दादा ! चैतन्यको भयानक ज्वर हुआ है। बाबाजी महाशय मृदु हंसीके साथ बोले "बलिहारी लीलामय निताइचांदका खेल।' पूर्वोक्त गोस्वामीप्रभु आकर बोले 'देखिये। ऐसे पीड़ित व्यक्तिको साथ ले दूसरी जगह जाना असम्भव है। निश्चय ही श्रीश्रीराधावल्लभजीकी इच्छा है कि आप कुछ दिन यहाँ रहें।'

'अच्छा, इच्छामयकी इच्छा ही पूर्ण हो' कहकर बाबाजी महाशय श्रीश्रीराधावल्लभजीके सम्मुख बैठ गये। यथासमय स्नानादिकर मध्यान्ह कीर्त्तन समापनपूर्वक सबने श्रीश्रीराधा-वल्लभजीका प्रसाद पाया और थोड़ी देर विश्राम करनेके लिये लेट गये। प्रभुकी इच्छा वही जाने। एक-एककर प्राय सभी

साथी ज्वराक्रान्त हो पड़े। अब शीघ्र स्थाननान्तर जानेकी कोई संभावना न रही।

नवद्वीपदासका पुनर्जीवन—

एक दिन अपराह्नमें ज्योतिःशास्त्रमें विशेष पारदर्शी एक पंडित आकर विशेष आग्रहके साथ सबका हाथ देखने लगे, कई लोगोंका हाथ देखनेके बाद नवद्वीप दादाका हाथ देखते ही चमककर उनके मुखकी ओर एकटक देखने लगे। थोड़ी देर बाद भूमिपर अंक लिख-लिखकर हाथकी रेखाओंके साथ मिलाकर गणना करने लगे। पंडित महाशयकी भावगति देख सब विस्मित हो गये और यह समझकर कि नवद्वीपके हाथमें कोई शुभ या अशुभ विशेष बात अवश्य है उसे जाननेके लिये उत्कंठित हो गये। बाबाजी महाशयने पूछा'क्या बात है पंडितजी क्या देखा उसके हाथमें ?'

पंडित—आपसे एकान्तमें कहूँगा।

बाबाजी—क्यों एकान्तका क्या प्रयोजन है। जगतमें शुभ अशुभ दोनों एक साथ मिले हुए हैं। यह एक स्वाभाविक नियम है। मेरी समझमें तो जिसकी बात हो उसके सामने ही कहना उचित है। संकोच करनेका कोई कारण नहीं। आप स्पष्ट रूप से कहिये।

पंडित—क्या कहूं ? अपनी विद्या बुद्धि और धारणासे मैं जहाँतक समझ सका हूं उसके हिसाबसे बालककी आयु करीब करीब समाप्त हो रही है। यदि किसी प्रकार इसका प्रतिकार

हो सकता तो मैं कहता। किन्तु इसका भोगकाल बिलकुल समाप्त है। इसीलिये मैं कहने में संकोच कर रहा था।

नवद्वीप कुछ हँसते-हँसते बोले 'अच्छा यह तो मैं पहले से ही जानता हूं। जिन पंडितजीने मेरी जन्म कुण्डली बनाई थी वे एक बहुदर्शी ज्योतिर्वित् पंडित थे। उन्होंने १३०३ सालके पौष मासके प्रथमांशमें मेरी मृत्यु निर्धारितकी थी। इतना ही नहीं, कौनसी व्याधिसे मृत्यु होगी यह भी बतला दिया था।

पंडित—मैं जहाँ तक समझता हूँ ज्वर और खांसीसे आपकी मृत्यु होनी चाहिये।

नवद्वीप—ठीक। उन्होंने भी यही कहा था। इसमें दुःखकी क्या बात है। मेरे लिये तो आज परमानन्दका दिवस है। यदि ऐसे सत्संगमें रहकर देह त्याग हो तो इससे अधिक सौभाग्यकी बात और क्या हो सकती है?

पर साथियोंके तो नवद्वीप प्राण थे। इसलिये सब बहुत चिन्तित हो पड़े। विभिन्न देशीय दो पंडितोंकी बात परस्पर मिल जानेसे अविश्वासकी भी कोई बात न रही। बाबाजी महाशय बिलकुल उदासीन थे। कोई यदि नवद्वीपके विषयमें उनसे पूछता तो कहते 'मैं क्या जानूं? निताइ चांदकी इच्छा होगी वही होगा। वृथा आन्दोलन करनेकी आवश्यकता नहीं। नाम करो, मंगलमय जिस समय जो करते हैं सभी मंगलमय होता है।' देखते-देखते नवद्वीप अति कातर हो पड़े। ज्वर और खांसी क्रमशः बढ़ने लगे। सभीकी धारणा दृढ़ हो गई कि वे अब नहीं बचेंगे। एक दिन अवस्था बहुत शोचनीय हो गई। बोलने की भी शक्ति न रही। बाबाजी महाशयके आदेशानुसार सब

उन्हें घेरकर नाम कीर्त्तन करने लगे। नद्वीवपने बाबाजी महाशयसे कर जोड़कर विदा मांगी। बाबाजी महाशयके आरक्त नयन छल-छल कर रहे थे और वे बार-बार 'जय निताइ, जय निताइ' कह कर हुंकार कर रहे थे। कोई दस बजे नवद्वीपकी नाड़ी छूट गई। चक्षु श्वेतवर्ण और स्पन्दन हीन हो गये। संगीगण रोते-रोते गदगद कंठसे कीर्त्तन कर रहे थे। यकायक बाबाजीमहाशय गोकुल और विधुसे बोले 'उसे लेकर बाहर आओ।' सबने हताष होकर उन्हें बाहर लाकर बिठा दिया। उनकी आंखें ऊपर चढ़ रही थीं, सिर लटका पड़ रहा था। बाबाजी महाशयने नवद्वीपको छातीसे लगाकर खड़ा किया। उनका शरीर कांप रहा था। कहीं गिर न पड़ें इस भय से गोकुल उनके पीछे खड़े थे। नवद्वीपका सिर इनके बाये कंधे पर था। संगीगण आत्महारा भावसे नाम कीर्त्तन कर रहे थे। कीर्त्तनकी ध्वनि जिसके भी कानमें पड़ी वही व्याकुल भावसे आकर कीर्त्तनमें सहयोग देने लगा। देखते-देखते नवद्वीपके मुद्रित नेत्र उन्मिलित हो गये। धीरे-धीरे बाबाजी महाशयके कंधेसे सिर उठाकर चारों ओर देखने लगे। तब बाबाजी महाशय उन्हें छातीसे अलगकर भावमें झूमते-झूमते 'बोल श्रीनित्यानन्द, बोल श्रीनित्यानन्द' कहकर नृत्य करने लगे।

आगन्तुक दर्शकवृन्द इस अलौकिक व्यापारको देख विस्मय सागरमें निमग्न हैं। संगीगण भावोन्मत्त हैं। सभीके मुखसे 'बोल श्रीनित्यानन्द' की धुन निकल रही है। इसी समय बाबाजी महाशयने और एकबार नवद्वीपको आलिंगन कर छोड़ दिया। छोड़ते ही नवद्वीप आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे। अब सबके आनन्दकी सीमा न रही। इस प्रकार कुछ देर कीर्त्तन करनेके पश्चात बाबाजी महाशय नवद्वीपसे बोले, 'जाओ रजमें लोट-पोट

करो । निताइ चांदने इस यात्रामें तुम्हारी रक्षाकी है ।' नवद्वी
हँसकर बोले 'तुम्हारी इच्छा, तुम जिला भी सकते हो, मार भी
सकते हो ।' यह कह कर वे रजमें लोटते-लोटते बाबाजी महाशय
के चरणोंमें दडंवत प्रणामकर बैठ गये । बाबाजी महाशय और
अन्यान्य सब लोगभी दंडवत्-प्रणामकर कीर्त्तन स्थलपर बैठ गये

गोकुलने पूछा, 'प्रभु परमायु समाप्त हो जानेपर भी क्या
किसीको बचाया जा सकता है ?'

बाबाजी—घरमें जब खानेको नहीं रहता तब क्या लो
उधार लेकर काम नहीं चलाते ?

गोकुल—पैसे कौड़ीका तो उधार चलता ही है । पर क
आयु भी उधार ली जा सकती है ?

बाबाजी—निताइ चांदकी इच्छासे असम्भव भी सम्भ
हो सकता है । सामान्य परमायुकी तो बात ही क्या । काठ
पुतली भी बोल सकती है

बाबाजी महाशयका ज्वर—

इस प्रकार नाना प्रकार कथावार्ताके पश्चात् सबने स्नानादि
निवृतहो प्रसाद ग्रहणकर विश्राम किया । इसीरात बाबाजी मह
शयको अकस्मात् भयानक ज्वर हुआ । तीन दिनतक समानरू
ज्वर रहा । पर बाबाजी महाशयने न तो औषधिका सेवन कि
और न उपवासही किया । एक दिन एक कविराज जो पहलेसे
सब लोगोंकी देखभालकर रहे थे, बाबाजी महाशयसे विन
पूर्वक बोले, 'देखिये, यदि आप लंघन न करेंगे तो सहजमें ज्व
न जायेगा । यह वातश्लेष्मा ज्वर है, किसी ठंडी वस्तु
व्यवहार न कीजियेगा ।'

बाबाजी—तो क्या पथ्य करना होगा ?

कविराज—सामान्य मिश्रीके साथ थोड़ी बार्ली या अदरक के साथ कुछ खील खा लेना ठीक होगा। और दो महालक्ष्मी-विलास और एक ज्वरचिन्तामणि बटि दिये जा रहा हूँ। अभी ज्वर चिन्तामणि अदरक और आधे पानके रस और शहदके साथ लेलें, दो घन्टे बाद तुलसीके पत्ते के रस और शहदमें महालक्ष्मी विलास लें, और शामको इसी प्रकार फिर महालक्ष्मीविलास लें। यदि रात्रिमें ज्वर बढ़े तो मुझे खबर कर दें। बाबाजी महाशय ने 'जो आज्ञा' कह कर कविराज महाशयको प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रतिप्रणाम पूर्वक प्रस्थान किया। श्रीश्रीराधा-वल्लभजीके गोस्वामी सेवकगण बाबाजी महाशयके शरीरकी अवस्था देख और कविराजकी बात सुन बहुत चिन्तित हुए। कविराज महाशयके चले जाने पर गोकुलने बाबा जी महाशयसे कहा, 'औषधि तैयार करूँ ?'

बाबाजी—यह तीनों गोलियाँ एक साथ कागजमें मोड़ मेरे सिरहाने रख दो।

गोकुलने ऐसा ही किया। बाबाजी महाशयके ज्वरका संवाद पाकर उनके शिष्य कलकत्ता निवासी योगेन्द्र नाथ मिश्र महाशय नाना प्रकारके फल, आचार, मुरब्बा और पुराना घी इत्यादि लेकर उस दिन कोई बारह बजे वहाँ आकर उपस्थित हुए। एक गोस्वामीजीने बाबाजी महाशयसे कहा, 'बाबा, इन फलमूल, आचार, मुरब्बे इत्यादिका श्रीराधावल्लभका भोग अभी न लगेगा। दो चार दिन बाद जब आप कुछ ठीक हो लेगें तभी इन चीजोंका भोग लगाया जायगा।' बाबाजी महाशय ने भी

एक भले आदमीकी तरह कहा । 'ना बाबा ! इस समय क्या इन सब चीजोंका भोग दिया जा सकता है ?'

यथासमय श्रीराधावल्लभजीके भोगके पश्चात् बाबाजी महाशय गोकुलसे बोले, 'थोड़ासा महाप्रसाद ले आ ।' गोकुल ने पहले तो कुछ आपत्तिकी, किन्तु बाबाजी महाशयका विशेष आग्रह देख कुछ महाप्रसाद ले आया । बाबाजी महाशयने प्रसाद पाकर शयन किया । तीसरे पहर गोकुलको आदेश किया, जोगेश जितनी प्रकारके फल लाया है सबका थोड़ा-थोड़ा निकुंज भोग रोज रातमें लगाना ।' गोकुल बाबाजी महाशयके आदेशानुसार निकुंज भोग लगाने लगा । और बाबाजी महाशय भी नित्य रात्रिको निकुंज भोगके फल आदिका प्रसाद पाने लगे । इस प्रकार दो दिन बीते । तीसरे दिन छातीमें अत्यन्त वेदना होने लगी और ज्वर भी बहुत अधिक हो गया । यह देख सब बड़े चिन्तिति हुए । पुराना घी और आकके पत्तेका सेंक देकर फ्लैनेलकी पट्टी सीनेपर बांध दी गई । किसी अच्छे डाक्टर द्वारा चिकित्सा करनेकी व्यवस्था होने लगी । बाबाजी महाशय बोले । 'अच्छा, कल जैसा भी होगा बन्दोवस्त किया जायेगा ।' धीरे-धीरे रात हो गई । बाबाजी महाशय सथियोंसे बोले 'केवल एक आदमी मेरे पास रहो और सब लोग अलग जाकर सो जाओ ।' यह कहकर उन्होंने शयन किया । रात बारह बजे करीब बोले 'कोई है ?' उत्तरमें गोखुलने कहा 'जी, मैं हूँ'।

बाबाजी—देख गोकुल ! यह जो ऊपर अचारकी हाँडियां हैं इन्हें उतार तो ।

गोकुलने हांडियां उतारकर देखा कि एकमें आम

नीबूका अचार है, और दूसरीमें आमका मुरब्बा। गोकुलने कहा–'प्रभु अभी आपका स्वास्थ्य तो ठीक है नहीं।'

बाबाजी–मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो क्या। निताइ चाँदकी खानेकी इच्छा हुई है। तू उनका भोग लगा।

यह कहकर सीनेसे फ्लैनेलकी पट्टी खोलकर फेंक दी, और अपने हाथसे अचार निकाल एक थालीमें सजा दिया। गोकुल किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो कुछ देरतक सोचता रहा। पर उसे भोग लगाना ही पड़ा। भोगके पश्चात् वह सब अचार, सात आठ नीबू एवं अन्यान्य फलमूल प्रसाद बाबाजी महाशयने खूब प्रेमसे पाया। इसके पूर्व शायद किसीने उन्हें इतना सारा प्रसाद एक साथ पाते कभी नहीं देखा था।

दूसरे दिन सबेरे सब बहुत चिन्तित थे। सबने यही स्थिर किया कि कलकी अवस्था देखते हुए डाक्टरको बुलाना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु जब बाबाजी महाशयके पास गये तो कुछ और ही व्यापार देखा। वे बोले 'देखो आज मैं स्नान करूंगा। मेरा शरीर बहुत स्वस्थ है।' यह सुनकर सब अवाक् रह गये। कविराज महाशय आकर नाड़ी देखकर बोले 'कल नाड़ीमें बहुत कफ था।' परन्तु आज बिल्कुल विपरीत बात है। आज इतनी वायु बढ़ी हुई है कि फल मूल आदिका व्यवहार न करनेसे काम न चलेगा। आप अच्छी तरह स्नान कर सकते हैं इसमें कोई आपत्ति नहीं है। गोकुल अभीतक चुप था। परन्तु अब उससे न रहा गया। उसने कहा 'कविराज महाशय, नाड़ी को गति किस प्रकार है मैं कुछ भी नही समझ सका। जो निमोनियांका रोगी रातमें बारह बजेके बाद सात-आठ नीबू,

आधी हंड़िया आम, कागजी नीबू और बेरका अचार और आधी हंड़िया आमका मुरब्बा और अन्यान्य ठंडे फल खाये उसकी नाड़ीमें दूसरे दिन वायुकी बृद्धि।' यह सुनकर सभी बहुत विस्मयान्वित हुए। कविराज महाशय बाबाजी महाशयको दण्डवत् प्रणाम्‌कर बोले 'बाबा मेरा अपराध क्षमा कीजिये। आप जब जीवोंका भवरोग दूर कर सकते हैं, तो यह तो सामान्य देहरोग ही है। आपकी चिकित्सा कर मैंने बड़ी धृष्टताकी। मैं आपकी सन्तान हूँ, मेरे प्रति कृपा दृष्टि रखिये।' बाबाजी महाशय कविराज महाशयको गोदमें भरते हुए बोले 'भाई! निताइ चांदसे कहो। मैं तो काठकी पूतली हूँ। वे जिस समय जिस प्रकार नचानेकी इच्छा करते हैं उसी प्रकार नाचना पड़ता है।'

कविराज—बाबा! मैं तो इतना समझता नहीं। इसलिये किसी अलौकिक घटनाको देख विस्मय होता ही है।

इस प्रकार नानारूप कथोपकथनमें कुछ समय व्यतीत हुआ। बाबाजी महाशयने नियमानुसार स्नानादि कर प्रसाद ग्रहण किया और संध्या समय ग्रामवासियोंके अनुरोधसे नगर कीर्त्तन किया।

श्रीश्रीनिताइके मन्दिरमें कीर्त्तन

इस प्रकार आठ दस दिन व्यतीत हुए। एक दिन प्रभात में स्नानादि प्रातःकृत्य समापनपूर्वक बाबाजी महाशय नगर कीर्त्तनको निकले। प्राणोंको मत्त कर देने वाली गगन भेदी संकीर्त्तन ध्वनि सुनकर चारों ओरसे स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध-बनिता

भाग-भागकर आने लगे। कुछ दूर जाकर सामने एक मन्दिर दीख पड़ा। बाबाजी महाशयने उसमें प्रवेशकर देखा कि एक श्रीनिताइ का विशाल श्रीविग्रह विराजमान है। उनके गलेमें एक आपाद विलम्बित केलि-कदम्बके फूलकी माला शोभायमान है।

बाबाजी महाशय निताइचांदका अपरूप सौन्दर्य्यपूर्ण माधुर्य्यमय मुखचन्द्र दर्शनकर प्रेमानन्दमें विभोर हो कीर्त्तन करने लगे। संगीगण आत्महारा भावसे उद्दंड नृत्य करने लगे। आगन्तुक दर्शकवृन्द इस नूतन नृत्य और कीर्त्तनको देख विस्मित भावसे खड़े रह गये। बाबाजी महाशय निताइको लक्ष्य कर एकदम बोल उठे 'निताइचांद! इस माला पर मुझे बहुत लोभ हो रहा है। मेरे मनमें वासना है कि तुम्हारी प्रसादीमाला गलेमें डाल तुम्हारे सामने प्राणभर नृत्य करूं'। इतना कहते ही श्रीनिताइचांदके गलेकी माला टूटकर चरणों पर आ पड़ी। उपस्थित दर्शकोंने विशेषरूपसे लक्ष्यकर देखा कि मन्दिरके भीतर कोई नहीं है। सब अत्यन्त विस्मित भावसे हरिध्वनि करने लगे। सेवकने उत्साह सहित माला लाकर जैसेही बाबाजी महाशयके गलेमें डाली चारों ओरसे गगनभेदी 'हरिबोल' ध्वनि उठने लगी। संगीगण दूने उत्साहसे उद्दंड नृत्य करने लगे। तब बाबाजी महाशयने भावावेशमें झूमते-झूमते गाना आरम्भ किया:—

निताइ गुणमणि आमार निताइ गुणमणि।
आनिया[१] प्रेमेर बन्या[२] भासाल[३] अबनी॥

---

[१] लाकर, [२] बाढ़, [३] तराबोर कर दिया,

प्रेमबन्या लइया निताइ आइला गौड़देशे।
डुबिल भकतगण दीनहीन भासे॥
दीनहीन पतित पामर नाहि बाछे।
ब्रह्मार दुर्लभ प्रेम सबाकार जाचे॥
जे न लय तारे बले दन्ते तृन धरि।
आमारे किनिया लह भज गौर हरि[४]॥
एत बलि नित्यानन्द भूमे गड़ि जाय।
सोनार पर्वत जेन धूलाते लोटाय॥
निताइ रंगिया मोर प्रेम कल्पतरु।
कांगालेर ठाकुर निताइ जगतेर गुरु॥

गाते गाते उद्दंड नृत्य करने लगे। निताइकी दी हुई माला भी साथ-साथ नाचेने लगी। प्राय एक घंटे तक इसी प्रकार नृत्य औय कीर्त्तन होता रहा। किन्तु आश्चर्य की बात है कि इतनी बड़ी और भारी माला इतनी हिलने डुलने पर भी ठीक वैसे ही रही। उपस्थित दर्शकगण इस घटनाको देख परस्पर कहने लगे ,'यह बाबाजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं, निश्चय ही यह कोई महापुरुष हैं। देखो एक बार कहते ही निताइके गलेकी माला टूटकर गिर पड़ी। और देखो नृत्य करते समय ये हाथ, ड़ेढ़हाथ पृथ्वी से ऊपर उठ जाते हैं। माला भी इनके साथ जैसे उद्दंड नृत्य कर रही हैं। केलिकदम्बकी इतनी भारी माला यदि किसी दूसरेके गलेमें होती तो ऐसी अवस्थामें अबतक उसके आठ टुकड़े हो गये होते।

---

४ मुझे खरीद लो गौरहरि भजकर।

बहुतसी स्त्रियां एकओर खडी कीर्त्तन सुन रही थीं। उनमेंसे एक सोलह-सत्रह वर्षकी लड़की एक-टक बाबाजी महाशयकी ओर देख रही धी। दोनों नेत्रोंके जलसे उसका मुख और वक्षःस्थल तराबोर हो रहे थे। धीरे-धीरे कीर्त्तनकी ताल के साथ सिर हिलाते और हाथसे ताली बजाकर 'हा निताइ, प्राण निताइ' कहते-कहते कीर्त्तन मंडलीके बीच आकर नाचने लगी। ऐसा लगता थी कि जैसे वह इस राज्यमें नहीं है। उसकी आंखें ऊपर चढ़ रही हैं। केश बिखर रहे हैं, सिर खुला है, किन्तु उसे कुछ भी वाह्यज्ञान नहीं। उसे देख सभी स्त्रीपुरुष विस्मित और स्तम्भित हैं। विस्मयका विशेष कारण भी है, क्यों कि यह लड़की बहुत सुशीला, मृदु स्वभावा और लज्जाशीला है। इसके ससुर और देवर प्रभृति भी कभी इसकी ऊँची बोली नहीं सुन पाते और न इसका मुख स्पष्ट रूपसे देख पाते हैं। वही लड़की आज सैकड़ों परिचित अपरचित, युवा, बृद्ध, छोटे, बड़े लोगोंके बीच उच्च कंठसे 'हा निताइ प्राण निताइ !' कहकर रोते-रोते नृत्य कर रही है। लड़कीसे सम्बन्धित कुछ स्त्रियां यह देखकर क्रुद्ध हो रही हैं, और कह रही हैं 'घर जानेपर आज इसे पता लगेगा' कह रही हैं कोई-कोई 'आजकलकी लड़कियां ! बाबा ! इनके साहसकी बलाई जायें। हम तो बूढ़ी हो चलीं तब भी किसी अपरिचित पुरुषके सामने जानेका या उससे बात करनेका साहस नहीं रखतीं।' और दूसरी स्त्रियां न जाने कितनी प्रकारसे लड़कीका मजाक बनाकर ठट्ठा कर रही हैं। इस अलौकिक घटनाको देख कोई तो रंगिया निताइ चांदकी लीला का, कोई नामकी शक्तिका और कोई महापुरुषका प्रभाव समझ आश्चर्यान्वित है, और कोई विरुद्ध भावसे निन्दा और कटाक्ष

कर रहा है। एक ब्राह्मण गोदीमें चार-पांच वर्षके शिशुको लिये पहलेसे सब कुछ देख रहा है। अब उससे न रहा गया और तर्जन-गर्जन करते हुए कहने लगा 'बैरागी वैष्णवोंको कार्य-अकार्य और खाद्य-अखाद्यका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। यह लड़की यदि मेरी कोई होती तो उसके इस प्रेमके लिये उपयुक्त दंडका विधान करता।' इस प्रकारकी निन्दा-प्रशंसा व दोषगुणयुक्त समालोचना तटस्थ व्यक्तियोंके बीच ही चल रही है। बाबाजी महाशय और उनके साथियोंको तो बाह्य-ज्ञान है ही नहीं। वे भावमें विभोर और प्रेममें मतवाले होकर उद्दंड नृत्य-कीर्त्तन कर रहे हैं। इसी समय अकस्मात् पूर्वोक्त ब्राह्मणका बालक पिताकी गोदीसे उतर कीर्त्तन मंडलीके बीच जाकर नृत्य करने लगा। तब बाबाजी महाशय एक ओर खड़े होकर निताइ चाँदका खेल देखने लगे। बालक थोड़ी देरमें नाचते-नाचते मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। ब्राह्मण अभीतक किंकर्तव्यविमूढ़ भावसे पुत्रके नृत्यको देखकर विस्मय सागरमें निमग्न था। अकस्मात् उसकी अचैतन्य अवस्था देख अधीर हो उठा और अति त्रस्तभावसे उसे गोदमें लेकर रोते-रोते विनय पूर्वक बाबाजी महाशयसे कहने लगा 'बाबा मेरे बच्चेको बचा लीजिये। मैंने आपको न पहचानकर आपकी बहुत निन्दाकी। उसी अपराधके कारण मुझे यह दंड मिला। अब मैं समझ गया कि आप कोई सामान्य मनुष्य नहीं हैं। बाबाजी महाशय ब्रह्मणकी कातरोक्ति सुन नानारूप मीठे वाक्यों द्वारा उसे समझाकर कहने लगे। 'बाबा! भयकी क्या बात है। नाम करो, तुम्हारा बच्चा अभी ठीक हो जायगा। इसे कोई सामान्य बालक मत समझना। किसी महापुरुषने तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपमें जन्म लिया है नहीं तो पांच वर्षके बालकके लिये कीर्त्तनमें इस प्रकारका

भावावेष कैसे संभव हो सकता है। कोई चिन्ताकी बात नहीं। प्राणभर भगवान्को पुकारो।'

ब्राह्मण—बाबा ! कैसे भगवान्को पुकारा जाता है। मैं तो यह भी नहीं जानता। कृपाकर मुझे बता दीजिये।

बाबाजी-बाबा ! धन्य कलिकाल। एक मात्र नाम लेकर पुकारने से ही सर्वसिद्धि हो जाती है। महाप्रभुने कहा है,—'खाइते शुइते जथा यथा नाम लय। काल देश नियम नाइं सर्व-सिद्धि हय ॥'

ब्राह्मण—भगवान्के तो अनेक नाम, रूप और अवतार हैं। कौनसे नामसे पुकारनेसे इस विपत्तिसे शीघ्र परित्राण हो सकता है आप कृपाकर उपदेश कीजिये।

बाबाजी—बाबा। कलिपावनावतार परम दयाल निताइ गौर ही कलिहत जीवोंके एकमात्र उद्धार-कर्त्ता हैं। अतएव प्राण भरकर निताइ-गौर नाम करनेसे केवल विपदसे परित्राण ही नहीं सर्व्वाभीष्टकी पूर्ति हो सकती है।

यह कहकर स्वयं 'निताइ गौर राधेश्याम, हरे कृष्ण हरे, राम' नाम गाने लगे। साथी साथ-साथ गाने लगे। तब वह लड़की अचैतन्य होकर गिर पड़ी। ब्राह्मण पुत्रको गोदीमें लेकर नाम कर रहा था, पर उसे किसी प्रकार धैर्य नहीं बंध रहा था। अश्रु-धारसे उसका मुख और वक्षःस्थल भीग रहे थे। 'हा निताइ' कहकर वह उच्च स्वरसे रो रहा था। ब्राह्मणकी कातरता देख

बाबाजी महाशयने उसकी गोदसे बच्चेको लेकर जैसे ही कानमें नाम देते हुए उसकी छाती पकड़ी वैसे ही चैतन्य लाभकर उसकी गोदीसे उतर पड़ा और पितासे कहने लगा 'देखो, तुमसे घोर अपराध हुआ है। तुम विष्णु-वैष्णवद्वेषी और नामापराधी हो। इन लोगोंको सामान्य मनुष्य न समझना। इनमेंसे एक-एक व्यक्ति असाधारण शक्ति धारण करता है। विशेषत: तुमने जिनके ऊपर कटाक्ष किया है वे कोई ऐसे वैसे मनुष्य नहीं हैं। आज तुम्हारा ही नहीं वरं इस देशका परम सौभाग्य है जो इन महात्माके चरण दर्शन प्राप्त हुए हैं। इनका यथार्थ तत्वमें तुमसे और क्या कहूं। ब्रजलीलारस आस्वादन करनेके लिये श्रीगोविन्द राधाभाव-कान्ति अंगिकारकर गौरांगरूपसे कलिकालमें अवतीर्ण हुए थे। उसी लीलारसका आस्वादन करना जीवोंको सिखानेके लिये बलराम अनंगमंजरी मिलिततनु श्रीनित्यानन्दरूपसे अवतीर्ण हुए थे। दोनोंकी लीला दोनों एक साथ सम्यकरूपसे आस्वादन न कर सकनेके कारण इस समय उन्हीं दोनों (निताइ गौराङ्ग) के मिलित तनु भक्तभाव अंगिकारकर जगतमें विहार कर रहे हैं।' कहते-कहते बालक फिर अचैतन्य होगया। बाबाजी महाशय फिर बालकको आलिंगनकर उच्चस्वरसे हरिनाम सुनाने लगे। थोड़ी देरमें चैन्तय लाभकर सोकर उठे बालककी भांति कांपता और डरता हुआ पिताकी गोदीमें जा बैठा।

लड़कीका अश्रुपुलकादि सात्विकभाव परिव्याप्त-देह निश्चल निस्पन्द हो धरतीपर पड़ा है। उसके कुछ-कुछ विकम्पित ओठोंपर अभाव और अभिमानजनित करुण रोदनकी रेखायें दीख पड़ती हैं और अभी ऐसा लगता है कि जैसे मिलनके सुखोच्छवाससे विकसित कपोलों और अधरोंसे मृदुमधुर हंसीकी

छटा निकलकर दर्शकोंके हृदयकमलको विकसित कर रही है। कैसा अपूर्व प्रेमका विकास! कैसी अपरूप माधुरी। प्रेमरूपी पुष्प देश-काल, गुण-गौरव, वेश-वयस, जाति-विद्या, कुल-मान, स्त्री-पुरुष और समय-असमय का विचार नहीं करता। विशुद्ध हृदय काननमें प्रेममयके प्रसंग स्वरूप बसन्त समागमके होते ही विकसित होकर अपनी सुगन्ध चारों ओर फैलाने लगता है।

थोड़ी देरमें जैसे ही बाबाजी महाशयने बालिकाके कान में मन्त्र देकर 'जय नित्यानन्द राम' कहते हुए जोरसे हुंकारा वह चकित होकर आंख मलते हुए विस्मित भावसे चारों तरफ देखने लगी। उसके स्वभाव, लज्जा, भय, मान, कुलमर्यादा आदिने फिरसे उसे घेर लिया। वह सम्हलकर उठी और धोती सरसे ओढ़ते हुए धीरे-धीरे साथकी स्त्रियोंमें जा मिली। क्रमशः सबने अपने-अपने घरको प्रस्थान किया। आज जहां भी गांवके दो व्यक्ति एकत्र होते हैं केवल उस बालिका और शिशुकी ही चर्चा करते हैं। बालककी घटनासे तो जैसे सभीकी आंखें खुल गईं और गुरुपवासी बहुतसे लोगोंकी बाबाजी महाशयके प्रति प्रगाढ़ भक्ति जन्मी। उस दिन निताइके मन्दिरमें इनके महा-प्रसादकी व्यवस्था हुई। इसी प्रकार और भी कई दिन गुरुप गांवमें व्यतीत हुए।

नवद्वीप–प्रत्यागमन

एक दिन प्रभातमें जब बाबाजी महाशयने सबसे नवद्वीप लौटनेके लिये बिदा प्रार्थनाकी तो सभीने और कुछ दिन गुरुप-

गांवमें रहनेके लिये विशेषरूपसे अनुरोध किया । किन्तु श्रीधामका आकर्षण इतना प्रबल हो उठा कि कोई उन्हें रोक न सका । दूसरे दिन तड़के ही वे सदल-बल नवद्वीपधामकी ओर चल दिये । नवद्वीपसे जिस मार्गसे आये थे । उससे न लौट कर दूसरे मार्गसे लौटे और माघ मासकी पंचमीको रविवारके दिन अपरान्हमें नवद्वीप पहुंचे । साथियोंमें प्राय सभीका शरीर कृश और दुर्बल था । किन्तु मानसिक अवस्था नित्य नव नवायमान थी । श्रीधाममें प्रवेश करते ही सबके हृदयमें दुगना उत्साह बढ़ गया । प्रात:काल और संध्या नगर कीर्त्तनमें और अवशिष्ट समय पाठ और नाम संकीर्त्तनानन्दमें व्यतीत होने लगा ।

अवधूत ज्ञानानन्द स्वामीसे मिलन†

श्रीयुक्त गौरहरिदास बाबाजी महाशयके शिष्य श्रीयुक्त राधारमणचरणदास बाबाजी महाशय जब श्रीधाम नवद्वीपमें रहते तो प्राय: 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्त्तन करते-करते गली-गली घूमा करते । नवद्वीप-वासी अनेक लोग उनके साथ-साथ जाते । बाबाजी महाशय अतिदीर्घाकार, चतुर्हस्त परिमितदेहधारी, परम प्रेमिक और अदोशदर्शी थे । यदि कभी कोई उनके सामने परनिन्दा या परचर्चा करता तो वे सुमधुर वाक्यों द्वारा उसे प्रबोध कराते

---

†यहाँ श्रीधाम नवद्वीप निवासी महात्मा श्रीनाथ गोस्वामीका लेख ज्यों का त्यों उद्धृत किया है ।

हुए कहते 'भाई ! सदा अपने दोषोंको ध्यानमें रखो। तुम्हें भगवान्ने दूसरोंके लिये विचारक बनाकर तो भेजा नहीं है।' वे बिना विचारे आबाल-वृद्ध-युवक सबको प्रेमसे आलिंगन करते। उनके प्रेममय आलिंगन और अमृतमय संगसुखका जो एक बार अनुभव कर लेता उसे ऐसा लगता कि वह न जाने उस जन्मका उनका कौन है। उनका आनन्दमय बदन-चन्द्र उसे कभी न भूलता। नवद्वीपवासी अनेक लोग उनसे आकृष्ट होकर सर्वदा उनके पास आया जाया करते। बालक और बालिकाऐं तो उनके प्रेम बन्धनमें इस प्रकार बंधे रहते कि उनके बाहर निकलते ही वे माता-पिताके शासनकी भी परवाह न कर वे भागकर आते और प्रेमानन्दमें नृत्य–कीर्त्तन करते-करते उनके साथ-साथ चलते।

उस समय महात्मा अवधूत श्रीज्ञानानन्द स्वामीजी महाराज नवद्वीपमें आमपुलिया पाड़ेमें रहते थे। कालीदास बन्दोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, धर्मदास राय, देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और मैं महाराजजीके शिष्य थे। किन्तु हमें बाबाजी महाशयके सत्संग और कीर्त्तनमें इतना आनन्द होता था कि हम अधिकांश समय उन्हींके साथ व्यतीत करते थे। उन्होंने जब हम लोगोंसे स्वामीजीके भावावेश इत्यदिकी बात सुनी तो इनसे मिलनेके लिये बड़ा आग्रह प्रकाश किया। एक दिन अकस्मात् क्या देखते हैं कि रात्रिमें नौ बजेके लगभग बाबाजी महाशय नाम कीर्त्तन करते-करते स्वामीजी जिस कमरेमें बैठे थे उसमें जा कर उद्दंड नृत्य कीर्त्तन कर रहे हैं। सभी कीर्त्तनमें उन्मत्त हो वाह्य स्मृति खो बैठे हैं। स्वामीजी और बाबाजी महाशय मदोन्मत्त सिंह की भाँति हुंकार गर्जन

कर रहे हैं। हम लोग सब देख सुनकर अवाक् हैं। न जाने किसकी शक्तिके प्रभावसे उपस्थित भिन्न-भिन्न प्रकृतिके लोग सभी प्रेम में विभोर हो रहे हैं। सभी आनन्दमें मतवाले होकर नाम करते-करते और ताली बजा-बजाकर नृत्य कर रहे हैं। कालीदास बाबू, हरेनबाबू, प्रियबाबू,चक्रपाणि प्रभृति विशेष-रूपसे मतवाले हो रहे हैं। सभीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धार निरन्तर बह रही है, सभीके अङ्ग प्रत्यङ्ग पुलकायमान हैं और किसी प्रकार सम्हल नहीं रहे हैं। किसीको किसीकी सुध नहीं है। बाबाजी महाशय और स्वामीजी महाराज दोनों ही भावाविष्ट और सात्विक भूषण-विभूषित हैं। दोनोंके अंग कभी कभी इस प्रकार कम्पायमान हो पड़ते हैं और कभी दोनों ऐसा उच्च हास्य करने लगते हैं कि सब स्तम्भित हो जाते हैं! दोनों एक दूसरेकी अश्रुधारसे अभिषिक्त हो रहे हैं। दोनोंके नेत्र अर्धमुद्रित हैं! किन्तु क्रियाए दोनोंकी समान हैं!

थोड़ी देरमें दोनों एक दूसरेके हाथ पकड़ मत्त हाथीकी भाँति घरसे बाहर निकल आये। हम लोग भी सब बाहर आ गये। यकायक स्वामीजी अचेत हो गये। भूमिपर गिरनेके भयसे देवेन्द्रबाबू, धर्म्मदासबाबू और कई लोगोंने उन्हें पकड़ रखा। बाबाजी महाशयकी भी अवस्था इसी प्रकारकी हो गई। स्वामीजीके गलेमें बाबाजी महाशयका दाहिना हाथ था और बाबाजी महाशयके गलेमें स्वामीजी का बांया हाथ। दोनों देह निश्चल और निष्पन्द थे जैसे भक्तमंडली परिवेष्ठित दो काठकी पुतलियाँ खड़ी हों। अपूर्व शोभा! ऐसा लगता कि मानो निताइ गौर मूर्तिमान हो अन्तरङ्ग भक्त-मण्डली सहित संकीर्त्तनानन्दमें विभोर हैं। धन्य वह शुभ मुहूर्त! धन्य वह रात्रि! धन्य दोनों

महात्माओंके संगी साथी, धन्य वह दर्शकमंडली ! धन्य मैं ! कहाँ तो मुझ जैसा अविश्वासी और पाषंडी और कहाँ यह अपूर्व शुभ सम्मिलन ! धन्य महापुरुषोंके सत्संगका महात्म्य !'

एकदम अर्धवाह्य अवस्था प्राप्तकर स्वामीजी अपने दाहिने वक्ष:स्थलसे बाबाजी महाशयको लगाकर बैठे और अपना दाहिना हाथ उनके शरीरपर फेरते हुए बोले, 'भाई चरणदास ! तुम पूर्ण नित्यानन्द शक्ति हो। तुम सर्वप्रथम दक्षिण देशमें जाकर घोर, पतित, पाषंडी, नास्तिक, कुतर्कनिष्ठ और उपधर्मपरायण जीवोंको विशुद्ध प्रेमशक्ति प्रदानकर उनका उद्धार करो। तुम्हारे बिना जीवोंके उद्धारका और कोई उपाय नहीं है। विनय और दैन्यकी मूर्ति, तृणादपि नीचाभिमानी बाबाजी महाशय साश्रु नयन और प्रेमगदगद कंठसे बोले 'दादा आप शक्ति संचार कीजिये। आपके कृपा-कटाक्षसे काठकी पुतली भी नृत्यकर सकती है, जीव-उद्धार तो साधारण बात है। आप आशीर्वाद दीजिये कि जगवासी मायामुग्ध, त्रितापतापित जीव नामरसमें विभोर और प्रेमरूपी वर्षासे तराबोर हो जायें। म्लेच्छ, यवन, पशु, पक्षी पर्यन्त प्रेमानन्द-पूर्ण हृदयसे 'हा निताइ गौरांग' कहकर व्याकुल हो रोदन करें। यह देखकर मेरे मनकी साध मिटे और मेरा जीवन धन्य हो।'

यह कहते-कहते बाबाजी महाशयका कंठ रूंध गया और दोनों एक दूसरे को हृदयसे लगाकर रोने लगे। दोनोंका रोना किसी प्रकार नहीं थमा। अति गंभीर दोनों महापुरुष

आज भावमें अधीर हो उठे। इस महाभावसागरके अन्तस्थलमें प्रवेश करना हमारे समान क्षुद्र जीवके लिये दुस्साध्य है।

थोड़ी देरमें दोनों कुछ स्थिर हुए। उसी समय हमारी बड़ी बुआजी† ने एक थाल घरकी बनी गरम-गरम जलेबियोंका स्वामीजीके हाथोंमें लाकर दिया। स्वामीजी एक-एक जलेबी उठाते, उसमेंसे आधी आप खाकर आधी बाबाजी महाशयके मुखमें देते, फिर दूसरी बाबाजी महाशयके मुखमें देकर शेष आप खा लेते और खाते-खाते खाई-खलाई भक्तोको देकर कहते 'ले रे कौन खायेगा यह जलेबी'।

महापुरुषगण सर्वदा आनन्दमय होते हैं। चाहे किसी अवस्थामेंहों आनन्द उनका चिरसाथी और प्राण होता है। देखते-देखते दोनों सम्बन्ध राज्यमें प्रवेशकर गये। अब दैन्यभाव नहीं। अब दोनों एक दूसरेकी मंगल-कामना कर आशीर्वाद देने लगे। स्वामीजी बाबाजी महाशयके मस्तकपर हाथ रख कहने लगे 'तुम दीर्घजीवन लाभकर जगतका अशेष कल्याण करो, यह मेरा अशीर्वाद है'। बाबजीमहाशय अपनी चरणरज स्वामीजीके वक्षःस्थल पर मलते हुए बोले 'मैं अशीर्वाद करता हूँ कि तुम कुछ दिन जगतमें रहकर जीवोंका उपकार करो'।

रात्रिमें कोई दो बजेके समय सब अपने-अपने घर गये। उस दिनके भाव, प्रेम और आनन्दका वर्णन करना मेरे समान अज्ञ जीवके लिये नितान्त असंभव है। फिर भी जो कुछ मैं प्राकृत नेत्रोंसे देख सका उसका आभासमात्र यहाँ प्रकाश किया है।

---

† स्वामीजी महाराजकी ज्येष्ठ गुरु भग्नि।

शिव रात्रि[†]

आज शिवचतुर्दशी है। चारोंओर खूब धूम-धाम है। बालकगण पुष्प,बेलपत्र इत्यादि संग्रह करनेके लिये भागदौड़कर रहे हैं। हाट, बाजार, घाट और मन्दिर सभी जगह पुष्प,बेलपत्र और फूलोंकी छड़ियां बिक रही हैं। सबका मुख शुष्क परन्तु आनन्दमय हो रहा है। आज सभी नाना प्रकारके उपहारोंसे भोलानाथको मुग्ध करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। सभी उपवासक्लिष्ट देह द्वारा आशुतोषके सन्तोषविधानके लिये व्यस्त हैं।

देखते देखते अपराह्नका समय हो आया। बाबाजी महाशय सदलबल भुवन मंगल नाम 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' का कीर्त्तन करते-करते पोड़ामां-तला जा उपस्थित हुए। वहाँ मांको दंडवत् प्रणामकर और रो-धो कर स्नेहभरी याचनाकर मानो पिताके निकट जानेकी आज्ञा प्राप्त कर चरणपर चरण रख नाचतेनाचते बुड़ोशिव तलाकी ओर चल पड़े। मार्गमें ड़ेढ़ घंटेतक व्रजनाथ विद्यारत्नके यहाँ हरिसभामें कीर्त्तनकर साढ़े चार बजेके करीब बूढ़ेशिवके मन्दिरके निकट पहुंचकर नाम कीर्त्तन करने लगे। इसी समय श्रीताराप्रसन्न चूड़ामणि, उमेशचन्द्र, स्मृति रत्न, माधवचन्द्र चौधरी प्रभृति कई ब्राह्मण पंडित वहाँ आकर उपस्थित हुए। वे कुछ कटाक्ष-भावसे बोले 'बाबाजी! आज शिवरात्रि है। कुछ महादेव

---

† इस घटना को भी हमने उक्त श्रीनाथगोस्वामी महाशयसे प्राप्त किया है।

बाबाका नामकीर्त्तन करो न।' बाबाजी महाशय कर जोड़कर बोले 'जो आज्ञा बाबा' और 'भज निताइ गौर राधेश्याम। गौरीशंकर सीताराम' यह ध्रुयाधर नाना प्रकारके पद गाने लगे। उन्हें सबको याद रखनेकी किसमें सामर्थ्य थी। दो चार पंक्तियां जो याद रहीं वह इस प्रकार हैं—

जय शिवशंकर त्रिजगत गुरु।
करुणा बितर हर वाञ्छा कल्पतरु॥
बैष्णवाग्रगण्य तुमि भुबने बिदित।
वैष्णवी-मायाते जेन ना हइ मोहित॥
ज्ञानदाता बलि तोमाय बले सर्वजन।
आत्म तत्वज्ञान मोरे कर वितरण॥
नारी मात्रे मातृसम ज्ञान कर दान।
परदुःख देखि जेन आपन समान॥
स्थाबर जंगम जीबे गुरु करि मानि।
निजदेहे हीन ज्ञान देह शूलपाणि॥
कृष्ण प्रभु मुजि दास एइ ज्ञान देह।
गुरुवाक्ये कभु जेन ना हय सन्देह॥
काम क्रोध आदि रिपु नाशि गंगाधर।
भक्ति बिश्वास ज्ञान सन्ताने बितर॥

शाक्त, शैव, वैष्णव जितने भी लोग वहाँ थे सब बाबाजी महाशयका कीर्त्तन सुन स्तम्भित हो गये। सब प्रेम समुद्रमें डूब गये। ताराप्रसन्न चूड़ामणि प्रभृति जो बाबाजी महाशयको कुछ अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा करते थे अपनी संकीर्ण बुद्धिको धिक्कारने लगे। किन्तु बाबाजी महाशय जैसे इस राज्य

में ही न थे। चित्रपटमें शिवजीके नेत्र देखकर मैं समझा करता था 'कि इस प्रकार नेत्रोंको रखना मनुष्यके लिये दुःसाध्य है। आज मेरा वह भ्रम दूर हो गया। बाबाजी महाशय शिवनेत्रवत् अर्द्धनिमीलित नेत्रों सहित बायें पंर पर दाहिना पैर रखे और दाहिना हाथ ऊपर उठा वक्र भावसे दोनो पैरके अगूठोंपर तेजः पुंजपरिपूर्ण अपने विशाल देहका भार रखे नाचते-नाचते 'शिव-राम, शिवराम' कह इस प्रकार हुंकार रहे थे कि सभीको लगता था जैसे शिवजी उनके देहमें आविर्भूत हो नृत्य कर रहे हैं। उनका पुलकावलि विभूषित देह देख ऐसा लगता कि शिमूल का वृक्ष नृत्य कर रहा हो। बीच-बीचमें हुंकार कर इस प्रकार कांपने लगते कि देखकर भय होता। प्राय चार घंटे इसी प्रकार निकल गये। हमें ऐसा लगा कि अभी आधा या पौन घन्ट ही हुआ है। अब रजमें लोट-पोटकर 'निताइ गौर राधेश्याम। गौरी शंकर सीताराम ॥' गाते-गाते गंगातीरकी ओर जा ही रहे थे कि ताराप्रसन्न चूणामणि, उमेशचन्द्र स्मृतिरत्न प्रभृति उन्हें आलिंगनकर कहने लगे,'बाबा ! आज हम लोग धन्य हुए। आपके अन्दर प्रभुने इतनी शक्ति दे रखी है यह न जानकर हम लोग पहले आपको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा करते थे। इसकेलिये हम ईश्वरसे क्षमा प्रार्थना करते हैं। आप हमारे ऊपर असन्तुष्ट न हों।' बाबाजी महाशय कर जोड़कर अति विनीतभावसे बोले, 'भाई, मैं नितान्त अयोग्य हूँ। आपलोग आशीर्वाद कीजिये कि आपके पादपद्मोंमें मेरी मति बनी रहे। मैं तो काठकी पुतलीके समान हूँ। आप लोग जिस समय जिस प्रकार नचाना चाहते हैं उसीप्रकार नाचता हूँ। शास्त्रादिका ज्ञान तो मुझे कुछ है नहीं।'

चूणामणि—बाबा ! हमें विश्वास है कि आप ही को प्रकृत शास्त्रज्ञान हुआ है। जब आपके अन्दर किसी प्रकारकी

भेद-बुद्धि नहीं है तो निश्चय ही ईश्वर साक्षात्कार होगा या हो चूका है। आजके वैष्णव सम्प्रदायमें तो हम देखते हैं कि काली, दुर्गा, शिवादिका तो कोई नाम भी नहीं लेता।

बाबाजी—बाबा ! किसी देवतासे द्वेष करना तो दूरकी बात है, हमारे गौरांग महाप्रभुके मतानुसार जिस हृदयमें किसीसे भी ईर्षा, द्वेष, हिंसा, परनिन्दा और परचर्चाके भावका स्पर्श मात्र है उस हृदयमें भक्ति व प्रेमका उदय होना छोड़ भक्ति देवी उसके नामसे ही भयभीत होकर भाग जाती हैं। श्रीमन्महाप्रमुने वैष्णव धर्म्मके लक्षण बतलाते हुइ कहा है:—

ब्राह्मण आचंडाल कुक्कुरान्त करि।
दंडवत करिबेक बहुमान्य करि॥
एई से वैष्णव धर्म्म सबारे प्रणति।
सेइ धर्म्म-ध्वजो जार इथे नाहि मति॥
सर्बदेब पूजिब्रे ना हबे तत्पर।
सबार निकट मेगे लबे इष्ट भक्तिबर।

केवल वैष्णधर्म्म ही नहीं ! धर्म्मपदवाच्य पदार्थ मात्र को ही कभी किसी प्रकारका दोष स्पर्श नहीं कर सकता। जिस प्रकार अन्धकारमें आलोकको स्पर्श करनेकी सामर्थ्य नहीं उसो प्रकार नित्य सत्य धर्म्म वस्तुमें अनित्य और असत्य दोषोंका लगना कदापि सम्भव नहीं। फिर भी जो व्यतिक्रम देखनेमें आता है वह व्यक्तिगत है धर्म्मगत नहीं।

थोड़ी देरमें सबने अपने-अपने स्थानको प्रस्थान किया और बाबाजी महाशय भी नाम करते-करते आश्रमको लौट गये।

†सूर्यग्रहणके उपलक्ष्यमें महासंकीर्तन

आज सूर्यग्रहण है। असंख्य यात्रि ग्रहणोपलक्ष्यमें गंगा स्नान करने और धामदर्शन करने नवद्वीप आये हैं। कोई कांच पर स्याही मलकर, कोई काले पत्थरपर जल डालकर और कोई-कोई दुर्बीनकी सहायतासे सूर्यदेवके दर्शन कर रहे हैं। सभी बड़ी उत्कन्ठासे ग्रहणकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी व्यस्त हैं। कोई ग्रहणके समय दान करनेके उद्देश्यसे नानाविध द्रव्य लेकर गंगातटकी ओर जा रहे हैं। कोई होम करनेके उद्देश्यसे तदुपयोगी वस्तु संग्रह कर रहे हैं। ब्राह्मणगण नाना स्थानोंमें घूम-घूमकर यजमान संग्रह कर रहे हैं। कीर्त्तनी ग्रहणकी प्रतीक्षामें खोल करताल ले गंगा किनारे बैठे हैं। भिखारी घाटके दोनों ओर कपड़ा फैलाकर बैठे हैं। दुकनदार दानके लिये उपयोगी वस्तुएँ दूकानोंपर सजाकर रखे हैं। जिसके पास कुछ भी नहीं है वह भी आज ब्राह्मण व मां गंगाको कुछ न कुछ अर्पण करनेके लिये व्यस्त हो रहा है।

इसी समय में घूमते-घूमते आमपुलिया पाड़ेके अवधूत ज्ञानानन्द स्वामीजी महाराजके आश्रममें जा कर देखता हूँ कि वहुतसे लोग स्वामीजीको गंगातटपर ले जानेके लिये बड़ी चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु स्वामीजी कह रहे हैं 'तुम लोग जाओ, मैं आश्रममें ही रहूँगा।' महापुरुषके हृदयके गूढ़ भावको कौन समझ सकता है ? मुझे देखते ही बहुतसे लोग बोल उठे 'दादा,

---

†यह घटना नवद्वीप निवासी श्रीयुतकालीदास बन्धोपाध्याय मुख्तार द्वारा लिखकर भेजी हुई ज्यों को त्यों उद्धत की गयी है।

यदि ग्रहणके समय स्वामीजीको गंगा तटपर ले। चलते तो बड़ा ही आनन्द होता। पर स्वामीजी किसी प्रकार तैयार नहीं हा रहे हैं। हमारा विश्वास है कि आप चेष्टा करें तो शायद वे चलनेको तैयार हो जायें।' यह सुनकर मैंने बड़े उत्साहसे स्वामीजीसे कहा 'देखिये, आपके गंगातटकी ओर थोड़ा हो आनेसे यदि बहुतसे लोगोंको सुख मिले तो आपको क्या आपत्ति होनी चाहिये। चलिये आपको चलना होगा।' यह कहकर मैंने जैसे ही चलनेके लिये उनका हाथ पकड़ा वे ठीक बालककीं भांति हमारे साथ चलने लगे। उपस्थित भक्त वृन्द परमानन्दित हो हरिध्वनिकर गंगातटकी ओर चल दिये। थोड़ी देरमें हमलौग स्टीमरघाटपर जा पहुंचे। उस समयके स्टीमर-स्टेशन-मास्टर स्वामीजीके शिष्य थे। स्वामीजीको देखते ही उन्होंने विशेष आग्रह पूर्वक उन्हें ले जाकर स्टेशनके भीतर एक कमरेमें कुर्सी पर बिठा दिया। मैं भी उनके पास एक कुर्सीपर बैठ गया। मैंने 'हरिबल हरिबल हरिबल भाइ रे। हरिनाम बिना जीबेर आर गति नाई रे' यह पद हाथसे ताली बजाते हुए धीरे-धीरे गाना आरम्भ किया। दूसरे साथी कमरेके बाहर बैठे थे। वे भी सब पद कीर्त्तनमें सहयोग देने लेगे। इसी समय एक भक्त बोल उठे 'ग्रहण लग गया'। सुनते ही स्वामीजी और मैं बाहर आये। मैं एक नीमके पेड़की ठेस लगाकर खडा था। मैंने देखा कि राजेन दादा गंगातटके रास्ते पर धीरे-धीरे हमारी ओर चले आ रहे हैं। निकट आनेपर मैंने पूछा 'क्या बात है? आज कीर्त्तन छोड़कर अकेले किधर जा रहे हैं?'

राजेन दादा— हां भाई न जाने आज क्यों कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। इसलिये अकेला घूम रहा हूँ।

मैं—तब यहीं क्यों नहीं कीर्त्तन करते, स्वामीजी भी यहाँ उपस्थित हैं।

राजेन दादा—निताइचांद किस प्रकार नचायेंगे वही जाने।

यह कहकर पूर्ववत सीधे श्मशान घाटकी ओर जाने लगे। थोड़ी देरमें वे लौट आये। हमारा पूर्वोक्त पद कीर्त्तन चल रहा था। वे उसी पदको लेकर कीर्त्तन करने लगे। वे पहले गाते और हम लोग सब पीछे दुहराते। धीरे-धीरे फूसके ढेरमें प्रविष्ट चिंगारीकी भांति नामका विस्तार होने लगा। इसी समय उत्तर दिशासे दस-बारह भक्त खोल करतालके साथ 'निताइ बल, गौर बल, हरि बल भाइरे। निताइ चैतन्य बिने आर गति नाई रे।' गाते-गाते चले आ रहे थे। हमारे निकट पहुंचते ही चुम्बकाकृष्टलोहेके समान हमारी कीर्त्तन मंडलीमें प्रविष्ट हो नाम कीर्त्तन करने लगे। धीरे-धीरे और भी जितनी कीर्त्तन मंडलियां आती गईं सब हमारी मंडलीमें प्रवेश करती गईं। किन्तु मैं उसी नीमके पेड़के सहारे खड़ा यह रहस्य देख रहा था। स्वामी जी और राजेन दादा दोनों उस महासंकीर्त्तनके केन्द्रस्थलमें प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे। भक्तोंकी भीड़का कुछ ठिकाना न था। कितने खोल करताल वहां थे इसकी गणना करना भी कठिन था। एक साथ सहस्त्र कंठोंसे निसृत हरिध्वनि मानो पृथ्वीको कम्पित करने लगी। रमणियोंकी उलुध्वनि, भक्तोंकी प्राणभेदी जय ध्वनि, और खोल करतालकी ध्वनिसे ब्रह्मांड गूंज उठा। सभी प्रेमानन्दमें विभोर हो आत्मविस्मृत भावसे दोनों महापुरुषोंको घेर कर उद्दंड नृत्य और कीर्त्तन कर रहे थे। सबके अंगमें रज लिपट रही थी। दूरसे किसीको भी पहचानन

कठिन था। मैं पूर्ववत चित्रकी भांति खड़ा एकटक महासंकीर्तन के दर्शन कर रहा था। आश्चर्यकी बात यह थी कि शत सहस्र मस्तकोंके बोच राजेन बाबूका मस्तक प्राय एक बालिशत ऊपर शोभायमान हो रहा था और सूर्यदेव जितना अधिक ग्रहग्रस्त हो रहे थे उनके देहसे उतना ही तेज पुंज विकसित हो रहा था। क्षण-क्षणमें उनका मुख ऐसा लाल हो जाता था कि उन्हें दूरसे पहचानना भो कठिन होता था।

पांच सात व्यक्ति एक साथ अचैतन्य हो भूमिपर गिर पड़ते थे। अन्यान्य लोग उन्हें उठाकर एक ओर ले जाते थे। आगन्तुक बालक उनकी शुश्रूषा कर रहे थे। बहुमूल्य बसन भूषणसे सुसज्जित कृष्णनगरनिवासनी परमासुन्दरी स्त्रियां भावविगलित नेत्रोंसे अश्रुबिसर्जन करते-करते अपने आंचलोंसे भावभरे अचैतन्य भक्तोंके आँसू पोंछकर हवा कर रहीं थीं। कोई-कोई अपने बहुमूल्य वस्त्रोंसे भावाविष्ट व्यक्तियोंके धूलि-धूसरित देह मार्जन कर रही थीं। और कोई उनके चरण पकड़ व्याकुल भावसे रोदन कर रही थीं। कैसा पवित्र भाव था! अपने-पराये, ऊंच-नीच, ब्राह्मण-चंडाल,स्त्री-पुरुष आदिका कुछ भेद न था। सब सुपवित्र नाम सागरमें डूबकर पवित्र हो गये थे। सबका हृदय एक अप्राकृत भावसे इतना कोमल हो रहा था कि उसे देख प्रतीत होता था मानो महाभाव रूपिणी कोमल-हृदया करुणामयी वृषभानुनन्दनी कायव्यूह रूपसे प्रति देहमें अवस्थान कर रही हैं। मैंने न जाने कितनी बार नवद्वीपमें सूर्यग्रहणका दर्शन किया था, अनेक महात्माओंका कीर्त्तन भी सुना था। किन्तु ऐसा लगता था कि राजेन दादाके समान तन्मयता, आकर्षण और आत्म-विस्मृति न तो कहीं किसीने

देखी होगी और न कोई देख सकेगा। मैंने अपने जीवनमें नाम संकीर्त्तनमें इतने लोग और इतने खोल करताल एक साथ कभी नहीं देखे थे। दूसरी आश्चर्यकी बात यह थी कि ग्रहणका अवस्थितिकाल चार घंटे था। इतनी देरतक नाम-संकीर्तन एक भावसे चल रहा था, फिर भी किसीको क्लान्तिका बोध नहीं हो रहा था। साधारणतया कुछ समय कीर्त्तन करनेके पश्चात् उद्यम अपने आप ही कम होने लगता है, परन्तु इस समय उद्यमकी वृद्धि होती जा रही थी। अपनी दशा देखकर भी मैं विस्मित हो रहा था। एक साथ चार घंटे स्थिरचित्तसे खड़े रहना मेरे लिये असंभव था। सूर्य्यदेव पूर्णग्रस्त हो गये पर नामरूप सूर्यके आलोकसे दसों दिशायें उद्‌भासित हो उठीं। सूर्यदेवके पूर्णग्रस्त हो जानेपर आकाशमें श्रीहीन तारोंको देख मुझे ऐसा लगा कि राजेन्द्र-मुखचंद्र विगलित नाम सुधापानसे परितृप्त शत सहस्र भक्त-रूप नक्षत्रमंडलीकी उज्ज्वलता देख वे अपने-अपने भाग्यको धिक्कार रहे हैं। निर्दिष्ट समयके बीतनेपर सूर्यदेव धीरे-धीरे जैसे ही पूर्वावस्थाको प्राप्त हुए स्वामीजी महाराज और राजेन दादा दोनों प्रेमविह्वल भावसे वात्सल्यमयी मां जान्हवीदेवी की गोदमें भरसे जा पड़े। और भी सब भक्तोंने ऐसा ही किया। मां भी मानो अभीतक सतृष्णनयनोंसे स्थिर हो अपनी सन्तान का सुन्दर भावभरा नृत्य देख रही थी। वे परिश्रान्त सन्तानको वक्षमें धारणकर प्रेमानन्दके कारण उत्ताल तरंगोंसे परिपूर्ण हो गईं। प्रेमोन्मत्त सन्तान मां की गोदमें जाकर भी स्थिर न हो सकी। जलमें एक नवीन प्रकारका कीर्त्तन और नृत्य होने लगा। एक व्यक्तिको बीचमें कर दस बारह व्यक्ति हाथसे हाथ पकड़ उसे घेरकर नृत्य और कीर्त्तन करने लगे। इस प्रकार सैकड़ों मन्डलियां अलग-अलग कीर्तन करने लगीं। थोड़ी देर

बाद सबको होश आया और अपने-अपने संसारकी स्मृति जागी। दुकानदारको दुकानकी, ग्रहस्थको घर द्वार स्त्री पुत्रादिकी और यात्रियोंको अपने पैसे कौड़ी और वस्त्रादिकी। सबने गंगा मांको दंडवत कर अपने-अपने घरको प्रस्थान किया। स्वामीजी और हम सब गीले वस्त्रोंमें ही घरको लौटे। अपने जीवनमें मैंने इस प्रकारके आनन्दका कभी उपभोग नहीं किया।

रामदाससे मिलन

अपराह्नका समय है। बाबाजी महाशय गोविन्ददास महन्त † के अखाड़ेमें बैठे हैं। साथमें नवद्वीप दादा और दो एक साथी हैं। महन्तके साथ नानारूप कृष्णकथा-प्रसंग हो रहा है। इसी समय एक चौदह-पन्द्रह वर्षका उज्ज्वल श्यामवर्ण बालक आया। दूरसे ही उसे देख सब उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। नवद्वीपदासने उठकर बालकको आलिंगन किया और बाबाजी महाशयके निकट ले आये। बाबाजी महाशयने बालकका परिचय पूछा तो नवद्वीप दादा बोले 'इसका नाम रामदास है। यह फरीदपुर निवासी महात्मा जगद्बन्धु भट्टाचार्यके अनुगत है। इस समय हरिसभामें है। बालक बड़ा अनुरागी है। निताइ चांदकी नामकीर्त्तनके सम्बन्धमें इसपर विशेष कृपा है। इसके मधुर कंठसे भाव और प्रेमभरा नाम कीर्त्तन सुन पत्थरका हृदय

† यह नवद्वीपमें पालगोविन्दके नामसे विख्यात थे।

भी पिघल जाता है—घोर पाषंडीका हृदय भी थोड़े समयके लिये 'हा !' निताइ गौरांग पुकारकर व्याकुल हो उठता है। यह सुन बाबाजी महाशयने रामको आलिंगनकर अपने पास बिठाया। बालक रामदास अभिनव अप्राकृत सुशीतल वृक्षके संस्पर्शसे विस्मित हो अपने हृदयमें नानारूप समालोचना करते हुए बाबा महाशयको बार-बार सरसे पैरतक देखने लगा।

कुछ देरमें बाबाजी महाशय रामदासकी पीठपर हाथ रखकर बोले 'चल भाई, चलें।' सबने महन्तको दंडवतकर प्रस्थान किया। चौरस्तेपर आकर बाबा महाशय बोले 'भाई राम ! कुछ नाम कीर्त्तन करो तो।' रामने प्रारम्भ किया 'हरि बल रे भाई, गदाधर गौरांग बसु जाह्नवा निताइ। बसु जाह्नवा निताइ, सीता अद्वैत गोसाईं' इत्यादि। एक तो बालकका मधु-मय कंठ, उसपर भी उसकी अनुरागभरी तान। जो कोई भी सुनता है उतनी देरके लिये प्राकृत राज्यको भूल प्रेमानन्द सागर में डूब जाता है। रामदास प्रेमानन्दमें विभोर हो आगे-आगे गा रहा है। बाबाजी महाशय और अन्यान्य सब उसी पदको दोहरा रहे हैं। बीच-बीचमें उसे भावभरी अलंकार स्फूर्ति हो रही है। उसे सुन बाबाजी महाशय कंपित कलेवरसे 'हा निताइ' कहकर उच्च स्वरसे हुंकार उठते हैं जिससे सबका हृदय प्रेमा-नन्दसे परिप्लूत हो जाता है।

क्रमशः संकीर्त्तनानन्दमें विभोर होकर नृत्य करते-करते सब हरि सभामें जाकर उपस्थित हुए। नामके प्रबल श्रोतसे धुले हुए हृदय क्षेत्रमें नवनटवर हेमकिरणिया गौर-सुन्दरकी मूर्त्तिने प्रतिबिम्बित हो सबको आत्महाराकर दिया। किसीको

वाह्य स्मृति न रही ! सब प्रेमानन्दमें विभोर थे ! धीरे-धीरे अनेकों भक्त एकत्र होकर खोल करतालके साथ कीर्त्तनमें योग देने लगे ।

बहुत देर पश्चात् कीर्त्तन समाप्त हुआ । बाबाजी महाशय महाप्रभुको दंडवत् प्रणामकर चले । प्रेमकी मूर्त्ति और सरल हृदयके बालक रामदासने ज्यों ही बाबाजी महाशयको दंडवत् प्रणाम किया इन्होंने प्रेमाद्रहृदयसे उसे आलिंगनकर कहा 'भाई ! आज तूने बहुत सुख पहुंचाया । निताइ चांद तेरे प्रेमधनकी दिनोदिन वृद्धि करें । तेरे द्वारा जगत्के लोग सुखी हों । भाई, जितने दिन नवद्वीपमें रहे मुझसे आकर मिलता रह ।'विनय और दैन्यकी मूर्त्ति रामदासने अवनत मस्तक हो हाथ जोड़कर कहा 'दादा ! मैं बालक हूं । आप ऐसी कृपा कीजिये कि निताइ गौर के चरणोंमें मेरी अचल भक्ति हो ।' यह कहकर उसने फिर बाबाजी महाशयको दण्डवत् प्रणाम किया । बाबाजी महाशयने अपने सहज सुमधुर वाक्योंसे रामको बिदाकर, अपने स्थानको प्रस्थान किया ।

जन्मतिथि और होलीलीला†

आज फाल्गुनी पूर्णिमा है । बालक-वृद्ध पुरुष और स्त्री सब आनन्दमें विभोर हैं । सब प्रफुल्लित हृदयसे अपने-अपने कार्यमें व्यस्त हैं । बालक-बालिकागण रंग और गुलाल लेकर

---

†इस घटना को भी हमने पूज्यपाद कालीबाबूसे प्राप्त किया है ।

एक दूसरेपर छोड़ रहे हैं। व्यवसायीगण अपने-अपने व्यवसाय में, यात्रीगण ठाकुर-दर्शनमें, शाक्त-ब्राह्मणगण ठाकुरजीके दोलयात्रा उत्सवमें और वैष्णवगण अपने प्राणोंके प्राण आनन्दमय श्रीगौरांगदेवके आविर्भाव उत्सवमें उन्मत्त हैं। नाना देशों के असंख्य यात्री एकत्र हैं। आबाल-बृद्ध-बनिता सब हाथमें अबीर लेकर अति व्यस्त भावसे श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करने जा रहे हैं। महाप्रभुके द्वार पर अत्यन्त भीड़ है। भीतर कीर्तनिया लोग गानकर रहे हैं। राजेनदादा नामानन्दमें विभोर नाम कीर्त्तनके साथ नगर भ्रमण करते-करते दिनमें बारह बजे सदल-बल आश्रम पहुँच गये हैं। सबके अंगमें अबीर और रज परिव्याप्त है। राजेन दादाके नेत्र कुछ रक्त वर्णके हो रहे हैं और भावाश्रुओंसे डब-डबारहे हैं। देखनेसे बोध होता है कि वे इस राज्यमें नहीं हैं। कभी-कभी कहने लगते हैं 'आहा! आज हमारे प्राण गौरांगकी आविर्भाव तिथि है। पतितपावन परमदयाल श्रीनिताइ-गौरांगदेवकी कृपासे कलिकाल कवलित अधर्म परायण, निन्दक, पाखंडी लोगोंका भी सहजमें उद्धार हो रहा है। केवल मेरे जैसे ढ़ोंगीके ही उद्धारका कोई उपाय नहीं दीख रहा है। मैं परवंचक, प्रतिष्ठालोलुप और देवद्विजगुरुवैष्णवद्वेषी हूँ। हे प्रभु! कब मेरी चित्तशुद्धि होगी? कब मैं आपामर साधारण लोगोंके चरणोंमें लोटूंगा? कब दीनातिदीन होकर निताइदासानुदासके रूपमें जगतमें परिचित हो सकूंगा?' और इतना कह अविरल अश्रुविसर्जन करते-करते फूट-फूटकर रोने लगते हैं!

क्रमशः अपरान्ह हुआ। राजेन दादा और एक बार गंगा स्नानकर आये। आश्रममें महाप्रभुके अभिषेकका आयोजन

होने लगा। गुरुदेवने कहा, 'बाबा यादव! आज और कहीं कीर्त्तन करने न जाकर आश्रममें ही कीर्त्तनकर मुझे सुखी करना। राजेन दादा बोले 'जो आज्ञा बाबा' और नवद्वीपदाससे कीर्त्तन का आयोजन करनेको कहा।

ठीक संध्या समय महाप्रभुका अभिषेक आरम्भ हुआ। राजेन दादाने जन्मोत्सव-कीर्त्तन आरम्भ किया। महाजनोंके पदोंका कीर्त्तन करनेके पश्चात् अन्तमें यह पद प्रारम्भ किया—

बदने बल जय जय शचीर कुमार।
गौर आमार निगमनिगुढ़ अवतार॥

गाते-गाते उद्दंड नृत्य करने लगे। रात्रिमें प्राय नौ बजे कीर्त्तन समाप्तकर पंचामृत और कुछ फलमूल प्रसाद पाकर नाम कीर्तन करते-करते बाहर निकले। कहाँ जायंगें, कौन जाने। पर संगीगण जानते थे कि बिना किसी विशेष आकर्षण के बाबाजी महाशय इस प्रकार कहीं नहीं जाते। इसलिये वे छायाकी भांति नाम करते-करते उनके पीछे हो लिये।

इस ओर आम पुलिया पाड़ेके पूज्यपाद ज्ञानानन्द स्वामी जी महाराजके आश्रममें होलीके उपलक्ष्यमें चार-पांच सेर अबीर मंगाया गया है और पचीस-तीस व्यक्तियोंके लिये पूरी-कचौरी बनाई जा रही हैं। आश्रमवासी कोई भी नहीं जानते कि और कौनसे लोग आश्रममें आकर आज उत्सवमें सम्मिलित होंगे। स्वामीजी एक कमरेके बीचमें बैठे धीरे-धीरे कई भक्तोंके साथ होली कीर्त्तन कर रहे हैं। आश्रमका सदर दरवाजा बन्द है। एकदमसे बाहर नाम-कीर्त्तन-धुनि सुनाई

पड़ी। स्वामीजी की आज्ञासे एक भक्तने दरवाजा खोला। राजेन दादाने सदल बल आश्रममें प्रवेश किया और मदमत्त सिंहकी भांति हुँकारके साथ नाम कीर्त्तन करते-करते स्वामीजी के कमरेमें आकर उपस्थित हुए। मत्तसिंहकी गर्जन सुन जिस प्रकार दूसरा सिंह भी गरज उठता है, उसी प्रकार बाबाजी महाशय की हुँकार सुन स्वामीजी भी उसी प्रकार गरजने लगे। उस समयकी भक्तगणोंकी अवस्थाका सहजमें अनुमान किया जा सकता है। दोनों महात्माओंके चरणोंके नीचे पृथ्वी थर-थर कांप रही है। स्थान अति संकीर्ण है। दोनों महात्माओं को किसी प्रकार आघात न हो इस उद्देश्यसे भक्तगण चारों ओरसे उन्हें घेरकर उनकी रक्षा कर रहे हैं और नाम-कीर्त्तन कर रहे हैं। थोड़ी देरमें भक्तगण परस्पर परामर्शकर बड़ी चतुराइसे दोनों नृत्यकारी महापुरुषोंको लेकर बाहर आंगनमें आये।

यह दोनों महापुरुष बाह्य दृष्टिसे विभिन्न पथ और विभिन्न मतावलम्बी थे, परन्तु परस्पर एक दूसरेसे इतना प्रेम करते थे कि कोई यह नही समझता था कि वे एक ही मतके नहीं हैं । उनके शिष्यों की भी यही धारणा थी कि स्वामीजी और राजेन्द्रबाबू भाई-भाई हैं, यद्यपि एक महात्माके शिष्य गेरुआ-वस्त्रधारी, शिखासूत्रविहीन और मुंडित मस्तक थे और दूसरेके सफेद डोरकौपिन बहिर्वास और शिखाकंठीधारी; एक शाक्त सन्यासी थे दूसरे वैष्णव; तथापि परस्पर द्वेषभाव-रहित होकर एक दूसरे को देखते ही दंडवत् प्रणाम और प्रेमालिगंन करते थे और दोनों महात्माओंके प्रति एकसी गुरु-बुद्धि रखते थे।

आंगनसे बाहर आते ही सबने प्रेम पूर्वक अबीर गुलाल

से होली खेली। सब लाल-लाल दीखने लगे। राजेन्द्र दादाने बसन्तसुरमें पद आरम्भ किया:—

फागु खेलत गोरा गदाधर संगे।
कुंकुम मारत दुहुं दोंहा अंगे॥
मारे पिचकारी गुलि गोलाल।
आबीरे दुहुं तनु लालहि लाल॥
खेलत व्रजे जनु कानु पेयारी।
दुहुंक बदने घन होरि होरि॥
चौदिके भक्त फागु जोगाय।
कोइ नाचत कोइ आनन्दे गाय॥
ब्रजरस गाओत नरहरि संगे।
मुकुन्द मुरारि बासु नाचत रंगे॥
को कहु आजुक आनन्द ओर।
कृष्णदास तहिं भैगेओ भोर॥

———

सुबल मंगल लेइ मुरारि।
रंग गोलाल भरि पिचकारी॥
ललिता बिशाखा सह नओल किशोरी।
आनन्दे कानु सने खेलत होरी॥
यन करि दुइ दले खेला आरम्भिल।
पहिले बेशर बांशी विशखा धरिल॥
कानु सने प्यारी बिशाखा सुबल।
ललितार संगे फागु खेलत मंगल॥

ललिता बलये शुन बचन आमार।
उड़नि घाघरि पण हैल दोहाकार॥
बिबिध खेलन रंगे आनन्द अपार।
हारि जिति नाहिं कारो सम सबाकार॥
फागु मुठि फेलि[1] जब ललिता मारिल।
आंखि कचालिया[2] तब बटु पलाइल[3]॥
'धर-धर' बलि पाछू धाइल सुबल।
कानुरे[4] घेरिल तब गोपिनी सकल॥

——

रसबती खेलत नागर संगे।
मारत कुंकुम श्यामर अंगे॥

आंखिजुग अरुनित मेलिते ना पारे।
हारिनु हारिनु[5] श्याम बले बारे बारे॥
खेलाते हारिया श्याम पलाइते चाय।
चौदिके सहचरी पथ नाहि पाय॥
हारुया हारुया बलि देह करतारि।
लइल पागड़ी केह केह बा बांशरी॥
हासिया कहये तब रसबती राइ[6]।
आइस[7] हे हारुया[8] पुनः फागुया खेलाइ॥
विशाखा बलये तुया संगिनीसमाज।[9]
कैसे खेलब एका नागर राज॥[10]

---

[1] फंककर, [2] मसलकर, [3] भाग गया, [4] कृष्ण को [5] मैं हारा, मैं हारा [6] राधा, [7] आओ, [8] हारे हुए, [9] विशाखा बोली 'तुम तो अपनी सखियों के साथ हो' [10] नागरराज अकेले कैसे खेलेंगे,

धनी कहे सयूथे विशाखा हउक तुया।[११]
ललिता आमार आइस खेलिहे फागुया॥[१२]
लालहि लाल भेल रसिक शेखर।
पुनहुं खेलत दुहुं नागरी नागर॥
लाल कोकिलाकुल लाल शुकशारी।
लाल भ्रमरागण मयुरा मयुरी॥
लालहि तरुलता लालहि फूल।
लाल मधु पिबत लाल अलिकुल॥
(सब लालहि लाल रे)

गाते-गाते सब अपूर्व भावसे नृत्य करने लगे। एकाएक नवद्वीपदासके हृदयमें ललिता सखीका आवेश हुआ। वे 'धनी कहे सयूथे विशाखा हउक तुया' इस पदको अवलम्बनकर गाने लगे:—

आ मरि कि लाजेर कथा शोन[१] बिशाखा धनि।
नितुइ[२] नितुइ खेलाय[३] हारे नागर शिरोमणि॥

राजेन दादाका स्वभाव था कि रसकी पुष्टिके लिये यदि कोई किसी पक्षका अवलम्बन करता तो वे उसके प्रतिपक्षी बन जाते। इसलिये आप विशाखाके पक्षका अवलम्बनकर यह पद गाने लगे:—

---

[११]राधारानीने कहा 'विशाखा अपने यूथके साथ तुम्हारी ओर हो जायेगी, [१२]ललिता (अपने यूथके साथ) मेरी ओर हो जायेगी, आओ (इस प्रकार) फाग खेलें।'

[१]सुन, [२]नित्य, [३]खेलमें।

नांइ कि मने ओ ललिते सेइ से दिनेर कथा ।
कुसुम चुरि कि झकमारि हयेछिल तथा ॥

'उस दिनकी बात भूल गई ललिता, जब फूलोंकी चोरी में राधाको झकमारनी पड़ी थी। '

ललिता—**दिबानिशि राइयेर लागि पागलपारा श्याम ।**
गोठे माठे बांशरीते जपे राधानाम ॥

'अपने श्यामको देख, दिनरात राधाके पीछे पागल रहकर गोष्ठमें हो चाहे बाहर मैदानमें बांसुरीमें 'राधा राधा' जपा करता है'

विशाखा—**भाटेर मुखे नाम शुने के कांदे दिबानिशि ।**
शयने स्वपने मने भावे काल शशि ॥

'भाटके मुखसे कृष्णका नाम सुन कौन दिन-रात रोता है ।' और शयनमें और स्वप्नमें काले चांदका ध्यान किया करता हैं ।'

ललिता—राइ **देखिते कदम तलाय के करेछे थाना ।**

'राधाको देखनेके लिये कौन कदम तले खड़ा रहता है ।'

विशाखा—**से जे राइके देखा दिवार तरे करे आनाजाना ।**

'वह तो राधाको दर्शन देने उधर आया जाया करता है'

ललिता—**पाशा खेलाय कुण्डतीरे के हारिल बल ।**

'अच्छा वता, कुंडके तीर पर पाशा खेलतेमें कौन हार गया था ?'

विशाखा—**एका नागर पेये सबाइ करेछिल छल ॥**

'तुमने नागरको अकेले पाकर उसके साथ छल किया था ।'

ललिता—**नांइकि सने मानेर दिने के धरिल पाय।**

'और क्या तुझे याद नहीं, मानके दिन किसने पैर पकड़े थे ?'

बिशाखा—**अधीर हये तारपरे के दुतीरे पठाय॥**

'उसके वाद किसने अधीर होकर कृष्णके पास दूतीको भेजा था ?'

ललिता—**राजकुमार के नारीर द्वारे करिल कोटाली।**

'वह तो नारीके द्वारा राजकुमार पर शाशन करवाया था।'

बिशाखा—**राजकुमारीर मुक्ता चुरि सब कि पाशरिलि॥**

'राजकुमारीने मोतियोंको चोरी की थी—वह सब भूल गई ?'

ललिता—**(बल) राजार नन्दन बने बने के धेन चराय।**

'अच्छा बता, कौन राजकुमार होकर बन बन गऊएँ चराता है ?'

विशाखा—**(बल) राजनन्दनी कोन रमणी दधि बिके जाय॥**

'वता, राजकुमारी होकर कौन (कृष्णसे मिलनके लिये) दही वेचने जाती है ?'

ललिता—**नारीर बेशे जावक लये के पराल पाय।**

'नारीके भेषमें किसने(आकर)पांवमें जावक लगाया था !'

विशाखा—**राजार मेये काहार तरे कानन बेड़ाय**

'राजकुमारी होकर किसके लिये कौन बन-बन डोला करती है ?'

ललिता—सेजे बाला गेथे माला के दिल गलाय।

'वाला सजकर किसने माला गूंथकर (राधाको) पहनाई थी ?'

बिशाखा—पर रमणी परेर घरे के रांधिते जाय॥

'दूसरेकी रमणी कौन दूसरेकी रसोई पका आती है ?'

ललिता—(मोदरे) रासेश्वरी पदतले के लिखिल नाम।

'(हमारी) रासेश्वरीके पदतले किसने लिखा था नाम (अपना) ?'

बिशाखा—(ह्यांगा) बांशी शुने चित्रपटे के संपिल प्राण॥

'बासुरी सुनकर किसने चित्रपटको सोंप दिये थे प्राण ?'

ललिता—मिछे गरब करिस ना गो ओ बिशाखा सखी।
श्याम मनमोहिनी राइ सुधामुखी॥

'झूठा गर्व न कर ओ री विशाखा सखी, राधा है श्याम-मन-मोहनी सुधामुखी।'

बिशाखा—शोन् ललिता मरम कथा दुहु राइ कानू।
रूपे गुणे कुले माने केह नहे उनू॥
श्यामेर बामे श्यामसोहागी देखते केमन भालो।
मेघेर कोले सौदामिनी जगत करे आलो॥
राइयेर गुणे श्यामेर आदर श्यामेर गुणे राइ।
छाड़ाछाड़ि श्यामगोरीर किबा आदर भाई॥
(आय गो सखी) श्याम सने एकासने बसाइया राइ।
प्राण खुले सबे मिले दुहुँ गुण गाइ॥
कालोर कोले किबा शोभा कनकबरणी।
नवजलधरे जेन थिर सौदामिनी॥

'सुनरी ललिता मर्मकी बात। राधा-कृष्ण दोनों एक दूसरेसे रूप, गुण, कला और मानमें कम नहीं। श्यामके बायें सुहागवती राधा कैसी लगती है, जैसे मेघकी गोदमें दामनो जगत्को प्रकाशित करती है! राधाके गुणोंसे है श्यामकी शोभा, श्यामके गुणोंसे राधाकी। एकको छोड़ दूसरेका आदर कहां है? आओ री सखी, श्यामके साथ राधाको एक आसनपर बिठाकर दोनोंके गुणगान करें। देखो, काले श्यामकी गोदमें कनकवर्णी राधा कैसी लगती है जैसे नये बादलमें बिजली स्थिर होकर रह गई हो।'

गाते-गाते सब प्रेमानन्दमें नाचने लगे। आज नवद्वीपदास में शक्तिसंचार देख मैं अवाक् रह गया। मैं नहीं जानता था कि नवद्वीप राजेन दादाके इतने कृपापात्र हैं। कुछ देर इस प्रकार उद्दंड नृत्य और कीर्त्तन होता रहा। कीर्त्तन समाप्त होने पर सब रजमें लोटने लगे। केवल चार-पांच सेर अबीर उत्सवके लिये मंगाया गया था। पर कोई दो ढाई मन अबीर खर्च हो गया। महापुरुषोंकी सभी लीला अद्भुत है।

स्वामीजी नवद्वीप दादाको हृदयसे लगाकर आनन्दसे आत्महारा हो रहे थे। कुछ देर पीछे स्थिरता प्राप्तकर उन्होंने राजेनदादा और सब भक्तोंसे प्रसाद पानेके लिये अनुरोध किया। सब एक साथ प्रसाद पाने लगे। प्राय चालीस-पचास व्यक्तियों के लिये कचौरी-पूरी तैयारकर ठाकुरजीका भोग लगाया गया था। परन्तु हम लोग साठ-सत्तर व्यक्ति एक साथ प्रसाद पाने बैठे। पचीस-तीस व्यक्ति बाकी रहे। हम लोगोंने खूब पेट भर

प्रसाद सेवन किया । फिर भी चालीस-पचास आदमियोंके लिये प्रसाद शेष रहा । महात्माओंके कटाक्षसे असंभव भी संभव हो जाता है । यह तो एक साधारण सी बात थी ।

प्रसाद पानेके पश्चात् राजेनदादा सदल-बल कीर्त्तन करते-करते गुरुदेवके आश्रमको चले गये । आनन्दकी [पैंठ जैसे उठ गई । स्वामीजी और अन्यान्य सब राजेनदादाकी अमानुषिक शक्तिकी आलोचना करने लगे । स्वामीजी बोले 'नामकीर्त्तनके आरम्भ होते ही राजेनबाबूके देहमें निताइ-गौर दोनों भाई खेलने लगते हैं । उनका अपना बिन्दुमात्र भी अस्तित्व नहीं रहता । यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है । यदि ऐसा न होता तो केवल चार-पाच साधारण व्यक्तियोंको लेकर ऐसा कीर्त्तनानन्द क्या कभी संभव हो सकता था । कुछ देर इस प्रकारकी समालोचना होती रही । उसके बाद सब अपने-अपने घरको गये । स्वामीजी भी विश्राम करने लगे ।

गोकुल और नवद्वीपदासकी बिदा

आज प्रातः बाबाजी महाशय बहुत गंभीर होकर बैठे हैं । जिनके मुखपर सदा हंसी छाई रहती, जिनकी चेष्टा सदा आनन्दमय होती, जिनका भाव सदा रसमय होता, जिनका आबाल-वृद्ध बनिता सबके साथ समान व्यवहार होता, जिन्हें अपने शिष्योंके प्रति भी गुरुभाव रखना अच्छा न लगता, जो दूसरोंका मुख मलीन देख व्यथित हो पड़ते आज वही परम गंभीर और मौन हैं । भक्तोंके हृदयमें आतंक मच रहा है–न जाने आज किसको क्या कठोर आदेश होने वाला है ।

आठ बजे। बाबाजी महाशय एकदमसे गंभीर स्वरसे पुकार उठे 'गोकुल।'

गोकुल—आज्ञा बाबा।

बाबाजी—इधर आ तो।

गोकुलने निकट जाकर बाबाजी महाशयको प्रणाम किया। बाबाजी महाशय बोले 'बैठ, तुझसे जो कहूँ सुन।' गोकुल 'जो आज्ञा' कह हाथ जोड़कर बाबाजी महाशयके सम्मुख बैठ गया।

बाबाजी—देखो तुम्हारी मां, स्त्री और छोटा भाई तुम्हारे कारण बहुत व्याकुल हो रहे हैं। तुम्हें एक बार जाना चाहिये। बहुत दिन तो हमारे साथ रहे। फिर जब इच्छा हो चले आना। जब तुमने संसार आश्रममें प्रवेश किया है तो उसे देखना भी तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुमन विवाह न किया होता और तुम्हारी मां न होती तब दूसरी बात थी। सती,साध्वी,पतिव्रता, ब्राह्मण कन्याका अभिसम्पात तुम्हें और हमें सबको भोगना होगा।

गोकुल पर जैसे बज्राघात हुआ हो, वह मौन है, नीचे सिर किये अति व्याकुल भावसे रो रहा है। केवल कभी-कभी कातर नेत्रोंसे नवद्वीपदास की ओर देख लेता है। नवद्वीपदादा गोकुलके ही नहीं सभी आश्रमवासियोंके मन और प्राण हैं—सबके हृदयका भाव जानते हैं और सबकी ओरसे वही बाबाजी महाशयसे जो कुछ कहना सुनना होता है कहते हैं। जैसे आज गोकुल भी कातर नेत्रोंसे नवद्वीपदादाको इंगित कर रहा है 'दादा! मेरे मनका संकल्प तुम अच्छी तरह जानते हो, इसलिये तुम्हीं मेरी ओरसे बाबाजी महाशयसे कुछ कहो।'

थोड़ी देर पीछे नवद्वीपदासने धीरे-धीरे बाबाजी महाशय से कहा 'वह स्वयं आपसे कुछ नहीं कह सकता। मुझसे अपने मनका भाव प्रकट कर चुका है। वह घर न जायगा और न संसार करेगा।'

बाबाजी—मैं समझता हूँ कि तुम ही इसके परामर्श-दाता हो।

नवद्वीप—यदि लोगोंका परामर्श देकर संसार-बन्धन मोचन कर सकता तो जगतमें मायाका अधिकार ही क्यों रहने देता। वेद, वेदान्त, पुराण, इतिहास तन्त्र, सांख्य, पातंजल प्रभृति बहुतसे शास्त्र और प्रचारक गण उच्चकंठसे संसारकी नश्वरता, दुःखमयता इत्यादिका प्रचार करते हैं; किन्तु कितने लोग मन लगाकर सुनते हैं, कितने संसार त्याग करते हैं ? परन्तु कोई-कोई बाल्यकाल ही से संसार अनासक्त होते हैं, इन्द्रके समान ऐश्वर्य्य,अप्सराके समान स्त्री और माता-पिता सहस्त्र चेष्टा करनेपर भी उन्हें संसारसे बांध रखनेमें समर्थ नहीं होते। युक्ति और परामर्शसे कहीं संसार त्याग होता है ? इसकी जब संसार करनेकी इच्छा नहीं है तो इसके प्रति ऐसा कठोर आदेश करनेका क्या प्रयोजन है ?

बाबाजी महाशय बोले 'तुम्हारी जब इसके साथ इतनी प्रीति है तो मेरी समझसे तुम्हारा भी इसके साथ जाना उचित होगा। उस सम्बन्धमें और प्रतिवाद न कर तुम दोनों घर चले जाओ। निताइचांदकी इच्छासे समयान्तरमें फिर मिलना होगा।' इतना कह बाबाजी महाशय स्थानान्तर चले गये।

बज्रादपि कठोराणिमृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोनु विज्ञातुमर्हति॥

किसकी साध्य जो आज्ञा उलंघन कर सके ? जो गोकुल दादा और नवद्वीपदादा बाबाजी महाशयकी छायाके समान उनके अनुगत हैं, जो स्वप्नमें भी इनका संग छोड़नेकी कल्पना नहीं कर सकते, वे आज अवनतमस्तक हो इस बज्रसे भी कठिन आज्ञाका पालन करनेको तत्पर हैं। जिस आनन्दमय संगके त्याग करनेके विचार मात्रसे हृदय कांप उठता है और शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आज केवल बाबाजी महाशयके सुखके हेतु, उसी संगका अकातर भावसे परित्यागकर रहे हैं ! गोकुलदादा मन ही मन अपनेको धिक्कार रहे हैं 'हाय हाय ! मुझ अभागेके कारण क्या दादाको भी बाबाजी महाशयका संग छोड़ना होगा।' फिर बिचारते हैं 'निश्चय ही मंगलमय गुरुदेव मेरी रक्षाके लिये ही दादाको मेरे साथ भेज रहे हैं।' नवद्वीप दादाके हृदयमें एक साथ हर्ष, विषाद, विस्मय, कर्त्तव्य, चिन्ता, विरहादिका संचार हो रहा है और मुखपर एक अनिर्वचनीय भाव प्रस्फुटित हो रहा है। कुछ देर विचारकर वे बोले 'भाई गोकुल ! अब देर क्यों करते हो। मैं समझता हूँ कि हम अब जितनी देर इस स्थानपर रहेंगे उतनी देर दादाको कष्ट होगा। इसलिये चलो और विलम्ब न कर शीघ्र इस स्थानको परित्याग करें।' यह विचारकर दोनों 'निताइ गौर राधेश्याम। हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते-करते बाहर निकले। सगीगण रोते-रोते कुछ दूर दादाके पीछे-पीछे गये। किन्तु इंगित द्वारा दादाके निशेध करनेपर सब वापस लौट आये।

बाबाजी महाशयने स्नानादिकर महाप्रसाद ग्रहणपूर्वक विश्राम किया। इस ओर नवद्वीपदादा और गोकुलदादा खेया-घाट जाकर नावपर बैठे। जब नाव गंगाके मध्यस्थलमें पहुंची

नवद्वीपदादा गोकुलसे बोले 'देख भाई गोकुल ! दादाने हमें घर जानेका आदेश किया है । किन्तु हमारा घर कहाँ है ? जब हमें सब लोग पुरीके बाबाजी कहकर पुकारते हैं तो पुरी ही तो हमारा घर है। अतएव दादाने पुरी जानेके लिये ही आदेश किया है ।' गोकुल बोल उठा 'ठीक, दादा ! मेरे मनमें भी यही बात आई थी । चलिये हमलोग और कहीं न जाकर सीधे पुरी-धाम चलें ।' इतनेमें नौका गंगापर पहुंची । दोनों उतरकर नाम करते-करते पैदल ही पुरीकी ओर चल दिये ।

इस ओर नवद्वीपदादाके विरहमें बाबाजी महाशयके साथी बहुत कातर हो उठे । सबके मुख मलीन हैं, सबके प्राण रो रहे हैं । सब लम्बी सांस ले-लेकर केवल 'हा निताइ' पुकार रहे हैं। नवद्वीप दादासे प्रथम बार ये लोग विलग हुए हैं । इसलिये और भी उनका विरह असहनीय हो रहा है । कोई-कोई कह रहे हैं 'हाय ! इससे तो यही अच्छा होता कि गुरुदेव हमें दादाके साथ जानेका आदेश करते ।' किसीको शंका हो सकती है कि इन्होंने सभीने तो बाबाजी महाशयके चरणोंमें आत्म समर्पणकर रखा है । बाबाजी महाशय ही तो सबके गुरु हैं, तब उनके साथ रहते हुए भी इनकी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है । इस संबंधमें इतना कहना ही पर्य्याप्त होगा कि नवद्वीप दास इनके आश्रय और बाबाजी महाशय विषय हैं। अर्थात् बाबाजी महाशयके संगसे जिस आनन्द और माधुर्य्यका विकास होता है उसका नवद्वीप दादाके द्वारा यह उपभोग करते हैं । इस लिये यद्यपि ये लोग प्रेमानन्दमय बाबाजी महाशयके साथ हैं और कीर्त्तनादि पूर्ववत ही चल रहा है, तथापि उपभोगके यन्त्र के अभावके कारण इनका ठीक-ठीक उपभोग नहीं हो रहा है । इसीलिये आज नवद्वीपदादाका विरह इन्हें असह्य हो रहा है ।

कलकत्ता गमन

देखते-देखते आधा बैशाख बीत गया। एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशय गुरुदेवके श्रीचरणोंमें दंडवत् प्रणामकर बोले 'बाबा ! पुरीधाम जानेके लिये मनमें बड़ी उत्कंठा हो रही है। यदि आज्ञा हो तो एकबार जगन्नाथजीके दर्शनकर मनोवासना पूर्ण करूं।' वृद्ध बाबाजी महाशय तो जैसे भोलानाथ ही थे। वे बोले 'अच्छा भाई ! जिससे तुम्हें सुख हो वही करो। पर बूढ़े बापको बिलकुल भूल न जाना। कभी-कभी मिलते अवश्य रहना।' इतना कह बाबाजी महाशयको स्नेह पूर्वक आलिंगनकर रोने लगे। अहा ! कितना वात्सल्य ! गुरुदेव शिष्यके सुखमें सुखी और शिष्य भी सदा गुरुदेवके सुखके लिये व्यस्त ! यही तो है अप्राकृत निःस्वार्थ प्रेम। बाबाजी महाशयने नानारूप सान्त्वना वाक्यों द्वारा गुरुदेवको स्थिर किया। गुरुदेव ने भी प्रसन्नतापूर्वक शिष्यके मस्तकपर श्रीचरण रख आशीर्वाद दे उन्हें बिदा किया। ये दस बारह संगी साथियोंको ले नाम करते-करते गंगा पारकर कृष्णनगर स्टेशनकी ओर चल दिये।

कृष्णनगर स्टेशनके पास एक तालाबके किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे कीर्त्तन कर रहे थे, उसी समय एक सज्जनने आकर पूछा, 'आप कहाँ जायेंगे ?'

बाबाजी—बाबा ! निताइचांदकी प्रेरणासे कलकत्ते जाने की वासना उदय हुई है। अब जैसी उनकी इच्छा।

सज्जन—बाबा ! बारह बजकर चौबीस मिनटपर गाड़ी आती है। अभी नौ बजे हैं। गाड़ीमें बहुत देर है। आप लोगोंके आहारादिकी कुछ व्यवस्था है क्या ?

बाबाजी—बाबा हम तो कुछ जानते नहीं। निताइ चाँदने क्या व्यवस्था की है वही जाने।

सज्जन—यदि आज्ञा हो तो मैं कुछ व्यवस्था करूं। मैं भी कलकत्ते जा रहा हूँ। आहारादिकर हम लोग एक साथ ही चलेंगे।

बाबाजी—निताइकी जैसी इच्छा। मैं और क्या कहूँ।

वे सज्जन बाबाजी महाशयके विधुभूषन नामक एक भक्तको साथ ले निकटके बाजारसे दाल, चावल, तरकारी इत्यादि भोगकी सामग्री सिरपर रखकर ले आये। बाबाजी महाशयके सुचतुर साथियोंने साढ़े ग्यारहके पहले ही भोजन तैयारकर ठाकुरजीका भोग लगा दिया। बाबाजी महाशयने तालाबमें स्नानकर महाप्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात् साथियों ने बाबाजी महाशयका अधरामृत ग्रहणकर परमानन्दसे महाप्रसाद सेवन किया। बारह बजे सब स्टेशन पहुँच गये। साथी परस्पर कहने लगे 'स्टेशन तो आगये। टिकटका क्या होगा। पास तो धेला भी नहीं है।' किन्तु बाबाजी महाशय पूर्वोक्त बाबू और कई और सज्जनोंके साथ निश्चिन्त और प्रफुल्लित भावसे कथा प्रसंगमें तल्लीन हैं। उसी समय टिकटकी घंटी बजी। बाबू लोग अपना-अपना टिकट लेने चले गये। एक सज्जनने पूछा 'बाबा! आपका टिकट नहीं लिया गया क्या?' बाबाजी महाशयने अति प्रशान्त भावसे उत्तर दिया, 'बाबा! मैं तो कुछ जानता नहीं। निताइ जानते हैं। वह समझा कि शायद 'निताइ' नामका कोई इनका साथी टिकट लेने गया है।

इसी समय पृथ्वीको कम्पित करती हुई मदमत्त दिग्गज के समान फुत्कार करती गाड़ी स्टेशनपर आ पहुंची। छोटे-बड़े

सभी जल्दी-जल्दी गाड़ी पर उतराचढ़ी करने लगे। एक चपरासी आकर कह गया, 'बाबा जल्दी चढ़ो, गाड़ी अभी छोड़ देगा।' संगीगण बाबाजी महाशयको लक्ष्यकर कुछ व्यस्तभावसे बोले, 'बाबा गाड़ी छूट जायगी ?'

बाबाजी—तुम्हारे पास यदि कुछ हो तो टिकिट लेकर गाड़ी पर बैठ सकते हो। मेरे पास जब टिकिट होगा तब मैं चला आऊँगा। नहीं होगा तो दस दिन यहीं रहूंगा। मेरे कोई लड़के-लड़कीका विवाह तो कलकत्तेमें हो नहीं रहा है। निताइ-चांदको आवश्यकता होगी तो ले जायेंगे, नहीं होगी तो उनकी जो इच्छा होगी वही करेंगे। भिखारी होकर यदि इतना व्यस्त होंगे तो कैसे काम चलेगा ?

यह सुनकर सब चुपचाप बैठे रहे। यात्री लोग सब गाड़ी पर बैठ चुके। इसी समय स्टेशन मास्टरने आकर पूछा 'बाबा ! आप लोग कहाँ जायेंगे ?'

बाबाजी—मैं नहीं जानता बाबा !

स्टेशन मास्टर—तब कौन जानता है ?

बाबाजी—निताइ चांद जानते हैं।

स्टेशन मास्टर—क्यों आप लोगोंके पास कुछ पैसा कौड़ी नहीं है क्या ?

बाबाजी—ना बाबा ! विशेष प्रयोजन भी नहीं है।

यह सुनकर स्टेशन मास्टर कुछ व्यस्त सा दीखने लगा। बाबाजी महाशय बोले "बाबा ! विशेष व्यस्त होनेकी कोई बात नहीं। मङ्गलमय निताइ चांदकी जो इच्छा होगी वही होगा।'

मास्टर—गाड़ी छूटनेका समय हो गया है।

बाबाजी—होने दो ! इच्छामयकी इच्छा। आज नहीं तो कल सही। कल नहीं तो दस दिन बाद।

स्टेशन मास्टर बाबाजी महाशयकी भावभंगी और कथा-वार्तासे विस्मित होकर आपाद मस्तक उनका निरीक्षण करने लगा। न जाने उसके मनमें क्या आया,एकबार बाबाजी महाशय के साथियोंकी ओर देखकर चला गया और दो मिनिटमें हाथमें टिकिट लिये बाबाजी महाशयके पास आया और बड़े यत्नसे इन्हें सबको गाड़ीपर बैठा गया। बाबाजी महाशय गाड़ीपर बैठते ही खोल-करतालके साथ नाम करने लगे। गाड़ी भी मानो नामकी तालके साथ आनन्दपूर्वक नाचते-नाचते चलदी। दृढ़ विश्वासीके साथ भगवान् सदा बंधे रहते हैं। 'विश्वासे मिलये वस्तु तर्के बहुदूर !' भगवान्ने स्वयं कहा है:—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

इन दो महावाक्योंका दृष्टान्त बाबाजी महाशयके जीवन की प्रत्येक घटनामें मिलता है। अपराह्न पांच बजेके निकट गाड़ी स्यालदह स्टेशन पहुँची और बाबाजी महाशय सदलबल गाड़ीसे उतर स्टेशनके बाहर आये।

मुकुन्द घोषके घर अवस्थान

आज कलकत्तेमें बड़ी हल-चल मच रही है। चारों ओर महासंकीर्त्तनकी रोल उठ रही है। गगनभेदी हरिध्वनिसे

आकाशमंडल गूंज रहा है । न जाने क्या व्यापार है यह विचारते हुए बाबाजी महाशय विस्मितभावसे एक ओर खड़े हैं । इसी समय साहब वेशधारी एक बंगालीबाबूने कहा 'तुम लोग सब हरिनाम संकीर्त्तन करो ।'

बाबाजी—क्यों बाबा, आज चारों ओर हरिनाम संकीर्त्तन क्यों हो रहा है ?

बाबू—क्यों, तुम्हें मालूम नहीं कि कलकत्तेमें भयानक प्लेगके प्रादुर्भावसे नित्य अनेक लोग मौतके घाट उतर रहे हैं । इसलिये राजकीय आदेशानुसार सर्वत्र हरिनाम संकीर्त्तनको व्यवस्था हुई है ।

सुनते ही बाबाजी महाशयका शरीर अश्रु, कम्प, पुलकादि सात्विक भूषणोंसे विभूषित हो गया । प्रेमगद्‌गद् कंठ से 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरेकृष्ण हरे राम ।' नाम कीर्त्तन आरम्भ किया । बार-बार नामकी हुंकारसे पृथ्वी मानों कांपने लगी । लोगोंकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी । आज परस्पर द्वेष भावरहित होकर हिन्दू, मुसलमान, इसाई सब प्राणके भयसे उच्च स्वरसे भगवान्‌को पुकार रहे हैं । सर्वत्र ही समभाव है । बिना राजकीय पासके कीर्त्तन मंडलीको कहीं भी जानेकी स्वतन्त्रता है । मसजिदके निकट जाकर भी हरिनाम संकीर्त्तन करनेका निशेध नहीं है । संकीर्त्तनदल क्रमशः स्यालदह स्टेशनसे उत्तरकी ओर बढ़ने लगा है । चारों ओर मनुष्योंकी भीड़के कारण रास्ता चलना भी कठिन हो रहा है । जिस-जिस रास्तेसे होकर संकीर्त्तनदल जाता है उसीसे मानो नामका श्रोत बहता जाता है । दुकानदार, खरीदार, सब अपना-अपना काम छोड़ अतिशय व्यग्र भावसे आकर संकीर्त्तनके सम्मुख दंडवत

प्रणामकर रहे हैं। कलकत्तेकी सामयिक अवस्था देख बाबाजी महाशय आनन्दसे अधीर हो रहे हैं। बालक-वृद्ध-युवा सब एकटक इनकी ओर देख रहे हैं। इनका गगनभेदी कन्ठ-स्वर, अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक भूषणोंसे विभूषित विशाल देह और चरणोंपर चरण रखे सुमधुर नृत्य जो एकबार देख लेता है वह सब काम-काज छोड़ प्रेमविह्वल भावसे नाचते-नाचते इनके साथ हो लेता है।

धीरे-धीरे संकीर्त्तन मंडल दर्जीपाड़ेसे होकर देओयान पाड़ेके बाजारमें पहुंचा। एक दुकानसे एक भक्तने उठकर संकीर्त्तनको साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशयने उन्हें उठाकर प्रेमसे आलिगन किया। वे बोले 'बाबा! आज इस अधमकी कुटीपर पदार्पण करना होगा।' बाबाजी महाशय ने कहा 'निताइचांदकी जैसी इच्छा!' और उनके साथ उनके घरकी ओर चल दिये।

भक्तका नाम था मुकुन्दचन्द्र घोष। वे जातिके ग्वाले थे। स्वामी-स्त्री दोनों परम भक्त थे। बाजारमें उनकी मिष्टान्न की दुकान थी। किसी अच्छी वस्तुके प्रस्तुत होनेपर घोष महाशय पहले पासके मन्दिर और उपस्थित ब्राह्मण, वैष्णवादि को थोड़ी-थोड़ी देकर पीछे अपने घरके ठाकुरका भोग लगाते थे। उनकी पत्नी मानो ठीक मां यशोदाके समान थीं। पड़ोसके बालक बालिका तो मानो उनके प्राण थे। वे प्रायः दुकानसे नाना प्रकारकी मिठाइयां मंगा ठाकुरजीका भोग लगा बालकों में वितरणकर आनन्दका अनुभव करती थीं। स्नेहमयी घोष पत्नी आज बहुतसे पुत्रोंकी मां हो गई। बाबाजी महाशय घोष महाशयके घर पहुंचते ही बोले 'मां, बड़ी भूख लगी है, कुछ

खाने को दो' मां भी आनन्दसे आत्महारा हो वात्सल्यभावसे खीर, छेना प्रभृति नानाविध मिष्टान्न प्रसाद सबको खिलाने लगीं। घोष महाशय एक ओर खड़े रह अप्राकृत स्नेहमय व्यापार देख रोते-रोते अधीर हो रहे थे। इस प्रकार वात्सल्य-मयी घोष पत्नी द्वारा प्रदत्त मिष्टान्न प्रसाद पाकर सब परमा-नन्दित हुए। इधर भोगरागकी व्यवस्था होने लगी। यथा समय ठाकुरके भोगके पश्चात् सबने प्रसाद पाकर विश्राम किया।

प्लेगके उपलक्ष्यमें नगर-संकीर्त्तन

प्रातःकाल बाबाजी महाशयको प्रातःकृत्यादि समापन-पूर्वक नगर कीर्त्तनकी तैयारी करते देख घोष महाशयकी स्त्री बोलीं, 'बाबा! कल रात आप लोगोंकी प्रसाद-सेवा ठीकसे न हो सकी। अब यदि नगरकीर्त्तनको जायेंगे तो लौटनेमें बहुत विलम्ब होगा और सबको बड़ा कष्ट होगा। मैं शीघ्रतापूर्वक रसोईका प्रबन्ध किये देती हूं। आप लोग स्नानादिकर प्रसाद पा नगरकीर्त्तनको जायें तो मुझे बहुत आनन्द होगा और आप लोगोंका शरीर भी स्वस्थ रहेगा।' बाबाजी महाशय सम्मति-प्रदानपूर्वक दो व्यक्तियोंको रसोई बनानेके लिये छोड़कर नाम करते-करते गंगा स्नान करने चले गये। घोष महाशयने बाजार में घोषणा कर दी कि शामको चार बजे नगरकीर्त्तन आरम्भ होगा। इधर इन लोगोंने स्नान्हानिक समापनपूर्वक महाप्रसाद ग्रहणकर थोड़ा विश्राम किया।

चार बजनेसे पहले ही बहुतसे लोग घोष महाशयके घर आकर एकत्र होने लगे। बाबाजी महाशय हाथ-मुख धो आंगनमें आकर खड़े हो गये। आगन्तुक लोग कीर्त्तन सुनना तो दूर रहा बाबाजी महाशयकी प्रेममयी सौम्यमूर्ति देखकर ही मुग्ध हो गये। इनके साथ एक खोल और दस जोड़ी करताल थे। पाड़ेसे एक भक्त एक खोल और ले आये। इस प्रकार थोड़ी देरमें एक एककर न जाने कितने खोल करताल आगये। बाबाजी महाशय 'प्रकट अप्रकट लीलार दुइ त विधान' इत्यादि पद-कीर्त्तत द्वारा नगर कीर्त्तनकी बन्दनाकर 'आबार बल हरि नाम आबार बल' गान करते हुए बाहर निकले। गगनभेदी कीर्त्तनध्वनिसे आकाश मंडल गूंज उठा। चारों ओरसे जितने कीर्त्तनके दल आ रहे थे सब धीरे-धीरे इसीमें आकर मिलने लगे। नामध्वनि, खोलकरताल ध्वनि, हरिध्वनि, उलुध्वनि प्रभृतिसे दिग्मंडल विकम्पित होने लगा। बाबाजी महाशय मदमत्त मतंगकी भांति भूमते-भूमते आगे जा रहे थे। इनके आघूर्णित और कुछ रक्तवर्ण नेत्रोंसे अविरल अश्रुविसर्जन हो रहा था। अंग-प्रत्यंग प्रेमानन्दसे परिपूर्ण होकर फूल रहे थे। सर्वांगमें पुलक परि-व्याप्त था। क्षण-क्षण पर हवाके वेगसे कंपित केलेके पत्ते जैसा शरीरमें कम्प हो रहा था। देख कर लोग विस्मयाविष्ट हो रहे थे। भावावेशमें नाचते-नाचते जिसे देखते थे उसीसे आलिंगन पूर्वक कहते थे 'हरिबोल-हरिबोल। आमार प्रेमदाता निताइ बोले हरिबोल हरिबोल। (नामे सकल व्याधि दूरे जाबे) (ओ भाई मिछे मायाय भूल नारे) (ओ भाई कखनकी हय बला जाय ना) (स्त्री पुत्र संगे जाबे ना) (एक बार भेदा-भेद भूले गेये) (ओ भाई जातिर गरब क' दिन रबे) (जम त जाति बाछबे ना रे) (प्लेग त हाकिम मानबे ना रे) (काल त बयस

देखबे ना रे) (बालक वृद्ध बाछबे ना रे)(किछुई संगे जाबे न रे) (नाम मात्र पथेर सम्बल) एकबार गौरहरि बोल हरिबोल, हरि बोल बल भाई' इत्यादि ।

कभी-कभी बाबाजी महाशय इस प्रकारसे उद्दंड नृत्य करने लगते कि विभिन्नधर्मावलम्बी व्यक्तिगण भी उसे देख विस्मयसागरमें निमग्न हो जाते । हिन्दू, मुसलमान, इसाई जिसे भी स्पर्श मात्र कर लेते वही हाथसे ताली बजा-बजाकर नाचते-नाचते उच्च स्वरसे 'हरिबोल, हरिबोल' कहने लगता । बाग बाजारके मोड़के चौरस्तेपर रुककर बहुत देर तक कीर्त्तन होने लगा । कई वकील कचहरीसे घर जाते समय एक ओर खड़े कीर्त्तन सुन रहे थे । उनमेंसे एक बोले 'देखो, कीर्त्तन तो बहुत सुना है, परन्तु ऐसा कीर्त्तन और भाव तो किसीने न देखा होगा न सुना होगा, ये तो 'हरिबोबल हरिबोल' कहकर अपने प्रत्येक शब्दसे जैसे सबके हृदयमें विद्युत संचार कर रहे हैं । भाव भंगी और आकार प्रकारसे यह कोई साधारण पुरुष नहीं मालूम होते ।' दूसरे वकीलोंने इस बातका पूर्णरूपसे समर्थन किया । अधिक देरतक उन्हें इस प्रकारकी आलोचना करनेका अवकाश न मिला । यकायक धूलि-धूसरित दीर्घाकार बाबाजीने जैसे ही झूमते-झूमते एक-एक बहुमूल्यवस्त्रधारी वकीलको आ कर आलिंगन किया वे पद मर्यादाका ध्यानकर हरिबोल कहकर नाचने लगे । उस स्थानपर कई अंग्रेज भी बिस्मितभावसे ये सब देख रहे थे । एक बोला 'मुझे लगता है कि यह आदमी साधारण नहीं है । परम पिता परमात्मा इस विपत्तिके समय इसकी प्रार्थना जरूर सुनेंगे, क्यों कि वह सच्चे हृदयसे प्रार्थना कर रहा है । अपत्तिसे बचनेके लिये इस तरहकी भगवद् शरणागति

जरूरी है। ये लोग दूसरोंका दुःख अपना दुःख समझकर हृदयसे प्रार्थना कर रहे हैं कि ईश्वर उन्हें प्लेगके मुखसे बचाये। ईसामसीका कहना है कि मनुष्यको दूसरोंके कल्याणके लिये अपने प्राणोंकी भी बलि दे देनी चाहिये। यदि यह आदमी कलकत्तेमें कुछ दिन और रह गया तो प्लेग अवश्य ही चला जायगा। दूसरा उच्च स्वरसे इस बातका समर्थन करते हुए बोला 'हां, यह आदमी जरुर बहुत प्रभावशाली है। ईश्वर इसकी पुकार जरूर सुनेगा।'

इस प्रकार कीर्त्तन करते-करते रात कोई दस बजे घोष महाशयके घर लौटकर आये। इस समय भी साथमें अनेक लोग थे। मानो उन्हें घरकी स्मृति नहीं रही थी। कैसा अपूर्व आकर्षण था! कैसी मोहनीशक्ति! दुकानदारको दूकानकी चिंता नहीं। गृहस्थको स्त्री पुत्रादिकी सुध नहीं। वकीलोंको अपने मुवक्किल मुकदमेकी चिंता नहीं। यहाँ तक कि रोज मजूरीकर पेट पालने वाले मजदूरोंको अपनी मजदूरीकी चिंता नहीं। लीलामय निताइचांदकी यह एक अपूर्व लीला है। प्लेगके अवसरपर कलकत्तेमें जो कीर्त्तनान्द हुआ उसका उल्लेख करना मेरे जैसे क्षूद्र जीवके लिये असंभव है। जिन्होंने अपनी आँखोंसे देखा है वही जानते हैं। इस प्रकार प्राय एक मास तक मुकुन्दघोष महाशयके यहां रहकर प्रति दिन संध्या समय नगर-कीर्त्तनको जाने लगे। आनन्दकी भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। एक दिन बिना किसीसे कुछ कहे सुने प्रसाद पाकर दो-ढाई वजे 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करते-करते कलुटोलामें शोभारामवसाक लेन पर २६ नम्बरके मकान प्रर जा उपस्थित हुए।

पुलिन बाबूसे मिलन[1]

सन् २३०३ साल, ज्येष्ठ मास, वृहस्पतिवारके दिन अपराह्नमें एक संकीर्त्तन दलने 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कीर्त्तन करते-करते मेरे घर प्रवेश किया। तारीख कौन सी थी मुझे ठीक याद नहीं। बार इसलिये याद है कि प्रति वृहस्पतिवारको मेरे यहाँ श्रीमद्भागवतपाठ होता था। पाठक श्रीनीलकान्त गोस्वामी प्रभुपाद और कई श्रोता नीचे बैठकमें जहाँ पाठ हुआ करता था उपस्थित थे। संकीर्त्तनकी ध्वनि सुनते ही हम सब आंगनमें आकर खड़े हो गये। इसी समय कलकत्तेमें पहली बार प्लेगका प्रादुर्भाव हुआ। मोहल्ले-मोहल्लेमें कीर्त्तनका समारोह था। हमारे मोहल्लेमें भी चार पाँच कीर्त्तन मंडलियां बनी थीं जिनमेंसे कोई-कोई नित्य संध्या समय कीर्त्तन करती मोहल्लेमें भ्रमण किया करती थीं। हमने पहले समझा कि उन्हींमें से कोई कीर्त्तन मंडली आई है। किन्तु आंगनमें आकर देखा कि कई अपरिचित बाबाजी कीर्त्तन कर रहे हैं।

उस समय मेरी वैष्णव साधुओंपर तनिक भी श्रद्धा न थी। मेरी धारणा थी कि संसारमें जितने अकर्म्मण्य, कर्त्तव्य-विमुख, लक्ष्यशून्य और चरित्रहीन लोग होते हैं वही साधुका वेश बनाकर अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये श्रद्धालु मनुष्योंको ठगते फिरते हैं। किन्तु मेरे बड़े भाईका भाव ठीक इसके

---

[1] इस घटनाके सम्बन्धमें बाबू पुलिनबिहारी मलिक महाशयका अपना लेख ही यहाँ उद्धृत किया है।

विपरीत था। उनकी साधु, सन्यासी, ब्राह्मण और वैष्णवोंके प्रति प्रगाढ़ भक्ति थी। हमलोग जातिके सुवर्णबणिक थे। बंग देशके सभी सुवर्णवणिकोंको श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुकी अहैतुकी कृपाके प्रभावसे वंश परम्परासे कृष्णमन्त्रकी दीक्षा है। हमारा परिवार श्रीनित्यानन्दका परिवार है। मेरे बड़े भाई उस परिवारके प्रकृत धर्मका ठीक-ठीक पालन करते थे और सदा ब्राह्मण-वैष्णवोंकी सेवामें अनुरक्त रहते थे। परन्तु मुझे भाईसाहबका ये भाव अच्छा न लगता था। मैं समझता था कि यह उनकी एक बड़ी भूल है। प्रकृत अभावग्रस्त पति-पुत्रहीना असहाय विधवा स्त्रियाँ या मातृ-पितृहीन बालकबालिकाओंकी सहायता न कर सबल, सुस्थकाय, आत्म सुखरत बाबाजी लोगोंकेलिये अर्थ व्यय करना उसका अप-व्यय करना और मानव समाजका महान अनिष्ट करना है। यौवन के मद और अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे इस प्रकारके संस्कारोंने मुझे अच्छी तरह जकड़ रक्खा था। किन्तु इन भिखारियोंने आज मेरा अहंकार चूर्ण कर दिया। यह आनन्दमें विभोर हो एकाग्र मनसे 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नामका कीर्त्तन कर रहे थे। मेरे हृदयमें साधुओंका गाना बाजाना सुन कर एक असहनीय वेदना हुआ करती थी। परन्तु इनके कीर्त्तन से आज मुझे एक अनिर्वचनीय सुखका बोध हो रहा था। यद्यपि मैं 'निताइ गौर राधेश्याम' नामका कुछ भी अर्थ नहीं समझता था तथापि न जाने क्यों यह नाम मेरे हृदयको अनायास ही खींच रहा था।

और उनका वह नृत्य—न जाने वह कैसा एक अलौकिक नृत्य था! मैंने अभी तक कभी बाबा लोगोंके नृत्यसे आनन्दका अनुभव नहीं किया था। वैसे उनका नृत्य तो अक्सर देखता पर

उसी भावनाको पूर्तिके लिये जिसकी पूर्तिके लिये बन्दरका लोग नाच देखते हैं।

किन्तु इनके नृत्यसे मेरा मन आज न जाने क्यों एक दूसरे ही प्रकारसे प्रभावित हो रहा था। मैं स्तम्भितभावसे खड़ा होकर देख रहा था कि कई बाबाजी एक दीर्घाकार बाबाजीको घेरकर उच्च स्वरसे नाम करते-करते मंडलाकार रूपमें नृत्य कर रहे हैं। ऐसा बोध होता था कि मध्यस्थित दीर्घाकार बाबाजी ही इस संकीर्त्तन-दलके नेता हैं। क्योंकि वे जो गाते थे उसीका सब अनुसरण करते थे। संगीगणोंके गानेके साथ-साथ वे चरण पर चरण रख मधुर भावसे नृत्य कर रहे थे। उस नृत्यकी अलौकिक माधुरी क्या भाषामें व्यक्त की जा सकती है? मैंने बहुतसे नृत्य देखे हैं। कलकत्तेमें ऐसा कोई बड़ा नर्त्तक व नर्त्तकी नहीं जिसका नृत्य मैंने न देखा हो। इसके अतिरिक्त काशी, दिल्ली, अमृतसर, ढाका इत्यादि स्थानोंमें बड़े-बड़े सुविख्यात कलाकारोंके नृत्य भी मैंने देखे हैं। परन्तु कभी मेरे मन और प्राण इस प्रकारसे आकर्षित नहीं हुए। यदि सामान्य दृष्टिसे उस नृत्यका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो उसमें कोई विशेषता मिलेगी या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु इतना निश्चय है कि जिसने एक बार उस नृत्यको देखा है वह कदापि उसे भूल नहीं सकता। वह नृत्य मानो एक सजीव और बोलता हुआ नृत्य था और एक ऐसे भावको व्यक्त करता था जो भाषा व इंगितसे प्रकट नहीं किया जा सकता। वह मानो मनको प्राकृत राज्यसे खींच अप्राकृत शान्तिमय राज्यके पूर्णचन्द्रमाकी शीतल किरणोंसे परिव्याप्त एक परमानन्दमय निकुञ्जकी याद दिलाता था।

प्राय एक घंटे तक संकीर्त्तन और नृत्य करनेके बाद संकीर्त्तनकारी बाबाजी हमारे अनुरोधसे बैठक खानेमें आये और श्रीनीलकान्त गोस्वामी महाशयको दंडवत् प्रणामकर बैठ गये। जब और सब लोग भी यथायोग्य अपने-अपने स्थानपर बैठ गये गोस्वामीजीने संकीर्त्तन मंडलीके प्रधान बाबाजीसे पूछा 'आप लोगोंका निवास स्थान कहाँ है ?'

बाबाजी—बाबा ! हम भिखारी हैं। हमारे रहनेका कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। फिर भी हमारा समय अधिकतर श्रीधाम पुरीमें व्यतीत होता है।

गोस्वामीजी—आपका नाम ?

बाबाजी—इस दासको लोग राधारमण चरणदास कहते हैं।

गोस्वामीजी—(संगीगणको लक्ष्यकर) ये लोग क्या आपके साथ ही रहते हैं ?

बाबाजी—जी हाँ, इस समय मेरे ही साथ हैं।

गोस्वामीजी—श्रीधाम पुरीमें कहाँ रहते हैं ?

बाबाजी—ऐसा कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है। निताइ चांद जिस दिन जिस स्थानपर रखते हैं उस दिन उसी स्थानपर रहना होता है।

तब गोस्वामीजीने मेरे बड़े भाईसे कहा 'बाबा, कुञ्ज ! तुम्हें वैष्णव सेवासे बहुत प्रेम है। आज तुम्हारे यहाँ एक परम वैष्णवने आकर कृपाकी है। इनकी कायमनोवाक्यसे सेवा करना।' इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत पाठ आरम्भ हुआ। पाठ

समाप्त होनेपर उस दिन मेरे भाईके आग्रहसे संकीर्त्तन मंडली हमारे यहाँ ही ठहर गई। बाबाजी महाशयके सभी कार्य मुझे अति सुन्दर प्रतीत होने लगे। उनकी बातचीतमें साम्प्रदायिकता की छाया या किसी प्रकारकी संकीर्णता न थी। उनकी प्रत्येक बात सरल सुयुक्तिपूर्ण और मर्मस्पर्शी थी। उनकी प्रत्येक युक्ति और प्रत्येक तत्व निर्णयमें एक अनोखा मधुरभाव निहित था। वे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर हंसकर देते थे। विरक्ति उन्हें छूकर नहीं गई थी। मैंने बहुतसे साधु-वैष्णवोंके दर्शन किये हैं। परन्तु ऐसी सौम्य और आनन्दमय मूर्ति, ऐसा सरलतापूर्ण व्यवहार और ऐसा मधुरभाव कहीं नहीं देखा।

क्रमशः बहुतसे लोग बाबाजी महाशयके दर्शन करने आने लगे और नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे। प्रसंगवश श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी मूर्तिके सम्बन्धमें सब अपना-अपना मत प्रकाश करने लगे। कोई राजेन्द्रलाल मित्र महाशयकी गवेषणा के अनुसार श्रीजगन्नाथदेवकी मूर्तिको बौद्ध मूर्ति कहकर श्रीजगन्नाथमंगल ग्रन्थ का इतिहास बताने लगे और कोई उसे प्रणव स्वरूप बतलाकर अपना अभिमत प्रकाश करने लगे। इस प्रकार जब सब अपनी-अपनी धारणाके अनुसार श्रीजगन्नाथ देवके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकटकर चुके तब सबने बाबाजी महाशयसे अपना मत प्रकाश करनेकी प्रार्थना की। बाबाजी महाशय बोले 'श्रीश्रीजगन्नाथदेवके सम्बन्धमें आप लोगोंने जो कुछ भी कहा है वह सभी सत्य है।' यह सुनकर एक सज्जन बोले 'यह कैसे हो सकता है प्रभु ? क्या परस्पर विरोधीमत भी कभी एक साथ सत्य हो सकते हैं ?'

बाबाजी—हां हो सकते हैं। प्राकृत जगतकी वस्तुमें ही

वरुद्ध धर्म नहीं हो सकते। परन्तु भगवान्‌में सभी कुछ संभव है। श्रीश्रीजगन्नाथदेवके सम्बन्धमें आप लोगोंने जो कुछ भी कहा है वह विरोधयुक्त होनेपर भी सब सत्य हो सकता है।

दूसरे सज्जनने कहा 'बाबा ! जगन्नाथदेवकी मूर्तिका हस्तपद विहीन और चक्राकार नेत्रयुक्त अद्भुत स्वरूप क्यों है ? यह भगवान्‌का कौनसा रूप है ?

बाबाजी—श्रीजगन्नाथमंगल ग्रन्थमें राजा इन्द्रद्युमनका नीलगिरीगमन, नीलमाधवविग्रहका अन्तर्ध्यान होना और ब्रह्मा के आदेशसे जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा और सुदर्शन इन चार मूर्तियोंके निर्माण इत्यादि विषयोंका विस्तारसे वर्णन है। किन्तु श्रीविग्रहके हस्तपदादिके इस प्रकारके होनेका कारण किसी ग्रन्थमें है या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी इस सम्बन्धमें महात्माओंके मुखसे जो कुछ सुना है उससे यदि आपकी तृप्ति हो सके तो कह सकता हूँ।

सब—हां, वही कहिये।

बाबाजी—श्रीकृष्णचन्द्रकी द्वारकालीलाके समय एक दिन जब द्वारकापुरीकी स्त्रियां नाना प्रकार कथोपकथन कर रही थीं, एक स्त्री बोली 'अरी ! ठाकुरजीने अपनी वृन्दाबन लीलामें न जाने कौनसे अपूर्व आनन्दका उपभोग किया है जिसके कारण द्वारकामें इतने सुख, ऐश्वर्य और सोलह हजार रूपगुण-कुल-गौरवसम्पन्ना रमणियोंके होते हुए भी वे गांवमें रहनेवाली बनचारिणीं गोपियोंकी याद नहीं भूलते ! प्राय प्रति रात्रि निद्रितावस्थामें 'राधे-राधे' पुकारकर रोने लगते हैं।' सबने एक स्वरसे कहा 'हां री। तू ठीक कहती है, इसमें अवश्य

कोई रहस्य है।' इतना कह सब किस प्रकार ठाकुरजीकी वृन्दावन लीला पूर्णरूपसे जानी जाय, इस सम्बन्धमें आलोचना करने लगीं। उस समय सत्यभामा बोलीं 'हमें पता लगाना चाहिये कि द्वारकामें कोई ऐसा है जो वृन्दावनमें ठाकुरजीके साथ रहा हो और जिसने उनकी समस्त वृन्दावन लीला देखी हो।' रुक्मणीदेवी बोलीं 'एक मात्र रोहिणीजीके अतिरिक्त और कोई ऐसा नहीं है।' यह सुन सब रोहिणीजीके निकट जाकर वृन्दावन लीला सुनानेके लिये उनसे अनुरोध करने लगीं। रोहिणीदेवी बोलीं 'मैं मां होकर किस प्रकार पुत्रकी मधुर लीलाका वर्णन कर सकती हूँ ? यदि राम-कृष्ण या और कोई सुन लेगा तो मेरे लिये कितनी लज्जाकी बात होगी। यदि तुम कोई ऐसा स्थान निर्दिष्ट कर सको जहाँ कोई और न आ सके तो मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर सकती हूं।'

महिषीगण—क्यों हमारे अन्तःपुरमें और कौन आ सकता है ?

मां—राम-कृष्ण आ सकते हैं। वृन्दावन लीलामें इस प्रकारकी एक आकर्षण शक्ति है कि जहाँ भी उसकी कथा होती है वहीं राम और कृष्ण खिचकर स्वतः चले आते हैं। सबने स्थिर किया कि जब तक मां रोहिणी वृन्दावन लीला वर्णन करें सुभद्रादेवी अन्तःपुरके द्वारपर खड़ी रहकर द्वार रक्षा करें और किसीको अन्तःपुरमें न आने दें। इस उद्देश्यसे सुभद्रादेवी को द्वारपर खड़े कर मां रोहिणी धीरे-धीरे वृन्दावनलीलाका वर्णन करने लगीं। लीलाका वर्णन करते-करते मां रोहिणी और अन्यान्य स्त्रियां इतनी तनमय हो गई कि किसीको अपनी सुध न रही। क्रमशः रोहिणीदेवीका कंठस्वर ऊँचा होकर

सभुद्रादेवीको द्वारपर सुनाई पड़ने लगा। उस अमृतमयलीला तरंगके कानमें पड़ते ही सभुद्रादेवी की देहस्मृति लोप होने लगी। उसी समय वृन्दावन-लीला की आकर्षणी शक्तिसे आकृष्ट हो राम-कृष्ण राजसभासे अन्तःपुरके द्वारपर आ पहुंचे और सुभद्रादेवीको प्रेमानन्दमें विह्वल, भाव-विभोर और आत्म-विस्मृत अवस्थामें देख विस्मित होकर इस अपूर्व भावका कारण जाननेके लिये व्याकुल हो उठे। साथही रोहिणीमांकी वृन्दावनलीलारसमें पगी अमृतमयबाणीने दोनोंके कर्णकुहरमें प्रवेश किया और वे निश्चल-निस्पन्द भावसे सुभद्रादेवीके दोनों ओर खड़े होकर वृन्दाबन लीला श्रवण करने लगे। प्रेम-मय लीलाके प्रेमश्रोतने दोनोंके आत्मज्ञान को अच्छादित कर लिया। आनन्दलहरीमें गोते खाते-खाते दोनोंके हाथ-पांव संकुचित और नेत्र विस्तृत होने लगे और श्रीकृष्णके हाथका सुदर्शन चक्र गलकर लम्बाकार हो गया।

इसी समय स्वच्छंदगति नारद श्रीकृष्ण दर्शनके हेतु द्वारकापुरी पधारे। राजसभामें राम-कृष्णको न देख जब उद्धव से उनके बारेमें पूछा तब उद्धवजी बोले 'अभी अभी महाराज अन्तःपुर गये हैं।' नारदने शीघ्रतापूर्वक अन्तःपुरकी ओर प्रस्थान किया और वहाँ द्वारपर जाकर देखा कि बीचमें सुभद्रा उनके दाहिनी ओर बलराम, बाईं ओर कृष्ण और सुदर्शन चक्र मूर्त्तिकी तरह स्थिर भावसे अवस्थित हैं। कैसी अपरूप शोभा है। सबके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधार बह रही है। हस्तपद संकुचित हैं, नेत्र चक्राकार और सुदर्शनचक्र दीर्घाकृतिके हो रहे हैं। प्रेमविगलित आनन्दमय चारों मूर्त्तियोंके दर्शनकर नारद विस्मयान्वित अवस्थामें कर जोड़कर कुछ दूर खड़े हो गये और

उनकी पूर्वावस्था प्राप्तिकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देरमें अन्तःपुरमें मां रोहिणीकी कहानी समाप्त हुई और धीरे-धीरे श्रीकृष्ण,बलदेव, सुभद्रा और सुदर्शन अपनी-अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हुए।

भगवान् श्रीकृष्ण सहसा देवर्षि नारदको देख कुछ लज्जित भावसे बोले 'देवर्षि। मंगल तो है? आप कबके पधारे हैं ?'

नारद—मुझे जो भी निवेदन करना है पीछे कहूँगा। पहले मेरी कौतुहल निवृत्ति करनेकी कृपा कीजिये।

भगवान्— कौनसा कौतुहल है तुम्हें ?

नारद—भगवन् ! आज मैंने आपकी जो अवस्था देखी उसका क्या कारण है ?

भगवान्—नारद ! तीनों लोकमें ऐसी कौनसी बात है जिसे तुम नहीं जानते। फिर भी यदि तुम्हें कौतुहल है तो सुनो। आज अन्तःपुरमें मां रोहिणीदेवी रसमय वृन्दाबन लीला-विलास का वर्णन कर रही थीं और उनके आदेशसे बहिन सुभद्रा द्वार रक्षा कर रही थीं। मां रोहिणीके आदेशसे अन्तःपुरमें प्रवेश न कर सकनेके कारण मैं द्वारपर खड़ा वृन्दावन-लीला कथा श्रवण कर रहा था। तब भाव तरंगके कारण मेरी ऐसी अवस्था हो गई।

यह सुन नारद प्रेमानन्दमें विभोर हो वृन्दाबन लीला और व्रजबासियों को धन्यवाद देने लगे। भगवान्ने प्रसन्न हो नारदसे कहा 'नारद ! आज बड़े आनन्दका दिवस है। इसलिये तुम मन चाहे वरकी प्रार्थना करो।'

नारद—प्रभो ! यदि इस दासके प्रति कृपाकर वर प्रदान करनेकी अभिलाषा है तो यह वर प्रदान कीजिये कि प्रेमसे विगलित यह रसमय चतुर्धा मूर्त्ति जगतमें प्रकाशित हो और वृन्दाबन-लीला-विलास, भाव और प्रेमकी सर्व्वोत्कर्षताका आपामर साधारण जीवोंमें प्रचार हो।

भगवान्—तथास्तु। पहले ही महामायाकी तपस्यामें प्रसन्न हो मैंने सर्वसाधारणमें महाप्रसाद बितरण करनेका वचन दे रखा है और राजा इन्द्रद्युम्नकी साधनाके कारण नीलाद्रिमें प्रकट होनेकी बात भी मैंने स्वीकार कर ली है। इस लिये मैं तुम तीनोंकी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिये समुद्रके उपकुल-वर्ती नीलगिरी पर दारुब्रह्मके रूपमें अवतीर्ण होऊंगा।

वही प्रेममय चतुर्धा मूर्त्ति पुरीधाममें जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा और सुदर्शन रूपमें वर्तमान हैं।

श्रीयुक्तबाबाजी महाशयके मुखसे यह सुन्दर मनोमुग्धकारी श्रीजगन्नाथदेवका विवरण श्रवणकर सबको बड़ा आनन्द हुआ। आहारादिके पश्चात् श्रीयुक्त बाबाजी महाशय और उनके साथियोंने विश्राम किया। मैं उस रातको उनके पास ही रहा। दूसरे दिन प्रभातमें बाबाजी महाशय अपनी मंडलीके साथ बैठे थे। मैं उनके आहारादि की व्यवस्थामें कुछ व्यस्त था। किन्तु बीच-बीचमें अवसर पाकर उनके निकट बैठ जाता था। धीरे-धीरे बहुतसे लोग आने लगे। बाबाजी महाशय सबके साथ समभाव रख आनन्दपूर्वक हंस-हंसकर बात कर रहे थे। किसीके कुछ तत्व-सम्बन्धी प्रश्न करनेपर बड़ी सरल भाषामें उसका उत्तर देते थे। किसीके साथ कोई विषय लेकर तर्क करना जैसे

उनके स्वभावके विरुद्ध था। कोई कुछ भी कहता उन्हें विरक्ति तो होती ही नहीं थी। मानो सन्तोषकी साक्षात् मूर्ति थे। एक सज्जनने पूछा, 'महाशय ! भगवान्को किस प्रकार पाया जा सकता है ?'

बाबाजी—भगवानको चाहनेसे ही उनकी प्राप्ति होती है।

सज्जन—क्या केवल चाहने मात्रसे भगवान मिल सकते हैं ?

बाबाजी—अवश्य मिल सकते हैं। भगवान स्वयं हमारे बननेके लिये व्याकुल रहते हैं। परन्तु हम वास्तवमें उन्हें चाहते नहीं।

सज्जन—क्या आपका कहनेका मतलब है कि हम भगवानको नहीं चाहते ?

बाबाजी—नहीं। मेरा मतलब है कि हम वास्तविक रूपसे भगवान्को नहीं चाहते। संसारके सामान्य अर्थके लिये हम जितना कष्ट उठाते हैं, अपने पुत्र कन्यादिकी किसी प्रकार की व्याधिको दूर करनेके लिये जितना परिश्रम करते हैं, एक-एक वासनाकी तृप्तिके लिये जितनी चित्तकी एकाग्रता और कष्ट-सहिष्णुता का परिचय देते हैं, भगवत प्राप्तिके लिये उसकी सहस्त्रांश भी एकाग्रता और व्याकुलता हमारे अन्दर है क्या ? हम सब अपने-अपने सुखके लिये लालायित रहते हैं। यदि किसी अंशमें भगवान्को चाहते भी हैं तो वह भी अपने सुखके ही लिये।

सज्जन—मानव जीवनकी प्राप्तिका विषय क्या सुखके अतिरिक्त कुछ और हो सकता है ?

बाबाजी—मानवजीवनकी प्राप्तिका विषय है आनन्द, सुख नहीं।

सज्जन—आनन्द और सुखमें पार्थक्य क्या है ?

बाबाजी—सुख मायाकल्पित है; आनन्द नित्य और सत्य है। सुख अपने लिये और आनन्द दूसरोंके लिये व्याकुल रहता है। आनन्द अपने आपको दूसरोंपर न्योछावर कर देना चाहता हैं। सुख प्रभु बनना चाहता है; आनन्द दासानुदास होनेके लिये लालायित रहता है। सुखको सदा कुछ खो देनेका भय रहता है, आनन्द अपना सर्वस्व भी अकुंठित भावसे वितरणकर तृप्ति लाभ करता है। सुख धूल और मिट्टीसे सदा संकुचित होता है—वाधा और विध्नोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये व्यतिव्यस्त रहता है; आनन्द धूलमें लोट-पोट कर, संसारकी सभी बाधाओं और विपत्तियोंको चूर्ण-विचूर्णकर, आनन्दमें परिणत करता है। सुख सुधाके लिये लालायित रहता है; आनन्द दुःखरूपी विष कंठमें धारणकर सदा शिवकी भांति आनन्दमें निमग्न रहता है। सारांश यह कि सुख स्वार्थपर है और आनन्द निःस्वार्थपर।

सज्जन—आनन्द प्राप्त करनेका क्या उपाय है ?

बाबाजी—भगवन्नाम संकीर्त्तन हो आनन्द और भगवत्-प्राप्तिका उपाय है। यह मेरा अपना मत नहीं है। सनातन आर्य्य शास्त्रोंने उच्चकंठसे यही घोषणाकी है—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुः त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्। इत्यादि।

सज्जन—किसी किसी शास्त्रमें अवश्य ऐसा लिखा है,

किन्तु शास्त्र अनन्त है और पथ और भी अनन्त हैं। नाम संकीर्त्तन भी उनमें एक पथ हो सकता है।

बाबाजी—ऐसी बात नहीं। शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिर्न्यथा॥

सज्जन—क्या आपका आशय है कि कलिकालमें याग, यज्ञ, योग, तपस्यादिका कुछ भी फल नहीं होता।

बाबाजी—मेरा ही आशय नहीं बल्कि आर्य्यशास्त्र सभी स्पष्ट अक्षरोंमें यही कहते हैं। जैसे—

ध्यानाद् दानात् जपात् योगाद् यतफलं भुवि विश्रतं।
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य तत् फलं जायते ध्रुवम्॥

देखिये पथ कोई भी हेय नहीं। सरल अन्तःकारण और व्याकुल भावसे चाहे जिस पथका भी अवलम्बन किया जाय उसीसे मनोरथ सिद्धि होती है। सरलता और व्याकुलताकी ही विशेषरूपसे आवश्यकता है। हमें यह भी देखना चाहिये कि पूर्वाचार्योंने जो नाम-संकीर्त्तनकी व्यवस्थाकी है वह देश-काल-पात्रके हिसाबसे ठीक है या नहीं। योगादिके लिये जैसी दीर्घायु होनी चाहिये वैसी आजकल नहीं होती। इसके अतिरिक्त योगादिके कठोर नियम संयमादिका पालन करनेके लिये जैसे शरीरकी आवश्यकता होती है.वैसा शरीर भी हमलोगोंका नहीं है, क्योंकि कलिहत दुर्बलजीव अन्नके सहारे जीवित रहता हैं। देशकी अवस्था भी याग-यज्ञादिके प्रतिकूल ही है, अनुकूल नहीं। कालके प्रभावसे यज्ञीय द्रव्य, याज्ञिक ब्राह्मण और विशुद्ध

मन्त्रादिकोंका नितान्त अभाव है। देशवासी सब स्वार्थ परायण, मोहान्ध, कामासक्त और पापोन्मुख हो रहे हैं। आजकलकी उच्च शिक्षाका फल नास्तिकता ही दीख रही है। ऐसी अवस्थामें ध्यान, यज्ञ परिचर्य्यादि कहांतक हमारे अनुकूल होंगे हम सहज में ही समझ सकते हैं। हमारे त्रिकालज्ञ और परहितरत महर्षियोंने ऐसी अवस्थामें हमारे कल्याणके लिये नामकीर्त्तन रूपी महौषधिकी व्यस्थाकी है। इस महौषधिको हम भूल न जायें इसलिये वैद्यरूपी श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीगौरांगरूपमें अवतीर्ण हो स्वयं इसका याजनकर हमें रोगमुक्ति का मार्ग दिखलाया है। हम यदि ठीक-ठीक विचारकर देखें तो हमारा जीवरूपसे अपना परिचय देना ही भूल है, क्योंकि जीव नित्य कृष्णदास है और यह विश्वास और अनुभूति जब तक नहीं है तब तक वास्तवमें हम जीव भी नहीं हैं। वास्तवमें हमें यह विश्वास और अनुभूति नहीं है। हमारी यह घोर दुरवस्था देख परम दयालु निताइ चांदने (कहते-कहते चक्षु आरक्तिम और सर्व्वाङ्ग कन्टकित होगया) जीवोंके द्वारपर जा-जाकर रोते-पिटते हुए भी विनय और आग्रहपूर्वक हाथ-पैर जोड़कर उन्हें हरिनाम महौषधि दी है। परन्तु हम इतने विकार-ग्रस्त हैं कि कभी भूलसे भी उस औषधिका सेवन करना नहीं चाहते और न ऐसे परमदयालु अयाचित-कृपाकारी वैद्यके निकट कृतज्ञता ही स्वीकार करना चाहते हैं। धिक्कार है हमारे जीवनको ! और मैं क्या कहूँ, हम हैं घोर पापासक्त अधर्मपरायण कामनावासना-किंकर, दुर्बल, कलिहत जीव। एक मात्र हरिनाम ही है हमारे परित्रणका उपाय।

सज्जन—आप यदि विरक्त न हों तो एक प्रश्न करूँ।

बाबाजी—स्वच्छन्द होकर पूछिये। मेरे विरक्त होनेका कोई कारण नहीं। मेरा परम सौभाग्य है कि आज आप लोग मुझसे भगवत्-सम्बन्धी आलाप कर रहे हैं।

सज्जन—एकमात्र हरिनाम संकीर्त्तन ही यदि उद्धारका पथ है, तो शास्त्रोक्त अनन्त मत और विभिन्न सम्प्रदायोंकी नानादेवदेवियोंकी उपासनाका कोई प्रयोजन ही नहीं रहता और ऋषियोंकी बनाई हुई सभी विधियां निरर्थक और निर्मूल हो जाती हैं।

बाबाजी—क्यों, आपकी यह धारणा कैसे हुई?

सज्जन—आपने ही तो कहा, 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिर्न्यथा॥' यदि यही बात है तो शास्त्रानुमोदित सौर, शाक्त, शैव, गाणपत्य प्रभृति विभिन्न उपासनाओंका क्या प्रयोजन है? आपकी बातसे तो यही जान पड़ता है कि आपका बताया पथ ही प्रकृत पथ है और अन्यान्य देव-देवियोंकी उपासनाकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्या सनातन हिन्दू शास्त्रोंका भी यही अभिमत है?

बाबाजी—नहीं, मैंने ऐसा तो नहीं कहा। सनातन हिन्दू शास्त्रोंका ये अभिमत कभी नहीं है। देखिये, वृक्षमें लाखों पत्ते होते हैं, किन्तु दो पत्ते भी एक प्रकारके नहीं होते। जगतमें कोटि कोटि मनुष्य हैं, पर कोई दो मनुष्य आकृतिमें बिल्कुल एकसे नहीं होते। जिस प्रकार विश्वमें एक ओर वैचित्रमय पार्थक्य है, उसी प्रकार दूसरी ओर अपूर्व सामञ्जस्य भी है। जिस नियम के कारण वृक्षसे पत्ते झड़कर पृथ्वी पर गिरते हैं उसी नियमके आधीन रह कर चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र इत्यादि भी चक्कर

लगाते हैं। जिस मानव जातिके लोग अपने-अपने स्वरूप, स्वभाव, भाव, इच्छा और अहंकारके वशीभूत होकर विभिन्न पथोंपर संसारमें विचरण करते हैं उसी मानव जातिके सभी विभिन्न पथगामी लोग एक ही स्थानपर जाना चाहते हैं, क्यों कि सभीका एकमात्र लक्ष्य हैं आनन्द। इसलिये इस जगतमें एक ही ईश्वरकी एक ही शक्तिके दो प्रकारके खेल दीख पड़ते हैं। एक है आकर्षण दूसरा विकर्षण। एक है केन्द्रानुग दूसरा केन्द्रातीग, अर्थात् एक खींचना, दूसरा छोड़ना; एकका धर्म है अनन्त वैचित्र्यका विकास, दूसरेका धर्म है अनन्त वैचित्र्यके उद्दाम उल्लासको एक परिपूर्ण सामंजस्यमें मिला देना। इसलिये यदि इस विश्वके समस्त विषयोंकी आमूल पर्यालोचना की जाय तो वैचित्र्यमें ऐक्य और द्वैतमें अद्वैत अर्थात् अपूर्व मिलन दीख पड़ेगा, यही है प्रकृतिका नियम। एकसे अनेक होकर लीला करना ही लीलामयका लीला माधुर्य है। जिस शास्त्र या धर्ममें इस नियमका व्यतिक्रम है वह शास्त्र या धर्म यथार्थ नहीं हो सकता। हमारे सनातन आर्यशास्त्र या आर्य धर्ममें कहीं भी इसका व्यतिक्रम देखनेमें नहीं आता। इसलिये वह यथार्थ है। हमारा सनातन आर्य धर्म, प्रकृत सत्यधर्म, मानवकी पूर्णतम परिणतिका एकमात्र उपाय, और अन्यान्य धर्मोंमें सर्वोत्कृष्ट इसीलिये है कि यह वैचित्र्यमें, नानात्वमें एकत्वकी उपलब्धि कराता है—पूर्ण सामंजस्य स्थापित करता है। इसमें अनेक सम्प्रदाय होते हुए भी सबका उद्देश्य एक ही है—सच्चिदानन्द गोविन्दकी उपलब्धि। शास्त्रोंने जो नाम संकीर्त्तनको ही कलिकालमें जीवोंके कल्याणका एकमात्र उपाय बतलाया है उससे हमें समझना चाहिये कि वह कोई निर्दिष्ट साम्प्रदायिक नाम नहीं है। जिस प्रकार शास्त्रोंने सत्ययुगका एकमात्र धर्म ध्यान बतलाया

है, पर ध्यानसे किसी एक ही रूपके ध्यानका तात्पर्य नहीं है और सत्ययुगके महर्षिवृन्द एक ही रूपका ध्यान नकर शत-शत विभिन्न देवताओंका ध्यान करते थे, और जिस प्रकार त्रेताका एकमात्र धर्म यज्ञ होनेपर भी शास्त्रोंमें अनेकों प्रकारके यज्ञोंकी प्रथा देखनेमें आती है, उसी प्रकार कलिकालका एकमात्र धर्म नाम-संकीर्त्तन होते हुए भी किसी विशिष्ट सम्प्रदायके नामसे नाम संकीर्त्तनका संबंध नहीं है। शास्त्रोंका तात्पर्य केवल इतना ही है कि कलियुगकी अवस्थानुरूप व्यवस्था नाम संकीर्त्तन ही है, ध्यान, योग, यज्ञादि नहीं। रूप-रस-गन्ध-शब्दकी आकर स्वरूप सच्चिदानन्दमय पूर्ण पूर्णतम वस्तुको जीव अपनी-अपनी रुचिके अनुसार अनन्त पथों द्वारा प्राप्त करते, अनन्त मतों द्वारा जानते,अनन्तरूपोंमें अनुभव करते और अनन्त रूप-रस-गन्ध शब्द स्पर्श द्वारा आस्वादन करते हैं—यही यथार्थ तत्व है। यदि हम कहें कि अनन्तको एक ही पथसे प्राप्त किया जा सकता है या एक ही प्रकारसे उसका अनुभव किया जा सकता है तो यह कदापि प्रकृत पथ नहीं कहा जा सकता।

सज्जन—आपने कहा 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेनामैव केवलं। कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिर्न्यथा' अर्थात् कलिकालमें हरिनाम ही एकमात्र उपाय है। किन्तु 'हरि' कोई सार्वजनीन नाम तो है नहीं। यह तो वैष्णवधर्मावलम्बी किसी किसी निर्दिष्ट सम्प्रदायके लोगोंके मतकी ही बात मालूम होती है। हरिनाम द्वारा सब धर्म और सम्प्रदायोंकी वात कैसे सिद्ध हुई यह मेरी समझमें नहीं आया।

बाबाजी—'हृ' धातुका अर्थ है हरन करना, इसलिये 'हरि' शब्द वाच्य वे हैं जो चित्त मन प्राणका हरण करते है। वे कालीरूपमें शाक्तोंका चित्त हरण करते हैं, इसलिये शाक्त

'हरि' शब्दसे काली समझें। इसी प्रकारसे शैव 'हरि' शब्दसे 'शिव', सौरगण सूर्य और गणपत्य गणपति समझें, सारांश यह कि जो जिसके उपासक हैं उन्हें उसीके नामका कीर्त्तन करनेसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी।

सज्जन—अच्छा यदि कोई प्राकृत वस्तु किसीका चित्त हरण करे तो क्या उसे भी 'हरि' कहना होगा ?

बाबाजी—रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्श ही चित्त हरण करनेके मूल कारण हैं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीहरि ही रूप-रस-गन्ध-शब्द-स्पर्शके आकर स्वरूप हैं। इस लिये पाञ्चभौतिक जिस किसी भी वस्तुसे मन हरण क्यों न हो हमें उसे श्रीहरिका ही कार्य्य समझना चाहिये। इसलिये शास्त्रकारोंने कहा है कि दृश्यादृश्य सभी वस्तु भगवान् श्रीहरिमें ही पर्य्यवसित है।

सज्जन—बात कुछ ठीकसे समझमें नहीं आई।

बाबाजी—हम हैं अनादि बहिर्मुख कलिहत जीव। हमारे मन और बुद्धि सदा अविद्या और अज्ञानसे आवृत हैं। जबतक अविद्या और अज्ञानका आवरण नहीं हट जाता भगवदुपलब्धि व भावादिका विकास होना असंभव है। इसलिये हमें सबसे पहले अविद्या और अज्ञानको दूर करना चाहिये। इसके लिये हमें विद्या और ज्ञानकी आवश्यकता है। इस विद्याका ही दूसरा नाम भाषा है। भाषा ही वस्तु प्रकाशक है। यदि भाषा न होती तो हमें सबको मूक रहना पड़ता और परस्पर हृदयके सुख-दुःख आनन्द, उल्लास, प्रेम-भक्ति प्रभृतिका आदान प्रदान कुछ भी न हो सकता, अर्थात् मानवका मानवत्व ही न रह सकता। विचार

कर देखिये, उपनिषदादि द्वारा हमें प्राचीनतम महर्षियोंके हृदय भाव और उनकी उपलब्धियाँ जो आज भी प्राप्त हैं उसका मूल भाषाही तो है । शास्त्रकथित समस्त अवतारोंके नित्यत्वमें हमारे विश्वासका कारण भी भाषा ही तो है । और भाषासे ही तो हमें सच्चिदानन्द परब्रह्मके नित्यत्वकी उपलब्धि होती है। भाषाका मूल शब्द है, और शब्दका आश्रय व उत्पत्ति स्थान हैं श्रीहरि । सृष्टिके आदिमें श्रीहरिने 'तप: तप:' इन दो शब्दों द्वारा ब्रह्माको आदेश किया था । यही शब्दकी प्रथम सृष्टि है । अन्य प्रकारसे अर्थात् अनुलोम विलोम भावसे जगतकी जितनी भी वस्तुए हैं वह एक मात्र हरिमें ही पर्य्यवसित हैं । क्योंकि पहले था आकाश, आकाशके गुण शब्दके कम्पनसे वायुकी सृष्टि हुई, वायुके परस्पर घर्षण व घात प्रतिघातसे अग्निकी इन तीनोंके संमिश्रणसे जल और जल समेत चारों भूतोंके संमिश्रणसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई । और इन्हीं पंचभूतोंसे क्रमश: सारे जगतकी सृष्टि हुई । विलोम अर्थात् विपरीत भावसे भी देखिये कि जीवके नाश होने पर पंचभूत, पंचभूतोंके नाश होने पर पंचतन्मत्रा, तन्मात्राओंके नाश होनेपर तत्व, तत्वके नाश होने पर प्रकृति और प्रकृतिके भी नाश होने पर एकमात्र श्रीहरिमें ही पर्य्यवसान होता है । अतएव हरेर्नाम श्लोकमें कलिमें एक मात्र जिस हरिनामकी महिमा कही गयी है उसका तात्पर्य परम पुरुष गोविन्दसे होते हुए भी शिव, दुर्गा, काली आदि सभी देवता उसमें सम्मिलित हैं । क्योंकि शास्त्रमें कहा है—

तस्मिन् तुष्टे जगत तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।

सज्जन—यदि आप रुष्ट न हों तो एक और प्रश्न करूं ?

बाबाजी—मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मुझसे कोई

भी प्रश्न पूछनेमें संकोच न करें। मेरे लिये तो यह बड़े आनन्द की बात है।

सज्जन—नामके संबंधमें आपने जो कुछ कहा वह सभी शास्त्र सम्मत है; किन्तु मैं दुर्भाग्यवश अब भी कुछ ठीकसे समझ न सका। मैं नामका अर्थ नहीं जानना चाहता बल्कि यह जानना चाहता हूं कि क्या केवल मुखसे शब्द उच्चारण करनेसे ही नाम हो जाता है और क्या इतनेसे ही परम पदकी प्राप्ति हो जाती है? साफ-साफ शब्दोंमें मेरे मनकी शंकातो यह है:—आज कल श्रीमन्महाप्रभुके मतावलम्बीगण उच्च कंठसे नाम लेने की महिमाका प्रचार करते हैं। उनका भाव यही होता है कि केवल मुखसे नाम लेनेसे ही परमपद लाभ होता है। यदि यह बात सत्य है तो जिन लोगोंने गौड़ीय-वैष्णव धर्म्मका आश्रय लिया है उनमें इतना पतन क्यों हो रहा है। श्रीमन्महाप्रभुको अप्रकट हुए चार सौ से कुछ अधिक वर्ष हुए हैं। इतने थोड़ेसे समयमें ही इस मतका जितना पतन हुआ है उतना शायद और किसी भी मतका नहीं हुआ। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गौड़ीय-वैष्णव केवल जीवका कमानेके लिये हरि-नाम करते डोलते हैं। यदि उनके आचार व्यवहारकी ओर लक्ष्य करें तो देखेंगे कि घोर नास्तिक कुतर्कनिष्ट पाखंडी भी जिन पाप कर्मोंको करनेमें संकोच करता है उन कर्मोंको करने में उनकी आत्मा तनिक भी कुंठित नहीं होती। इसका कारण क्या है? मैं नामके प्रति कटाक्ष नहीं कर रहा। पर मेरा दुःखित हृदय आपसे यह प्रश्न पूछनेको बाध्य है।

बाबाजी—आपके प्रति महाप्रभुकी बड़ी कृपा है। जभी आपके हृदयमें यह वेदना हुई है। मैं समझता हूँ कि आपके

मनका भाव इस प्रकार है—शास्त्र कहते हैं कि भगवन्नाम ही परमपद प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है। इस नामजपका क्या अर्थ है ? एक पक्षी मुखसे 'कृष्ण कृष्ण' कहता है अर्थात् जड़ यन्त्रकी भांति केवल कृष्ण नाम उच्चारण करता है। इससे क्या उसको परमपदकी प्राप्ति हो जायगी ? वस्तुका लक्ष्य नहीं, प्राणमें आकांक्षा नहीं, हृदयमें उपलब्धि नहीं, मनमें धारणा नहीं—इस प्रकारके प्राणहीन, मनहीन, हृदयहीन, ज्ञानहीन व्यक्तिका केवलमात्र शब्द उच्चारण ही क्या साधन है ?

सज्जन—जी हां, मेरे प्रश्नका ठीक यही उद्देश्य है।

बाबाजी—इस प्रश्नके उत्तरमें मैं और क्या कहूँ ? शास्त्रकारों ने कहा है:—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुन्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥

अर्थात् चाहे संकेतसे हो, परिहाससे हो, उपदेशके छलसे हो या खिलवाड़से, एक बार नाम उच्चारण करने मात्रसे जीव बहुत जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर सद्गति लाभ करता है। जैसे, महापापी यवन मृत्युके समय विभीषिका देख 'हाराम हाराम' (शूकर) शब्द उच्चारण करनेसे और अजामिल डाकू मृत्युके समय 'नारायण' नामक पुत्रको पुकारनेसे विष्णुलोकको पहुंच गये थे। यदि कहोकि नामपरायण व्यक्तियोंका कुत्सित आचरण क्यों होता है तो इसका कारण केवल नामापराध है। नामका अवलम्ब लेकर जीविका निर्वाह करना या नाम की शक्तिके बलपर पाप कार्य करना घोर अपराध है। अप्राकृत,

चिन्मय, नित्य और अमूल्य नामके बदले सामान्य अर्थ ग्रहण करनेसे अधिक बड़ा और क्या अपराध हो सकता है ? श्रीमन्महाप्रभुने निताइ-चांदको बिन मांगे घर-घर जाकर नामरूपी अमृत लुटानेका आदेश किया था। आजकल जो लोग नाना प्रकारसे इन्द्रिय वृत्ति चरितार्थ करनेके उद्देश्यसे और लोकनिन्दा व समाज शासनके भयसे साधुवेश बनाकर तीर्थ स्थानोंमें रहतेहैं अथवा अर्थ लाभ और प्रतिष्ठाकी आशासे महात्माका वेश लेकर देश विदेशमें लोकप्रवञ्चना द्वारा महाजनोंके पथपर कलंक लगाया करते हैं, क्या उनके साथ आप धर्मपिपासु, अनुरागी, भगवन्निष्ठ वैष्णवों की तुलना करना चाहते हैं ?

सज्जन—आजकल ऐसे ही लोगोंकी संख्या अधिक होने के कारण प्रकृत वैष्णवको खोज निकालना बड़ा कठिन हो गया है। आपकी सुन्दर मीमांसासे मेरे मनका सन्देह और हृदयकी व्यथा बहुत कुछ दूर हो गई है। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। कृपाकर मेरा अपराध क्षमा करें।

बाबाजी—परम दयालु निताइ चांदकी कृपासे आज आपके साथ नानारूप भगवत्-कथा आलोचनाका मुझे बहुत आनन्द हुआ।

इस प्रकार बाबाजी महाशय सबके चित्तका संशय ओर हृदयका ताप मिटा परमशान्ति संस्थापन करने लगे। मेरे अपने मनकी अवस्था न जाने किस प्रकारकी हो रही थी। मन और प्राण यह कह रहे थे कि अपने जैसे कुसंस्कार-मेघाछन्न महा-मोहान्धकारमें डूबे, पतित और अभिमानी बाबू लोगोंको लाकर इस भिखारी वैरागीके निकट उपस्थि कर दूं।

समय अधिक होते देख मैंने कहा 'बाबाजी महाशय ! अब समय बहुत हो गया है । स्नानादिके पश्चात् प्रसाद ग्रहण कर कथा-वार्ता करें तो अच्छा हो ।' यह सुन बाबाजी महाशय ठीक बालकके समान स्नान करने चल दिये । मैं उनका मधुर व्यवहार देख-देख उनकी ओर उत्तरोत्तार आकृष्ट होता जारह था । स्नानादिके पश्चात् सबने प्रसाद ग्रहणकर विश्राम किया । मैं भी वैष्णव अधरामृत पानकर विश्राम करने चला गया ।

अपरान्ह कोई चार बजे एक और संकीर्तनदल हमारे मकान पर आ पहुंचा । उस दलमें दस बारह लोग थे । उनके बीचमें एक बीस बाइस वर्षका युवक मूलगान कर रहा था । युवकका कन्ठ-स्वर बड़ा मधुर था । हम सब बाहर आये और मन्त्रमुग्धसे होकर उसकी ओर देखने लगे । जैसा उसका स्वर था वैसे ही सुन्दर बोल भी । प्रत्येक अक्षरके साथ न जाने कितनी सुधा टपकती थी । कुछ समय कीर्त्तन हो चुकनेपर बाबाजी महाशय युवकको आलिंगनकर अश्रुविसर्जन करने लगे । पहले तो मैं विचारने लगा कि यह व्यापार किस प्रकारका है । इसमें मायाकी अभिव्यक्ति है या प्रेमकी, सुखकी या दुःखकी, स्वार्थकी या निस्त्रार्थकी ? थोड़ी ही देरमें मेरा यह संशय मिट गया । मैं समझ गया कि यह रोना प्रेमका है । जैसे-जैसे रोदन अधिक होता गया सुखकी मात्रा भी अधिक होती गई । बाबाजी महाशय एकदम बोल उठे, 'राम ! इस बार मेरे साथ पुरी चलना होगा ।'

राम—आपकी जैसी कृपा और निताइ चांदकी इच्छा ।

तब हमलोग समझे कि बालकका नाम 'राम' है । बाबाजी महाशयने फिर पूछा 'यहां तुम कहाँ ठहरे हो ?'

राम—(एक सज्जनको लक्ष्यकर) रामबागमें इनके घर ठहरा हूँ। उस मुहल्लेके सभी लोग बड़े कीर्त्तन प्रेमी हैं और कीर्त्तनमें प्रेमसे सहयोग करते हैं। इसीलिये मुझे वहाँ बड़ा अच्छा लगता है।

इतना कह दंडवत प्रणामकर रामने वहां से प्रस्थान किया। अबसे नित्य वह हमारे घर आने लगा। हम भी उसके मधुर व्यवहारके कारण उसकी ओर आकृष्ठ होने लगे। बाबाजी महाशयका उसके प्रति भ्रातृभाव रहता था। मेरे बड़े भाई कुञ्जबाबू विशेषरूपसे रामदाससे प्रेम करने लगे। इन्हीं दिनों अनेक लोगोंने बाबाजी महाशयसे मन्त्र ग्रहण किया। मैंने भी अपने बड़े भाईकी अनुमतिसे बाबाजी महाशयसे मंत्र लिया।

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हुए। एकदिन प्रातःकाल उठते ही बाबाजी महाशयने कहा 'देख कुञ्ज! मेरी इच्छा है कि कुछ समयके लिये गंगा किनारे किसी स्थान पर जाकर रहूँ।' यह सुन मेरे मामा बाबू बटकृष्ण मल्लिक महाशय बोले 'यदि कृपाकर मुझे आदेश करें तो सबको गंगा किनारे अपने बगीचेमें ले चलूँ। हमने सभीने उस स्थानको बहुत सुन्दर और बाबाजी महाशयके लिये उपयुक्त समझकर इस प्रस्तावका समर्थन किया। शीघ्र ही बाबाजी महाशयको गाड़ीकर वहाँ ले जाया गया। स्थान बहुत निर्जन और मनोरम था। बाबाजी महाशय मनोमत स्थान पाकर परमानन्दके साथ नामकीर्त्तनकर श्रोताओंका चित्त रञ्जन करने लगे। मेरे बड़े भाई सदा ही बाबाजी महाशयके साथ रहते अन्यान्य अनेक सज्जन नाम मात्रके लिये अपने-अपने कार्य पर जाते और अवकाश पाते ही बाबाजी महाशयके पास आ जाते। रामदास भी बाबाजी महाशयके साथ ही थे। मानो वे बाबाजी

महाशयका दाहिना हाथ थे। कभी-कभी वे आदरके साथ कहते 'राम ! थोड़ा नाम तो सुनाओ भाई।' रामदादा आज्ञा पाते ही प्रेमानन्दमें गद्गद् हो भावभरे कंठसे कीर्त्तनकर सबके प्राणोंमें सुखका संचार करते।

सालिखामें कीर्त्तन

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हुए। एक दिन बाबाजी महाशयने दास गदाधरकी पीठस्थली दर्शन करनेके लिये एंडेदह जानेका विचार प्रकट किया। यह सुन एक सज्जन बोले 'आज सालिखामें कीर्त्तन करनेकी बात है; इसलिये पीठस्थली दर्शन कर वहाँसे सीधे सालिखा जानेमें सुविधा होगी।' बाबाजी महाशयने अपनी स्वीकृति प्रदानकी। यथासमय सब लोग एंडेदहकी ओर चल दिये। कुछ देरमें पीठस्थली पहुँचकर संकीर्त्तन प्रारम्भ किया। सभी प्रेमानन्दमें विभोर थे। बाबाजी महाशय दासगदाधरसे नित्यानन्द प्रभुका मिलन और अन्यान्य लीलाओंका पदोंमें कीर्त्तन करने लगे। आनन्दकी अवधि न रही। सब देह-स्मृति खो बैठे। दासगदाधरके गोपीभावमें नृत्य सम्बन्धी पद कीर्त्तनकर बाबाजी महाशय बीच-बीचमें अपूर्व नृत्य करने लगे। एंडेदहबासी आबाल-वृद्ध-बनिता सभी बाबाजी महाशयके नानाविध सात्त्विक भावोंसे विभूषित कलेवरके दर्शन कर और मन और प्राणको हर लेनेवाला कीर्त्तन सुन परस्पर कहने लगे 'हमने कभी भी ऐसा कीर्त्तन नहीं सुना और न इस प्रकारका प्रेम विकार ही कभी देखा। ऐसा लगता है कि मानो

प्रेमकी मूर्ति राधा-भावाविष्ट दासगदाधर फिरसे प्रगट हुए हों ।' बाबाजी महाशयका भाव देख और उनका कीर्त्तन सुन भावुक भक्तगण मानो दास गदाधरके साथ निताइ चांदकी लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे ।

बहुत समय तक इसी प्रकार कीर्त्तन नर्त्तन द्वारा जन साधारणको मोहितकर बाबाजी महाशय सालिखाकी ओर चल दिये । एंडेदह निवासी अनेक भक्त भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे । जाते-जाते भक्तोंको लक्ष्यकर कहने लगे, 'मंगलमय परम-कारुणिक भगवान् जिस समय जो करते हैं वह हमारे मंगलके लिये होता है । आज महामारी प्लेग के उपलक्षमें भग-वान्को धन्यवाद दें या दोष ? उन्हें पक्षपाती कहें या निरपेक्ष ? मंगलमय कहें या अमंगलमय ? दयामय कहें या निर्दय ? हम हैं कलिहत क्षुद्र जीव । सुखदुख यह दो चीजें लेकर ही हमारा सारा व्यवहार है । एक है परमानन्द और दूसरा घोर निरा-नन्द । एक ज्योतिर्मण्डल और दूसरा निबिड़ अन्धकार । किन्तु भगवान् इन दोनों से अतीत हैं । वे निरवच्छिन्न सुखस्वरूप सच्चिदानन्द विग्रह, रसमयतनु, परमदयालु और प्रेमदाता हैं ।

भक्तगण—प्रभु आपने पहले कहा कि भगवान् सुखदुःख से परे हैं और फिर यह कि वे सुखके स्वरूप हैं । यह दोनों बातें एक साथ कैसे संभव हो सकती हैं ?

बाबाजी--भगवान् सुख स्वरूप हैं यह सत्य है । पर हम जिसे सुख या आनन्द कहते हैं भगवान् उससे अतीत हैं, क्यों-कि हमें पुत्रके जन्मसे सुख और मृत्युसे दुःख, धनकी प्राप्तिमें सुख और हानिमें दुःख, बन्धुगणके समागममें सुख और वियोगमें

दुःख होता है। यह दोनों ही अकिञ्चितकर और क्षणिक हैं। हमारी चेष्टा अज्ञ बालक और सन्निपात विकार ग्रस्त रोगीके समान है। बालक शरीरमें धूल लपेटकर सुखी होता है; सांपको खेलकी सामग्री समझ उसके पीछे भागता और आनन्दित होता है। हम भी ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा इत्यादि मैल मिट्टी शरीरमें लपेटकर सुखका बोध करते हैं और रमणी रूपी सर्पनीको आनन्दकी पुतली समझ उसके पीछे धावित होते हैं। जिस प्रकार मांके बालककी धूल झाड़कर गोदी लेनेपर बालक उसे शत्रु समझकर रोते-रोते अस्थिर हो जाता है,और क्रीड़ा-कौतुक के हेतु सर्पके पश्चात् भागने वाला बालक किसी व्यक्तिके मना करने पर उसे अपने सुखका बाधक समझ उसकी आँखोंसे ओझल रहनेकी चेष्टा करता है, हम भी उसी प्रकार ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा और परनिन्दा प्रभृति मलिनतादूरकारी गुरु-वैष्णवोंके उपदेश दुःखकर समझ उनकी आंखोंसे ओझल रहने की चेष्टा करते हैं; काम, क्रोध भोगादिको अनिष्टकारी बताने वाले शास्त्रों और सन्तोंको अपना बैरी समझ उनसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं। जिस प्रकार प्यासे रोगीके जल मांगनेपर भी आत्मीय गणों के जल न देने से रोगी उन्हें निष्ठुर और मूर्ख समझने लगता है उसी प्रकार हम भी अपना भला बुरा न समझ भगवान्से जो चाहते वही माग लेते हैं और उनके न देनेसे उनके वाञ्छाकल्पतरु नामको झूठा समझते और उन पर पक्षपातका दोष आरोपित करते हैं। आज यदि यह महामारी न होती तो कलकत्तेमें क्या इस प्रकारके भुवन मंगल नाम कीर्त्तनका विराट आयोजन संभव हो सकता था। इस सालिखा स्थानको तो तुमने पहले भी देखा है और आज भी देख रहे हो। कैसा मनोहर लग रहा है। हर रास्तेके दोनों ओर नानाप्रकारके झंडे

फहरा रहे हैं। हजारों केलेके खंबे लग रहे हैं। दरवाजे पर सजावट हो रही है। संकीर्त्तनकारी भक्तोंकी थकावट दूर करने के लिये जगह जगह डाबर (कच्चा नारियल), बरफ, गुलाब-जल आदिकी व्यवस्था हो रही है। जिन लोगोंने इस महाविपद के समय और किसी प्रकारका प्रयत्न या अनुष्ठा न कर इस भुवनमंगल नाम संकीर्त्तनका आयोजन किया है उन्हें मैं हृदयसे शत-शतबार धन्यवाद देता हूँ। आज इस आनन्दमय व्यापार को देख मुझे कुन्तीदेवी की प्रार्थना याद आती है:—

विपदः सन्त ताः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भक्तो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

इसी प्रकार नानाविध कथोपकथन करते हुए निर्दिष्ठ स्थान पर उपस्थित हो संकीर्त्तन प्रारम्भ किया। चारों ओरके लोगों का जमघट होने लगा। संकीर्त्तनके अनेक दल जगह-जगहसे आकर बाबाजी महाशयके साथ कीर्त्तनमें सम्मिलित हुए। दुःखी जनोंके रोने और विपदामें फँसे निःसहाय जीवोंकी पुकारमें स्वभावसे ही जिस प्रकार अनुराग भरा होता है, उसी प्रकार आज हिन्दू, मुसलमान, इसाई, ब्राह्मण शूद्रादि सभी व्याकुल प्राणसे सहज ही बाबाजीके अनुराग भरे स्वरसे स्वर मिलाकर 'हरिबोल' ध्वनि कर रहे हैं। आनन्दमय भगवान्‌की आनन्दमय नामध्वनि ब्रह्मांड भेदकर विरजाके पार गोलोकधाममें पहुंच और उनके आनन्दमय चरणोंका चुम्बनकर जैसे उनके आदेशसे मृयुलोकमें प्रत्यावर्त्तनकर आबाल-वृद्ध-वनिता पशु-पक्षी सभी को और दूना आनन्द प्रदानकर रही है। किसीको भी देह स्मृति नहीं। सभी मानों नाम रसमें मतवाले हैं। असंख्य लोग जाति-कुल-गौरवका परित्यागकर धूल-धूसिरित शरीर जलदअश्रु नयन और गद्गद् कंठसे 'हरि-बोल, हरि बोल' कह हाथसे ताली

बजा-बजा नृत्य कर रहे हैं। विलासी युवकोंके बहुमूल्य वस्त्र धूलमें लिपट रहे हैं। बाबाजी महाशय अथाह आनन्द सागरमें डूबकर जैसे उसकी तहमें जा लगे हैं। तनिक भी वाह्यज्ञान नहीं है। उर्द्ध नेत्रोंसे चरणपर चरण रख, दोनों भुजायें उठाये नृत्य कर रहे हैं। कभी-कभी भावमें विभोर हो धूलमें लोट-पोट होने लगते हैं। शरीरकी धूल पसीनेसे मिलकर कर्दमाकार हो जाती है और कर्दमाक्त शरीरमें क्षण-क्षणपर ऐसे पुलक और कम्पका उदय होता है कि लोग देखकर आनन्दके साथ-साथ विस्मयसे आच्छादित हो जाते हैं।

कुछ समय तक इस प्रकार कीर्त्तन कर सब एक स्थानपर विश्राम करने लगे। सालिखावासी प्रसादी डाब, शरबत और नाना प्रकारके मिष्टान्न द्वारा इनकी सेवा करने लगे।

प्लेगके उपलक्ष्यमें जिस दिन जिस स्थानपर बाबाजी महाशयका कीर्त्तन होता था उस दिन उस स्थानके लाखों व्यक्ति प्रेमानन्द सिंधुकी उत्ताल तरंगोंमें वाह्यज्ञान रहित हो डुबकियाँ लगाते थे। किसकी सामर्थ्य है जो उस महासंकीर्त्तनानन्दको भाषामें व्यक्त कर सके। कुछ काल विश्राम करलेनेके पश्चात् बाबाजी महाशयने बाबू बटु मल्लिककी उद्यानशालाकी ओर प्रस्थान किया।

मुकुन्द घोषके घर आम खानेका निमन्त्रण

आज श्रीमुकुन्द घोषके यहां सब लोग निमन्त्रित हैं। मुकुन्द बाबू इन्हें अपने घर ले जानेके लिये बटु बाबाकी उद्यान शालामें आकर उपस्थित हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि इनके प्रति घोष महाशय और उनकी स्त्रीका वात्सल्य भाव है।

आज पुत्रोंके प्रति उन्हें पितापने का अभिमान हो रहा है। 'कितने दिनोंसे घर जाकर कुछ मांग कर खाया नहीं' यह कहकर वे दुःख प्रकाशित करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'पिताजी! आज हम अवश्य जायेंगे। आप घर जाकर माँसे खानेके लिये अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर तैयार रखनेके लिये कह दें। आज अनेक दिनोंका भोजन एक साथ ही कर लेंगे। घोष महाशय इतनेसे सन्तुष्ट न होकर बोले 'मैं यह सब सुनना नहीं चाहता, तुम्हें मेरे साथ ही चलना होगा।' इस लिये सब घोष बाबूके साथ हो लिये। रसमय तनु परम कौतुकी बाबाजी गाड़ी पर बैठते ही घोष बाबूकी वेदना दूर करनेको बालककी भांति बोले 'पिताजी आज हमें क्या-क्या खिलायेंगे? आज बड़ी भूख लगी है। घर पहुंचते ही कुछ खानेको मिलना चाहिये। आजकल जेठका महीना है। आम और दूध तो होगा ही। और भी बहुत से द्रव्य खानेको देने होंगे' इत्यादि। घोष महाशय आनन्दमें विभोर हो गद्‌गद् कंठसे कहने लगे 'भाई सब कुछ तो तुम्हारा ही है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। अपनी मांके पास चलो, फिर देखा जायगा।'

इस प्रकार कथोपकथन करते-करते घोष महशयके घर आ पहुंचे। इधर घोष बाबूकी वात्सल्यमयी पत्नीने निश्चय कर रखा है कि बाबाजीके आनेपर उनसे सहज सलाप न करेंगी। बाबाजी मांके अभिमानयुक्त भावको समझ पहले ही उसका प्रतिविधान करने लगे। घर पहुँचते ही बालककी भांति व्याकुल हो कहने लगे 'मां! मां! बड़ी भूख लगी है। शीघ्र कुछ खानेको दो, 'सुनते ही मांका वात्सल्यरस अभिमान चूर्ण हो गया। जल्दी-जल्दी ठाकुरजीके नानाप्रकारके प्रसादी द्रव्य, रबड़ी,

सन्देश प्रभृति बांटकर प्रत्येकको एक-एक द्रव्य बल पूर्वक खिलाने लगी। बाबाजी और उनके साथीं बालककी भाँति मांसे खानेके लिये अनिच्छा प्रकट करने लगे। इसप्रकार बड़े आनन्द से सबनें बाल्यभोग प्रसाद सेवनकर विश्राम किया।

इधर भोगरागकी तैयारी होने लगी। इतनेमें घोषबाबू बाजारसे कुछ बड़े-बड़े फजली आमले आये और बोले, 'इनका बाल्यभोग अभी लगा कर इन्हें देदो। घोष-पत्नीने प्रफुल्लित हो आमोंका भोग ठाकुरजीके आगे प्रस्तुत किया। घोष बाबू जिस कमरेमें बाबाजी विश्राम कर रहे थे वहाँ जाकर उनसे नानाप्रकार प्रेमालाप करने लगे। थोड़ी ही देरमें घोष-पत्नी एक पत्थरके थालमें आम लेकर आईं, और बाबाजीके सम्मुख रख निज हाथसे एक आम उनके मुखमें दे दिया। बाबाजीके मुखमें आम देखते ही रामदासके हृदयमें न जाने किस अपूर्व भावका उदय हो आया, झट दौड़कर उन्होंने बांय हाथसे बाबाजी का गला पकड़ आम अपने मुंहसे दबा लिया। सख्य रसकी मूर्ति बाबाजीने रामदासको गोदमें बिठा लिया। कैसा अपूर्व दृश्य है ! कैसा अनिर्वचनीय सख्य रसका खेल ! कैसा मधुर भ्रातृवात्सल्य ! एक आमको दोनों मुंहसे पकड़े हैं। दोनोंके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु डब-डबा रहे हैं। दोनोंका शरीर पुलकायमान है। दोनों किसी अपूर्व भाव राज्यमें प्रवेश कर गये हैं। किसीको भी वाह्य स्मृति नहीं। उसी समय घोष बाबूने भजन गाना प्रारम्भ किय:—

श्री नन्दनन्दन करि गोचारन,
मलिन ओ मुखशशी।
संगे हलधर सब सहचर,
तारा मांझे जनु शशी।

करि नाना केलि, हइया बिकलि,
बसिला तरुर तले।
मलय पवन बहे घन घन,
शीतल जमुना कूले ॥
सकल राखाल[1] खुधाय[2] ब्याकुल,
कहये तजिया लाज।
मोरा सबे चाई बनफल खाई,
शुनहे राखाल राज।
सब शिशु मेलि, करिया धामालि,
बन फल तूलि निल।
खाइते खाइते, बड़ मिठ बलि,
कानूर बदने दिल ॥
कोन शिशु जाइया मुखे मुख दिया,
से फल काड़िया खाय।
हासिर हिल्लोरे, भासिल सकले,
ए दास उद्धब गाय।

'श्रीनन्दनन्दनका मुखारबिन्द गोचारण.लीलाके बाद म्लान हो रहा था। उनके साथ थे बलराम और सखागण। उन सबके बीच वे तारागणों में चन्द्रमाके समान शोभा पारहे थे। नाना प्रकारकी लीलाकर वे विकल हो एक तरुके तले बैठ रहे। जमुनाका था किनारा। शीतल सुगन्धित पवन बह रहा था। ग्वाल-बाल क्षुधासे व्याकुल थे। वह लाज छोड़ कहने लगे 'सुनो हे, ग्वालबालोंके राजा ! हमारी सबकी बन-फल खानेकी

---

[1] सखा, [2] भूखसे

इच्छा हो रही है' इतना कह सबने धमाचौकड़ी मचायी और तोड़ लाये बहुतसे बनफल। उन्हें खा-खाकर जो मीठे लगे कन्हैयाके मुखमें देने लगे। एक सखा उनके मुखसे अपना मुखलगा उनके मुखसे फल निकालकर खाने लगा। हंसीका फुव्वारा फूट पड़ा जिसमें सबके-सब तराबोर होगये !'

गीत और हृदयका भाव एक हुआ। अब संभाले कौन ? बाबाजी अचेतन हो भूमि पर लेट गये। दांत जुड़ गये और शरीर धनुषके समान टेढ़ा हो गया। घोष बाबू बार-बार वही पद गाने लगे। धीरे-धीरे बाबाजीके साथी भी आकर उस गानमें सम्मिलित हुए। आनन्दकी अवधि न रही। कीर्त्तनकी ध्वनि सुन अनेक लोग आंगनमें आ गये। बालक-वृद्ध-स्त्री-पुरुष सभी बाबाजी महाशयकी यह अवस्था देख विस्मय सागरमें डूब गये। उस धनुषाकार शरीरमें कभी कम्प, कभी पुलक, कभी स्वेद और कभी वैवर्ण होने लगा। कुछ देर बाद बाबाजी अर्द्धवाह्य अवस्थाको प्राप्त कर नानाप्रकारके सख्य रसके पद गाने लगे। रस और लीला जैसे मूर्तिमान रूपसे प्रकट हो गये। आबाल-वृद्ध और युवक जो भी वहाँ उपस्थित थे किसीको वाह्य स्मृति न रही। सभी मानो जमुनाके तटपर किसी वृक्षके नीचे वन-भोजन लीलामें प्रविष्ट थे। कीर्त्तनके पश्चात् आमका थाल ले बाबाजी एक-एक भक्तके मुँहमें आम दे स्वयं उनका अधरामृत पान करने और स्वयं एक आम खा दूसरोंको वही खिलाने लगे।

इस प्रकार परमानन्द पूर्वक लगभग बारह बजेका समय हो आया। तब घोष महाशय और उनकी पत्नीके अनुरोधसे कीर्त्तन समाप्तकर और महाप्रसाद ग्रहणकर सब लोग विश्राम करने लगे। अपरान्ह बहुतसे भक्तोंके साथ तत्व कथामें व्यतीत

हुआ। क्रमश: रूप, अभिसार और मिलन कीर्त्तनमें रात्रिके ग्यारह बज गये। आनन्द पूर्वक रात्रि व्यतीत हुई। दूसरे दिन वहाँसे चलनेके लिये प्रस्तुत हुए। उसी समय घोष महाशय और उनकी पत्नी आकर एक दिन और वहाँ रुकनेके लिये आग्रह करने लगे। उनके स्नेहानुरोधके कारण बाबाजीको उस दिन वहीं स्नान आन्हिक महाप्रसादादि समापनकर दुपहरको विश्राम करना पड़ा।

दंड महोत्सव

आज रघुनाथदास गोस्वामीका दंड महोत्सव है। बाबा महाशयने कुंज बाबूसे कहा 'निताईकी प्रेरणामे आज हमने पानीहाटी जानेका विचार किया है। कुञ्ज बाबूने कहा 'आज प्रभुकी कृपासे रविवार है और सबकी छुट्टी है। चलिये नाव कर सब साथ ही चलें। ऐसा ही हुआ। नामकीर्त्तन करते-करते गंगातट तट पर जा पहूँचे और एक बजरा किराये पर ले सब उस पर बैठकर चल दिये। बाबाजी नौकापर बैठते ही उच्च स्वरसे 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्त्तन करने लगे। बाबू लोग भी सब प्रेममें मतवाले हो साथ-साथ कीर्त्तन करने लगे। नामकी ध्वनिसे नदीका जल विकम्पित होने लगा। आनन्दमयी मां गंगा मानो अपने प्रभुके अन्तरंग भक्तोंका साथ पा कल-कल ध्वनिसे आनन्द प्रकाश करने लगीं। जो जिस स्थान पर था उसी पर नामके साथ-साथ नृत्य करने लगा। कोई-कोई हाथसे ताली बजा और झूम-झूमकर

नृत्य करने लगे। मल्लाह कीर्त्तनकी तालके साथ सिर हिलाता हुआ डांड़ चलाने लगा।

दोनों ओर तटपर, लोग अवाक् हो नाम सुन रहे थे। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित अधिकारीगण भी आज बालकवत हो रहे थे। जिनकी जिह्वापर कभी निताइ-गौर नाम नहीं आया वह भी आज नामरसमें मग्नहो कभी हंसते और कभीरोते,और कभीप्रेमानन्दमें नृत्य कर रहे थे। रंगिया निताई चांदका यह अपूर्व रंग था। सभी मतवाले हो रहे थे। सभीकी आत्म-स्मृति जाती रही थी। द्रवमयी मां भागीरथी प्रेमोन्मत्ता सन्तानको छातीसे लगा उत्ताल तरंगोंके साथ प्रेमानन्दमें नृत्य कर रही थीं। नाव बड़ी थी लेकिन प्रेममें पागल भक्तोंकी प्रेम-तरंग और मां भागीरथीकी आनंद हिलोरोंके घात प्रतिघातके कारण कुछ अप्रकृतिस्थसी ढुलमुल होती जा रही थी।

सुखका समय शीघ्र व्यतीत हो जाता है। मल्लाह आनंद पूर्वक पुकार उठा 'यह रहा पानिहाटी ग्राम। यह देखिये पेड़के नीचे कितने लोग एकत्र हैं।' सुनते ही सबलोग एक साथ नावसे उतरनेको हुए। मल्लाहने विनय पूर्वक कहा 'थोड़ा और रुक जाइये। नाव किनारेसे लगा लूं। नहीं तो डूब जायगी।' बाबा हंसते हंसते बोले 'भाई, यह नामकी नौका है। यह क्या डूब सकती है?' और नृत्य करने लगे। मल्लाह एकटक उनकी भाव-भंगी देख रहा था और प्रेममें गद्-गद् हो अश्रुपात कर रहा था। नौका धीरे-धीरे घाटसे आ लगी। सब आनन्दपूर्वक घाट पर उतरे। बाबाजी महाशयके नेत्र लाल हो रहे थे। वे गद्-गद् कंठसे गाने लगे:—

आहा मरि कि मधुर पानिहाटी ग्राम ।
नित्यानन्द स्वरूपेर बिहारेर स्थान ।।

एईना तरुर तले प्रभु दयामय ।
रघुनाथे कृपा कैला हइया सदय ।।

सेई तरुवर एई से गंगा तीर ।
सेई पानिहाटि एई सेई गंगानीर ।।

कांहा नित्यानन्द राम कांहा तार गण ।
कांहा दास रघुनाथ देह दरशन ।

ओहे पानिहाटीबासी जत नरनारी ।
देखाओ निताईचांद करुणा बितरि ।।

तोमादेर प्रेमे बांधा निताई रंगिया ।
बिहरिछे[1] गनसह नाचिया गाइया ।।

तोमादेर कृपा बिना के देखिते पारे ।
देखाइया सेई लीला किने लह[2] मोरे ।।

नयने देखिब तारे लइया ना जाब ।
प्रेमहीन मोरा तारे रखिते नारिब[3] ।।

हा, हा, प्रभु नित्यानन्द करुणा बारिधि ।
भक्त संगे तब लीलार नाहिक अबधि ।।

बड़ साध सेई लीला देखिब नयने ।
बंचित कर ना प्रभु भक्तिहीन जने ।।

अद्यापिह सेई लीला करिछ हेथाइ ।
अभागिया जन मोरा देखिते न पाइ ।।

---

[1]बिहार कर रहे हैं, [2]खरीद लो, [3]रख न सकूंगा,

आज सेई रघुनाथेर कृपादंड दिन।
आसियाछि देखिबारे मोरा दीन हीन।।

भक्त संगे सेई लीला करि आस्वादन।
शीतल करिब सबार तापित जीबन।।

गा गा कर भावाविष्ट हो बाबा नृत्य करने लगे। नृत्यके पश्चात् दासगोस्वामीका दंडमहोत्सव-कीर्त्तन प्रारम्भ किया। भीड़ आने लगी। लोगोंकी भीड़का कुछ ठिकाना न रहा। सभीके मुखसे 'गौर हरिबोल' ध्वनि निकल रही थी। सभी आनन्दमें विभोर और बाह्य स्मृतिहीन हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रेमका सागर उमढ़ पड़ा है और रंगिया निताई चांद फिरसे प्रकट होकर लीला कर रहे हैं। कैसा अपूर्व दृश्य है। प्रेममय निताई चांदकी कैसी अपूर्व प्रेमलीला है! 'आपनिओ जेई मत प्रभुनित्यानन्द। सेईमत करिलेन सब भक्तवृन्द' इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। पदोंमें वर्णन है कि रघुनाथ गोस्वामी के दंडमहोत्सवके समय भक्तोंकी भीड़के कारण तट पर इतना स्थानाभाव था कि उन्होंने जलमें उतर कर चिउड़ा प्रसाद सेवन किया था। परन्तु आज जनसंख्या उससे भी कहीं अधिक दीख पड़ रही है। आज तो जलमें भी स्थानाभाव दीख रहा है। बहुतसे लोग नावों पर चढ़ महोत्सव दर्शन, कीर्त्तन, श्रवण और चिवड़ा महाप्रसाद सेवन कर रहे हैं। गंगामें इतनी नावें एकत्र हो गई हैं कि गणना करना कठिन है।

बहुत समय तक कीर्त्तन करने पर एकदम राघवपंडितके घरकी याद आगई। मनकी गतिके अनुकूल देहकी गति होने लगी। सभी राघवपंडितके घरकी ओर चल पड़े। बा महाशय

बिलकुल देह ज्ञान रहित थे। देह तनिक भी अपने बसमें नहीं था। ऐसा लगता था कि कोई एक भावकी पुतलीको पकड़कर लिये जा रहा है। इस प्रकार नृत्य और कीर्त्तन करते-करते सब राघव पंडितके माधवी मंडपमें जा पहुंचे। उस समयकी बाबा महाशयकी अवस्था का वर्णन एक भक्तने इस प्रकार किया है:—

कभु हर्ष कभु रोष, कभु उत्कन्ठा सन्तोष,
उद्वेग बिषाद कभु आर्ति।
कभु दैन्य प्रलापन, कभु हास्य रोदन,
एत भाव एक काले स्फूर्ति।
भावेर विकार जत, आपन समय मत,
एक देहे करिछे उदय।
अश्रु कम्प पुलकादि, स्वेद वैवर्ण निरवधि,
देखि सबार हइल बिस्मय॥
कभु भावे कन्ठरोध, कभु हय आत्मबोध,
कभु बले गदगद बाणी।
बिरहे व्याकुल हिया, कांदे कभु फुकरिया,
आपना के अभागिया मानि॥

बाबाका शरीर भाव समूहसे पुष्ट हो कुछ और ही प्रकार का दीखने लगा। इस प्रकार बहुत समयतक कीर्त्तनानन्द होता रहा। फिर कुछ भक्त कौशलपूर्वक गंगातट पर सेनेदे ठाकुरकी बगीचीमें कीर्त्तन ले गये। बगीचीकी शोभा अति मनोरम थी। देखते ही बाबाको वृन्दाबनका भ्रम हो गया और वे भावावेषमें मधुर-मधुर नृत्य करने लगे। बहुतसे लोग एकत्र हो गये। एक भक्त प्राणके आवेगसे कीर्त्तनके बीच बाबाको साष्टांग दंडवतकर

उनके चरणोंसे लिपट गया, बाबा महाशय स्थिर भावसे खड़े हो गये। भगवान् जाने भक्तके मनमें कौनसा भाव उदय हो आया। देखते-देखते वह अचैतन्य हो गया और उसके दाँतोंकी बत्तीसी भिचगई। साथियोंमें से कुछ लोगोंने जबउसके हाथसे बाबाके चरण छुड़ाकर उसे प्रकृतिस्थ करनेकी कोशिशकी। तो क्या देखा कि उनके दाहिने पैरकी वृद्धांगुली उसके मुखमें है और उसके मुंहके दोनों ओरसे रक्तपात हो रहा है। मुखसे उंगली-निकालने के लिये बड़ी चेष्टाकी पर किसी प्रकार सफलता न मिली, क्योंकि जिनकी उंगली वह भी भावाविष्ट और जिसके मुंहमें वह भी भावाविष्ट। यदि किसीको कष्ट हो रहा है तो अन्य व्यक्तियोंको। उनके प्राणोंमें बड़ा आघात हो रहा है। अन्तमें एक लोहेकी चाबी भक्तके मुंहमें देकर किसी प्रकार उंगलीको बाहर किया गया। किन्तु भक्त फिर भी संज्ञाहीन अवस्थामें ही पड़ा रहा। उसके शरीरमें अश्रु, कम्प पुलकादि सात्विक भाव इस प्रकार प्रकाशित होने लगे कि सभी लोग देखकर विस्मित हो गये। थोड़ी देरमें भक्तोंने उसे पकड़कर उठाया और बाबाने आलिंगन दानकर प्रकृतिस्थ किया और विश्राम करनेके लिये चबूतरे पर बिठा दिया।

इसी समय कुछ भक्तोंने बाबा महाशयके सम्मुख कुछ प्रसादी आम लाकर रखे। बाबाने उनकी हरिलूट प्रारम्भकी। धीरे-धीरे इतनी भीड़ हो गई कि उसका सम्हालना कठीन हो गया। आनन्दके समय जो कुछ होता है सभी आनन्दमय होता है। आमोंकी छीना झपटीमें आज अपार आनन्दका अनुभव होने लगा। छोटे बड़े, धनी दरिद्र, बालक, वृद्ध, स्त्री पुरुषका, कोई भेद न रहा। सभी आनन्दमें मतवाले हो रहे थे। जिसे हरिलूट

का एक आम भी मिल जाता था वही अपनेको कृतार्थ समझता था इस प्रकार कुछ समय बगीचेमें आनन्द मना कर बाबाजी मंडली सहित कीर्त्तन करते-करते फिर पेड़के तले आ गये और वृक्षराज को दंडवत प्रणामकर बहुत समय तक कीर्त्तनकर बजरेपर बैठे। बजरे पर ही मालसा भोगका प्रबन्ध हुआ। भोग आरती कीर्त्तन समाप्त होने के बाद सबने चिउड़ा प्रसाद सेवनकर नाम प्रारम्भ किया। सभी प्रेममें मतलाले हो गये। आनन्द सिन्धु उमड़ पड़ा। बजरे पर उद्दंड नृत्य होने लगा। सुरतरंगनीने प्रेम तरंगनीका रूप धारण किया। बजरा भी मानो नामकीर्त्तनकी तालके साथ मस्तीसे झूम-झूमकर मन्द गतिसे चलने लगा और यथासमय घाटपर जालगा। सबने उतरकर बट्टबाबूकी बगीची में विश्राम किया।

जहाजमें श्रीधाम पुरी यात्रा

कलकत्तेमें प्लेगके उपलक्ष्यमें कीर्त्तनान्दमें कई दिन व्यतीतकर एक दिन बाबाजी महाशयने पुरी जानेकी इच्छा प्रकटकी यह। सून कलकत्तेके सभी भक्त व्याकुल हो गये और परस्पर कहने लगे 'बहुत जन्मोंकी सुकृतिके फलसे इस प्रकारके महापुरुषोंका संग सुख लाभ हुआ था। प्रभु इतना शीघ्र ही इस सुखसे हमें वंचित कर लेंगे यह कभी स्वप्नमें भी विचार नहीं किया था।' पर महापुरुष तो स्वेच्छामय होते ही हैं। तिस पर हमारे बाबाजी महाशय और भी अधिक स्वेच्छामय थे। अपनी इच्छासे कभी तो बालकोंके इशारे पर चलते और कभी इतने स्वतंत्र हो जाते कि किसीकाभी साहस न होता जो उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे कुछ करा ले। कुंजबाबू, पुलिनबाबू प्रभृति और

कुछ दिन कलकत्ते ठहरनेके लिये विशेष भावसे प्रार्थना करने लगे, किन्तु उनका प्रयत्न सफल न हुआ। बाबा महाशय हँसकर बोले 'भाई ! मैं तो पराधीन ठहरा, निताईचांद जिस समय मुझ अधमसे जो कराना चाहते हैं वही करानेकेलिये बाध्य रहता हूँ। तुम लोग कोई दुःख मत करना। उनकी इच्छा होगी तो फिर यहाँ ले आयेंगे। इतना कह वह पुरी जानेके लिये प्रस्तुत हुए। तब कुञ्जबाबूने अपने छोटे भाई पुलिन बाबूसे कहा 'तुम इन लोगोंको स्टीमर पर बिठा आना और जितना रास्ता रेलसे जाना होगा उसका किराया इनमेंसे किसीको दे देना। 'पुलिनबाबू अति आग्रह सहित उनके साथ चल दिये। उस समय कलकत्तेसे पुरीके लिये रेल नहीं थी। पुलिनबाबूने स्टीमर घाटपर जाकर टिकट खरीद दिया, और यह उन्नीस आदमी श्रीधाम पुरीको रवाना हुए। पुलिनबाबू भी बहुत दुःखित हो घर लौट आये।

जहाजने चलना आरम्भ किया और इन्होंने अपना कीर्त्तन आरम्भ किया। उसी समय जहाजके कप्तानने एक कुली द्वारा इनसे यह गोलमाल बंद करनेके लिये कहा। बाबा महाशयने कहा 'गोलमाल तो कुछ भी नहीं भाई, हम तो भगवानका नाम ले रहे हैं जिससे अमंगल नहीं मंगल ही हो गा।' किन्तु मुसलमान कप्तानने कुछ भी न सुना, कुछ हिन्दू कर्मचारी इन लोगोंसे कप्तानकी बात माननेके लिये आग्रह करने लगे। बाबा और अधिक प्रतिवाद न कर मौन हो गये। जहाज ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया हवाका वेग भी वैसे ही अधिक होता गया। समुद्रकी तरंगें उछल-उछलकर जहाजपर बैठे लोगोंके वस्त्र भिगाने लगीं। उत्ताल तरंगोंको देख सबके सब आतंकित हो गये। पर जब-जब बाबा महाशय और उनकी मंडली उन तरंगोंको देख

गगन भेदी स्वरसे 'जय नित्यानन्द राम' कहकर हुंकार करते तभी तरंगें समुद्रमें लीन हो जातीं। यह अवस्था देख कप्तानने एक कुलीसे बाबा महाशयको फिर पहलेकी तरह कीर्त्तन करनेके लिये कहलाया। बाबा महाशयने उस कुलीसे कहा 'तुम कप्तान से जाकर पूछो कि इस समय क्या उन्हें यह गोलमाल अच्छा लगेगा, और हमारा कीर्त्तन करना उचित होगा।' कुलीके मुखसे यह सुन कप्तान बाबा महाशयसे आकर बोला 'बाबा मैंने अज्ञान के कारण उस समय आपसे कीर्त्तन करनेके लिये निरोध किया था। ऐसा लगता है कि उसी पापके कारण हमें यह दंड मिल रहा है। आप लोग कृपाकर उस बातका ख्याल न कर कीर्त्तन प्रारम्भ करें। इस प्राण संकटके समय आप और विलम्ब न करें। इस विपत्तिसे उत्तीर्ण होनेके पश्चात् मैं फिर आप लोगोंके दर्शन करूंगा।' यह कहकर वह अपने स्थानको वापस चला गया। बाबाजी महाशयने निताई चांदको धन्यवाद देकर दूने उत्साहसे नाम कीर्तन प्रारम्भ किया। पूर्वोक्त हिन्दू नामधारी बाबू लोग भी प्राणके भयसे उच्च स्वरमें 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम करने लगे। धीरे-धीरे जहाज काले पानीमें जा पहुंचा। बहुतसे लोग काले पानीकी दुर्गन्धके कारण उल्टी करने लगे। तरंगोंके भीषण थपेड़ोंसे जहाज बीच-बीचमें जल मग्न होने लगा। यात्रियोंके कंठ तक जल आ गया। हिन्दू मुसलमान सभी प्राणके भयसे उच्च स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। इसी प्रकार चार घंटे व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् प्रभु मानो प्रसन्न हुए। हवा बंद हो गई। आकाश निर्मल हुआ। यात्रीयोंने जीवन लाभ किया। तब कप्तान आकर बाबा महाशयसे विनीत भावसे क्षमा प्रार्थनाकर कहने लगा 'आज आप लोगोंके कीर्त्तनके प्रतापसे ही सबके प्राणोंकी

रक्षा हुई है। नहीं तो ऐसी अवस्थामें किसी प्रकार जहाजकी रक्षा होना संभव नहीं था। बाबाजी महाशयने कहा 'देखो भाई। भगवत् नामकी अपार महिमा है। जो नाम है वही भगवान हैं। नाम और भगवानमें कुछ अन्तर नहीं है। भगवानके अनन्त नाम हैं--अल्ला, खुदा, इशु, मुहम्मद, काली, दुर्गा, शिव, कृष्ण, बिष्णु, निताई,गौर इत्यादि, और इनमें कुछ भी भेद नहीं है। तुम शायद हमारे निताइ गौरका नाम लेने में कुछ संकोच भी करो, पर मुझे तो अल्ला, खुदा, इशु आदि नाम लेनेमें संकोच नहीं है, क्योंकि भगवान पूर्ण-पूणतम हैं और धर्म्म शब्द सार्वजनिक है, व्यक्तिगत नहीं। यह सुनकर कप्तान अश्रुगद्‌गद्‌ कंठसे बोला 'हमारे कुरान शरीफका भी ठीक यही मत है। कुरान शरीफमें लिखा है किसीके धर्म और कर्मकी निन्दा करनेसे खुदाके आगे दोषी बनना पड़ता है। इस प्रकार कथोपकथन होता रहा। कालापानी पार करते-करते रात हो गई। जहाजने लंगड़ डाला। वह रात्रि जहाजमें ही बीती। दूसरे दिन प्रातःकाल जहाज रवाना होकर ग्यारह बजे चाँदवली पहुँचा।

यात्रीगण चांदबली स्टेशनपर उतरकर स्नान करने लगे। इन लोगोंने समुद्र तटपर कीर्त्तन प्रारम्भ किया। इतनेमें एक साहबने वहाँ आकर इनका कीर्तन बन्द करना चाहा। जहाजके कैप्टेन और अन्य लोगोंने साहबको समझाया कि किस प्रकार बाबाजी महाशयने अपने कीर्त्तनसे जहाजकी रक्षा की थी। यह सुन साहबने फिर कुछ न कहा और वह भी प्राण खोलकर कीर्त्तन करने लगा। उस समय रमानाथबाबू, शरत बाबू, रामप्रसादबाबू और रघुनाथबाबू आदि अनेक उड़ियावासी और बंगाली सज्जन कार्योपलक्षमें चांदबली वास करते थे।

यह लोग बाबाजी महाशयका कीर्त्तन सुन बहुत प्रसन्न हुए और कई लोगोंके मुखसे पूर्वदिनकी घटनाके बारेमें सुनकर उनके प्रति बहुत आकृष्ट हुए और उनसे दो एक दिन चांदबली ठहरने का आग्रह करने लगे। किन्तु रथयात्रा अति सन्निकट होनेके कारण बाबाजी महाशय उनकी प्रार्थना स्वीकार न कर सके। उस दिन उनके आहारादिकी व्यवस्था शरतबाबूके यहाँ हुई।

आहारादिके पश्चात् रघुनाथबाबूके विशेष आग्रह करने पर सब लोग कीर्त्तन करते-करते उनके घरकी ओर चल दिये। रघुनाथबाबूके घर जानेका रास्ता एक साहबके मकानके सामने होकर था। बहुतसे लोगोंने विचार किया कि साहबके मकान के सामने होकर जानेसे कीर्त्तनमें अवश्य कुछ न कुछ बाधा होगी। किन्तु कीर्त्तन ध्वनि सुनकर साहब बाहर आये और इन लोंगोंको देखते ही टोप उतारकर खड़े हो गये। यह लोग उस समय कीर्त्तनमें मतवाले हो रहे थे। साहब बाबाजी महाशयकी ओर एकटक देखते रहे। क्षणभरमें ये लोग साहबके मकानसे आगे निकल गये। गगन भेदी मधुर कीर्त्तनसे दसों दिशायें आनन्दमय हो गई। सब उद्दंड नृत्य करते जा रहे थे। किसीको वाह्य स्मृति न थी। बाबाजी महाशयके शरीरमें अश्रु कम्प, पुलकादि सात्विक भाव दृष्टिगोचर हो रहे थे। हिन्दू, मुसलमान, इसाई सभी विस्मित हो परस्पर कह रहे थे 'यह बाबाजी अवश्य ही कोई महापुरूष हैं। इस प्रकारकी अवस्था किसी सामान्य मनुष्यमें कदापि संभव नहीं। कैसा सुन्दर मुखारविन्द और कैसा सुन्दर भाव हैं।' 'हमने अनेक साधु देखे हैं, परन्तु इस प्रकारके महात्माके तो हमने आजतक दर्शन नहीं किये।' 'देखो कितने सरल भावसे कीर्तन कर रहे हैं। बालक-

वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी अनायास मतवाले होकर उसी नामका कीर्त्तन कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि मानो सभीका नामोच्चारणका कितने दिनका अभ्यास है'। 'इनको देखने मात्रसे ऐसा बोध होता है कि मानो यह कितने दिनके परिचित हैं।' इस प्रकार जिसकी जैसी मनोगति थी समालोचना कर रहा था। ये प्रेमावेशमें नाचते-नाचते दर्शकवृन्दको प्रेमसागरमें निमग्न करते जा रहे थे। पूर्वोक्त रघुनाथबाबूके घर पहुंचते-प्राय एक घण्टा लग गया। वहाँ पर भी बहुत देरतक कीर्त्तन होता रहा। सभी आनन्दमें मतवाले थे। कुछ देर पश्चात् कीर्त्तन समाप्तकर सबने विश्राम किया। पाँच बजेके लगभग पुरी जानेके उद्देश्यसे कटक जाने वाली बोटपर सवार हुये। वोटने जब नहरमें प्रवेश किया शरतबाबूने कटकके पोस्टमास्टर को तार दिया कि 'एक महापुरुष नवद्वीपसे कटक होकर पुरी जा रहे हैं। उनका अलौकिक भाव देख और सुमधुर कीर्त्तन सुन यहाँ के हिन्दू, मुसलमान सभी मुग्ध हो गये हैं। कालेपानी में एकबार भयानक तूफानके कारण जहाज समुद्रमें डूब चला था और कप्तान तथा यात्रियोंने जीवनकी आशा छोड़ दी थी। संकीर्त्तनकर इन महापुरुषने जहाजकी तूफानसे रक्षाकी। इस कारण जहाजके कप्तान और बहुतसे साहबलोगोंका इनके प्रति विशेष भक्तिभाव है।' शरतबाबूका तार पाकर कटकके पोस्ट-मास्टर और टेलीग्राफ मास्टर आदि बहुत आनन्दित हुए। उन्होंने स्थानीय बहुतसे लोगोंके निकट यह शुभसंवाद पहुंचा दिया। संबाद पाकर कटकके बहुतसे लोग उत्कंठित हो महा-पुरुषके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी प्रकार दिन बीत गया। पुरी पोस्टआफिसके हेड-

कलकत्ते बाबू गोपालप्रसाद दत्तने कटकके पोस्ट मास्टरको पहले ही लिख रखा था 'बड़े बाबा महाशय जैसे ही कटक पहुँचें हमें तारसे सूचना दीजियेगा ।' कटकके पोस्टमास्टर साहबने आज यह तार भेज दिया कि 'कल चांदबलीसे तार मिला है कि एक महापुरुष नवद्वीपसे पुरी जा रहे हैं। उन महात्माओंके संकीर्त्तन और अलौकिक शक्ति प्रभावसे चांदबलीके हिन्दू मुसलमान और इसाई विमुग्ध हो गये हैं । संभवतः आज वे कटक पहुंच जायेंगे । पुरीके लिये रवाना होनेसे पहले आपको सूचना भेजूँगा। 'पुरीवासी भक्त-वृन्द यह संवाद पाकर अत्यन्त आनन्दित हुए । बाबा महाशय जैसे ही कटक पहुंचकर बोटसे उतरे वैसे ही कई सज्जन उनके पास आकर बोले 'हमें कलही आपके आनेका संवाद मिला हैं । शरतबाबूने चांदबलीसे हमारे यहांके पोस्ट मास्टर साहबको तारसे सूचितकर दिया था। हमारी सबकी इच्छा है कि कुछ दिन कटकमें रहकर हम लोगोंको कृतार्थ करें ।'

बाबा महाशय—भाई निताई चांद कब तक रखें यह तो वही जाने । मेरी अपनी कोई क्षमता नहीं है । श्रीजगन्नाथदेव की रथयात्रा करीब-करीब आ पहुँची है। ऐसा बोध होता है कि निताई चांद मुझे अधिक समय यहाँ न रखेंगे। भविष्यमें यदि और किसी समय वे ले आये तो यहाँ कुछ समय रहकर आप लोगोंके साथ आनन्द उपभोग करूंगा ।

इस प्रकार वार्तालापमें करीब आध घंटा व्यतीत कर नाम करते-करते शहरमें प्रवेश किया और आनन्दचन्द्र ब्रह्मके घर जाकर उपस्थित हुए। बाबाजी महाशयको देखते ही आनन्दबाबूने आनन्द-आत्महारा हो इनके विश्रामकी व्यवस्था

की। नाना प्रकारके कथोपकथनमें बहुत समय व्यतीत हो गया। इधर ठाकुरजीके भोगकी व्यवस्था होने लगी। यथासमय बाबा महाशयने साथियों सहित प्रसादादि पा कुछ विश्राम किया। अपरान्हमें बहुतसे भक्त आने लगे। उनके साथ नाना-रूप तत्व कथामें दिन डूब गया। सन्ध्याके समय आरती-कीर्त्तन और क्रमशः रूप अभिसार और मिलन—कीर्त्तन कर तथा प्रसाद सेवनकर शयनकी तैयारी की।

इसप्रकार दो दिन आनन्दब्रह्मके घर बड़े आनन्दसे व्यतीत हुए। तीसरे दिन प्रभातमें काटजुड़ी नदीमें स्नान करने के हेतु कीर्त्तन करते-करते सब लोग बाहर निकले। काटजुड़ी नदीमें स्नानकर जब आनन्दब्रह्मके घर वापस हो रहे थे उस समय मार्गमें प्यारीमोहन दत्त नामक एक भक्तसे भेंट हुई। प्यारी बाबू बहुत धनी तो नहीं थे पर सदव्ययी और परम-भक्त थे। उनके घर पर श्रीश्रीगोविंदजीकी सेवा थी। वे और उनकी स्त्री दोनों वात्सल्य रसके उपासक थे। प्यारीबाबूके तीन पुत्र थे। वे भी परमभक्तिमान थे। किसी साधु, वैष्णव, या भक्तके दर्शनकर उसके साथ बातचीतमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि कुछ सुधबुध नहीं रहती थी। जब भी इन्हें कोई नई वस्तु या उपादेय द्रव्य मिलता था तो श्रीगोविन्दजीको उसे अर्पणकर उसके द्वारा किसी भक्तकी सेवा करते थे। इनके परिवारमें सभीका यह स्वाभाविक गुण था। प्यारीबाबूकी पत्नी के इस विशुद्ध भावको देख महापाखंडीके हृदयमें भी वात्सल्य-मयी मां यशोदाकी स्मृति सहज जाग उठती थी। मानो कि वे जगत मात्रकी मां थीं। बालक, युवक, वृद्ध किसीको भी यदि उदास या क्लान्त देखतीं तो थोड़ा गोविन्दजी का प्रसाद

खिलाये बगैर न रहतीं। आज मायापाशमुक्त निष्किञ्चन, भावानुरागी साधुगण मांके स्नेहपाशमें बंध गये। इनको देखते मां आनन्दसे अधीर हो गईं। बाबा महाशयने लपक कर जैसे ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया उनका वात्सल्य मूर्त्तिमान हो उठा। उन्होंने अपने बायें पैरकी धूल लेकर बायें हाथसे उनके मस्तकपर रखी और दाहिने हाथसे उनकी ठोड़ी पकड़कर बोलीं 'बाबा! सुखी रहो। तुम लोग मेरे गोविन्दके साथी हो। तुम्हारे आनन्दसे मेरा गोविन्द भी आनन्दित होता है। गोविन्दजीमें तुम्हारी प्रीति सदा बनी रहे। तुम लोग चिरजीवी हो। गोविन्दजीसे मेरी यही प्रार्थना है। वात्सल्यरसकी दृष्टि पहले मुखपर ही पड़ती है। इसलिये मां बाबा महाशयके मुख की ओर देखकर बोलीं 'कीर्त्तनके परिश्रमसे तुम्हारा सबका मुख सूख गया है। लो गोविन्दजीका प्रसाद पाकर विश्राम करो' यह कहकर नाना प्रकारके द्रव्य गोविन्दजीको भोग लगा कर सबको अपने हाथसे खिलाने लगीं। प्यारीबाबू और उनके घरके सभी लोगोंके विशेष आग्रहके कारण बाबा महाशय उस दिन उन्हींके घर ठहर जानेके लिये बाध्य हुए। आनन्दब्रह्मके घरसे उन्हें लिवा ले जानेके लिये लोग आने लगे। किन्तु वात्सल्य प्रेमके बन्धनको तोड़ उन्हें लिवा ले जानेका किसीको साहस न हुआ। उन्होंने कहा 'भाई। आनन्दसे कहना कि आज हमारा आना न हो सकेगा।' इधर गोविन्दजी के भोगकी तैयारियां होने लगीं। भोगके पश्चात् प्रसाद सेवनकर सबने विश्राम किया 'अपरान्हमें जब शहरके लोग आकर बाबामहाशय से नगर-कीर्त्तनके लिये आग्रह करने लगे तब प्यारीबाबू बोले 'आज आप बहुत क्लान्त हो रहे हैं। इस समय विश्राम कीजिये। कल सबेरे नगर-कीर्त्तन ठीक होगा।' सबने यह बात स्वीकार

करली। एक वृद्ध और सम्मानित व्यक्तिने प्रश्न किया 'महाशय ऐश्वर्य्य और माधुर्य दोनों में कौन श्रेष्ठ और हमलोगोंके लिये अवलम्बनीय है ?'

बाबा—शास्त्रोंमें लिखा है:-

जार[1] जेई भाव सेई हय सर्वोत्तम।
तटस्थ हइया बिचारिले आछे तारतम ॥

जो व्यक्ति जिस रसका उपासक है उसके लिये वही श्रेष्ठ है। किसी और रसकी आलोचना करनाभी उसके लिये अन्तराय समझना चाहिये। किन्तु तटस्थ होकर विचार करनेसे यह पता चलता है कि रसोंमें परस्पर उत्कर्षापकर्ष है। ऐश्वर्य और माधुर्यके बीच माधुर्य ही श्रेष्ठ है। कविराज गोस्वामीने माधुर्य रसके उपासक अर्थात् रागानुग भक्तोंके विये कहा हैं—

गोपी-अनुगत बिना ऐश्वर्य ज्ञाने।
भजिलेओ[2] नाहि पाय व्रजेन्द्रनन्दने ॥

अन्यत्र कहा है 'ऐश्वर्य थाकिले प्रेमेर गाढ़ता ना स्फुरे।' अन्यत्र 'देखिलेओ नाहि माने केवलार गणे।' व्रज वासियोंके विशुद्ध माधुर्य रसकी परीक्षा करनेके हेतु योगमायाके श्रीकृष्ण का उपलक्ष्यकर नानारूपसे ऐश्वर लीला प्रकाशित करनेपर भी उन्होंने कभी श्रीकृष्ण चन्द्रमें ऐश्वर्यका आरोप नहीं किया। व्रजगोपिकाओंने श्रीकृष्णकी शंख-चक्र-गदा-पद्म-भूषित चतुर्भुज-मूर्ति दर्शन करके भी उन्हें द्विभुज, मुरलीधर नन्दनन्दनसे भिन्न

---

[1]जिसका, [2]भजकर भी,

ओर कुछ नहीं समझा और न उनके इस रूपसे भिन्न और किसी रुपके प्रति कामना ही की। इसी प्रकार बृज बालकोंने गोवर्धन धारण, कालियादमन प्रभृति लीलाओंमें उनकी अलौकिक शक्ति देखकर भी उन्हें सखा कन्हैयासे भिन्न और कुछ नहीं माना, और माँ यशोदाने कृष्णके मुखारविन्दमें विश्व ब्रह्मांड देख कर भी उन्हें सर्वैश्वर्य परिपूर्ण ईश्वर माननेके बजाये यह समझकर कि उन्हें कुछ हो गया है नानारूप शान्तिस्वस्त्यनादिकी व्यवस्थाकी। जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी शान्तरसके भक्तगण 'अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व्वकारण कारणम' सर्वनियन्ता, षडैश्वर्य-सम्पन्न, पूर्ण पूर्णतम भगवान मानकर पूजा करते हैं, वे ही श्रीकृष्ण यशोदा प्रभृति मातृस्थानीया गोपियों द्वारा तिरस्कृत और शासित होते हैं। इतना ही नहीं, आवश्यकता होनेपर उनके हाथ पैर भी वे बांध देती हैं। अब समझ देखो कि ऐश्वर्य और माधुर्य्य रसके बीच कौन सा श्रेष्ठ है। मोटे शब्दोंमें बात यह है कि ऐश्वर्य तो भक्तोंसे भगवानको दूर रख उनके हृदयमें भीति और संकोचका संचार करता है और माधुर्यरस उन्हें भक्तोंके निकट लाकर और संबंध बोध करा कर उनके हृदयमें निःसंकोचता उत्पन्न करता है! प्राकृतराज्यके एक दृष्टान्त द्वारा इस विषयको और भी स्पष्टरूपसे समझलोः—

मानो कि दाशरथि महापात्र नामके कोई सज्जन किसी विचारालयके प्रधान विचारपति हैं। जब वे विचरासन पर उपविष्ट रहते हैं उस समय उनको हुजुर और धर्मावतार कहकर संबोधित किया जाता है। विख्यात वकील और बैरिस्टरादि नीचे खड़े होकर आदर और भयके साथ उनसे बातचीत करते हैं। परन्तु वह जज साहब घर आकर बैठकखानेमें विश्राम करते हैं।

उसी समय एक वृद्धा स्त्री आकर कहती है, 'हाय रे दासू ! तू अभी तक बाहर ही बैठा है। तू इतना बड़ा हो गया फिर भी तुझे हिताहितका कुछ ज्ञान नहीं जो भीतर जाकर कुछ जलपान कर, 'जज जाहबने दंडवत् प्रणामकर सिर झुकाये घरमें प्रवेश किया। भीतर घुसते ही नौकरानीने दो चार रसभर्त्सना सूचक शब्द कहे। जज साहब मुस्कराते हुए पत्नीके कमरे में पहुंचे। वहां देखते हैं कि पत्नीं रुष्ट होकर मान किये बैठी है। उन्होंने नानाप्रकारके मीठे वाक्य कह और खुशमाद दरामदकर उसे प्रसन्न किया। अब विचार कर देखो कि जिनके सामने वकील बारिस्टर बात कहते हुए भय खाते थे, विचारालयमें जिनका नाम हूजूर और धर्म्मावतार था, वे ही एक वृद्धा स्त्रीके द्वारा बालकके समान तिरस्कृत और अन्त:पुरनिवासिनी एक स्त्री द्वारा नाना प्रकारसे लांछित और पराभूत होते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐवर्श्य और माधुर्य्यमें कौन श्रेष्ट और अवलम्बनीय है। वृद्ध सज्जन और अन्यान्य भक्तगण बाबा महाशयके मुखसे सरल भाषामें यह सुसिद्धन्त सुनकर प्रसन्न हुए। सन्ध्या बीतने पर आरती कीर्त्तनके पश्चात अभिसार और मिलन-कीर्त्तन कर महाप्रसाद सेवनकर सबने विश्राम किया।

दूसरे दिन प्रात:काल बाबाजी महाशय प्रात:कृत्य समापन्कर साथियोंको लेकर नगर-कीर्त्तनकी तैयारी करने लगे। कटकवासी अनेक लोग आकर उपस्थित हुए। बाबाजी महाशय 'निताई-गौरांग, निताई गौरांग, निताई गौरांग गदाधर' यह पद गाते हुए नगर कीर्त्तनके लिये निकले। भक्तिकी दृष्टिसे कटक शहरकी तात्कालिक अवस्था उतनी उन्नत न थी, क्योंकि शहरके अधिकांश लोग आधुनिक सभ्यताके प्रभावसे ब्राह्म और

इसाई धर्मोंके प्रति अधिक आकृष्ट थे। विशेषत: वैष्णव धर्मके प्रति किसीकी बिलकुल आस्था नहीं थी। यहांतक कि वैष्णव शब्द सुनते ही वे चरित्रहीन अशिक्षित और असभ्यवकी धारणा करते थे। आज बाबा महाशयका कीर्त्तन सुन और नानाविध भावभूषणोंसे विभूषित उनके सुविशाल शरीरके दर्शनकर उनके मनमें क्षणकालके लिये बिजलीके समान भक्तिका संचार हुआ। कोई-कोई तो आकर संकीर्त्तनमें योग देने लगे और कोई इच्छा होते हुए भी पद मर्यादाके विचारसे दूर खड़े होकर कीर्त्तन सुनने लगे। रात्रिमें साढ़े दस बजेके समय नगर कीर्त्तनसे प्यारी बाबूके घर वापस पहुंचे। थोड़ी देर विश्रामकर काठजुड़ी नदीमें जाकर स्नान किया। नदीसे लौट भोजनादिकर विश्राम किया। अपरान्हमें शहरके अनेक शिक्षित व्यक्ति आकर बाबा महाशयसे धर्म सम्बन्धी वार्ता करने लगे।

इसी प्रकार परमानन्दपूर्वक पांच छ: दिन बीत गये। रथयात्रामें जब पांच छ: दिन रह गये तब एक दिन बाबा महाशयने पुरी जानेका बिचार प्रकट किया और स्नेहमयी माँसे बहुत अनुनय विनयकर किसी प्रकार बिदा ली। कटकवासी अनेक लोग बाबाजी महाशयके विच्छेद जनित दु:खसे दु:खित हो उनके दर्शनके हेतु स्टेशन पहुंचे। यथासमय गाड़ी आ पहुंची। बाबाजी महाशय अपने वाक्योंसे सबको आश्वासन दे गाड़ीपर बैठे।

इधर कटकके पोस्टमास्टर साहबने पुरी पोस्ट आफिस के हेडक्लर्क गोपालबाबूको बाबा महाशयके आगमनकी पहले ही तारसे सूचना दे दी थी जो सारे शहरमें फैल चुकी थी। बाबा महाशयके अभिन्न कलेवर नवद्वीप दादाके मनमें आज

आनन्द नहीं समा रहा था। बार-बार वे जगन्नाथजीके मन्दिर में जा प्रसादी माला और चरण-तुलसी लेकर आ रहे थे। पूज्य पाद रामकृष्णदासबाबाजी महाराज, कुञ्जविहारीराम, बलराम पट्टनायक, भुवनमोहनसाउ, गोपालप्रशाददत्त, वैष्णवचरणपट्ट-नायक प्रभृति बाबा महाशयके कई अन्तरंग भक्त उनका स्वागत करनेके लिये माला, चरण-तुलसी और कुछ प्रसादी मिठाई लेकर जब स्टेशन जानेको तैयार हुए तब नवद्वीप दादाने भी निजसंग्रहीत प्रसादी माला और चरण-तुलसी आदि अपने विशेष कृपापात्र जयगोपाल दास नामक एक अठारह उन्नीस वर्ष के लड़केको देकर उसे उनके साथ भेज दिया। नवद्वीप दादा और गोकुलदादा प्रणायाभिमानके कारण बाबा महाशयको लिवानेकेलिये नहीं गये। पर अपने प्रतिनिधि स्वरूप जयगोपाल से कह दिया 'तुम थोड़ी दूरपर अलग खड़े रहना। दादा यदि तुम्हारा नाम लेकर पुकारें तब तुम उन्हें यह बड़ी माला और किशोर गोपाल, राधाविनोद, गोविन्ददादा प्रभृति उनके अन्तरंग भक्तोंको छोटी मालायें पहना देना।' सब स्टेशन पहुंचकर गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगे। जयगोपाल मन ही मन सोचने लगा 'मैं कैसे उन्हें पहचानूंगा। वे महापुरुष हैं। मुझे उन्होंने न कभी देखा है और न पहचानते हैं। क्योंकर वह मेरा नामलेकर मुझे पुकारेंगे ? दादाने तो कहा है कि 'जब तक वह पुकारें नहीं उनके पास मत जाना।' उनका कहना भी कैसे टाल सकता हूँ। देखते-देखते मदमत्त दिग्गजकी भांति भूमंडलको कम्पित करती हुई गाड़ी स्टेशन पर आ पहुंची। पुरीवासीगण करतालके साथ 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्त्तन कर रहे थे। गाड़ीके शब्दके साथ-साथ सुमधुर खोल करतालका शब्द और कर्ण-रसायन कंठध्वनि सुन सभीके प्राणोंमें

प्रबल वेगसे आनन्दकी धारा बहने लगी । गाड़ी रुकते ही आरो हीगण उतरने लगे ।

गोपालबाबू, बलरामबाबू प्रभृति रेलिंगके बाहर खड़े थे । बाबा महाशयके अदेशानुसार संगीगण एक-एककर बाहर निकले जैसे ही ये लोग रेलिंगके बाहर आये बलरामबाबू आदि ने उनके गलेमें प्रसादी मालायें पहनाईं । सब बाहर आकर एक निर्दिष्ट स्थानपर जा बैठे । सबके पीछे बड़े बाबाजी महाशय झूमते-झूमते आये । उन्हें देखते ही बलरामबाबू आदिने आनन्द से विह्वल हो प्रसादी माला उनके गलेमें डाली । मालाके गलेमें पड़ते ही उनका सारा शरीर पुलकायमान हो उठा । कम्पित कलेवरसे उन्होंने सबको प्रेमालिंगन किया और फिर थोड़ा आगे बढ़कर बोले 'जय गोपाल ! तुम भी आये हो ? आओ प्रसादी माला दो ।' सुनते ही जय गोपाल हाथमें प्रसादी माला लिये प्रेमार्द्र हृदयके साथ शीघ्रतासे आगे बढ़ा । बाबा महाशय सुदीर्घ काय थे । जयगोपालको उन्हें माला पहनानेमें कठिनाई होती । कदाचित् इसी कारण उन्होंने उसे गोदमें उठा लिया । जयगोपाल ने तुरन्त माला पहना दी । अन्तरंग भक्तगण समझ गये कि माला ग्रहण करनेके साथ-साथ बाबा महाशयने जय गोपालको भी सदाके लिये अपना लिया । जयगोपालने भी उस क्षण बाबा महाशयको आत्म-समर्पणकर दिया । बाबा महाशय उसे गोदी लिये-लिये जहाँ और सब साथी बैठे थे उसी स्थानपर जा अपने मधुर संभाषणसे पुरीवासी भक्तोंको आनन्दित करने लगे । पूज्यपाद रामकृष्णदास बाबाजी तरह-तरहका महाप्रसाद सबके मुखमें देने लगे ।

पुरीवासी भक्तोंके आज आनन्दकी सीमा नहीं है । बहुत

दिनोंके पश्चात् अपने प्राणोंके प्राण, हृदय सर्वस्व, बड़े बाबाजी महाशयको पाकर वे ऐसे हो रहे हैं जैसे उनके मृत देहने नव जीवन लाभ किया हो। सब आनन्दसागरमें डूब रहे हैं। किसी को भी वाह्यस्मृति नहीं। थोड़ी देरमें बाबाजी महाशयने शहर की तरफ जानेकी इच्छा प्रकटकी। लालटैनें और मशालें जलाई गईं। बाबा महाशय सदल बल आगे-आगे कीर्त्तन करते और नाचते-नाचते चले जा रहे थे। क्रमशः श्रीश्रीजगन्नाथदेव के मन्दिरकी परिक्रमाकर कुन्टाइवेन्टसाहि पंडितके मठमें पहुँचे। बलरामबाबू प्रभृतिने पहले ही यहाँ इनके महाप्रसाद पाकर विश्राम करनेकी व्यवस्था कर रखी थी। बड़े बाबा महाशयके आगमनके उपलक्षमें सौ से भी अधिक व्यक्ति वहां उपस्थित थे। उनके आदेशानुसार सबने महाप्रसाद सेवन करना प्रारम्भ किया। भक्तगण उत्फुल्लि हो नानारूप ध्वनि करने लगे। महाप्रसाद सेवनमें करीब डेढ़ घंटा लग गया। सभी आत्मविस्मृत और आनन्दमें विभोर थे। कोई भी नहीं चाहता था कि वह अननुभूतपूव मिलनानन्द भंग हो, उस अपूर्व मधु-मयी रजनीका शेष हो। परन्तु एकदम विचार आया कि 'रात्रि अधिक हो गई है, बाबा महाशयको कष्ट होगा' और भक्तगण आत्म सुखकी इच्छा विसर्जनकर इस विचारको प्रकट करने लगे। क्रमशः सब अपने-अपने स्थानको चले गये। बाबाजी महाशयने रात्रिमें वहीं शयन किया।

सवेरा होते-होते बहुतसे भक्तोंका समागम हो गया। बाबा महाशय नामकीर्त्तन करते-करते नरेन्द्र सरोवरकी ओर स्नान करनेके लिये चले। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवक जिसके भी कानमें सुमधुर कीर्त्तन-ध्वनि प्रवेश करती थी वही

चुम्बक पत्थरसे आकृष्ट हुए लोहेकी तरह उस ओर भागता था। सभी मानो एक अभिनव आनन्द सागरकी उत्ताल तरंगोंमें गोते लगा रहे थे। कैसा मधुर प्रेमराज्य था। छोटे-बड़े ऊंच-नीच का कोई विचार नहीं था। जो एकबार बाबा महाशयको दंडवत् करता उसीको वे हंसते-हंसते प्रेमसे आलिंगन कर लेते।

करीब आठ बजे नरेन्द्र सरोवर पहुंचे। आज नरेन्द्र सरोवरमें मानो प्रेमका हाट लगा है। मानो चारसौ वर्षके पश्चात् आज गौरलीला फिरसे प्रकट हुई है। ऐसा लगता है कि स्वयं महाप्रभु भक्तोंके साथ रसालाप, कुशलप्रश्न, नरेन्द्रस्नान, और जलकेलि द्वारा सुख सागरमें स्वयं डूब रहे हैं और दूसरों को डुबा रहे हैं। नरेन्द्र सरोवरमें स्नान कर चुकनेपर जैसे ही बाबाजी महाशयने जगन्नाथदेवके मन्दिर जानेकी इच्छा प्रकट की वैसे ही भक्तगण मदमत्त हाथीकी भांति आनन्दसे हुँकार करते हुए मन्दिरकी ओर चल पड़े। 'भज निताई गौर राधे-श्याम, जप हरेकृष्ण हरेराम' नामका कीर्त्तन करते-करते और नाचते-नाचते श्रीश्रीजगन्नाथदेवके सिंह द्वारपर पहुँचे और अरुणस्तंभके निकट दंडवतकर मन्दिरमें प्रवेश किया।

जगमोहनमें कीर्त्तन

थोड़ी देरमें बाबा महाशय जगमोहनमें जा पहुंचे। देखते क्या हैं कि जगन्नाथजीके पट बंद हैं। केवल चित्रपटके दर्शन हो सकते हैं। पर वह भी इस समय सेवाके कारण बन्द हैं।

यह देख उनके मनमें अभिमान जागा। आंखोंमें जल नहीं, किन्तु उनका वर्ण लाल है। मुखमें शब्द नहीं, किन्तु अधरोष्ठ विकम्पित हैं। दोनों गाल रक्तवर्ण हैं। भावमें गर-गर हो न जाने क्या कहना चाहते हैं। एकदम कंठ रुद्ध हो गया। थोड़ी देरमें एक दीर्घ निश्वासके साथ गाने लगे:--

भावेर आवेशे, गौरांग आमार,
प्राणनाथे ना देखिया।
विरहेर भरे डाकिया बंधुरे,
कहे बेयाकुल हइया॥
बहु दिन परे, देखिते तोमारे,
आइनु तोमार ठांई।
तुया व्यवहार बुझिते एवार,
आमार शकति नाई॥
गृह छाड़ाइया बनबासी कैले,
रूपे गुने भुलाइया।
ओहे मनोचोर, एवे हैनु पर[1],
निजे रैले लुकाइया॥
मनेर वेदन, काहारे कहिब,
के बुझिवे मोर दुःख।
ओ चांदबादने ना हेरि सघने[2],
विदरिया जाय बुक॥[3]

---

[1]अब मैं पराई हो गई, [2]चांद बदन श्रीकृष्ण को उनकी प्राणधन श्रीमती राधिकाके साथ न देखकर, [3]मेरी छाती फटी जाती है।

आशाय आशाय एसे छिनु बन्धु,
तुया देखिबार तरे
कि दोषे विधाता, ए बाद साधिल,
ए दुःख बलिब कारे ॥
अचल बलिया उचले चढ़िनु[1]
पड़िनु अगाध जले ।
लक्ष्मी चाहिते दारिदे घेरल,
माणिक हारानु हेले ॥
रसमय बलि के बले तोमारे,
शुनह नागर चांद ।
छाड़िया स्वजन, गृह परिजन,
हइनु तोमारई बांधा ॥
जाति कुलशील किछु ना गणिनु,
गुरुजन गृह काज ।
धरम करम सब तेयागिनु ।
सती कुलवती लाज ॥
दिबस रजनी गुन गुनि गुनि,
हइनु बाउलि पारा[2] ।
तबु रसमय वुझिते नारिनु
तोमार प्रेमेर धारा ॥
दयामय बलि,[3] जाहारे भजिनु,[4]
तार एतो निठुरता

---

[1]अचल जानकर पहाड़ पर चढ़ी, [2]अत्यन्त पागल हो गई, [3]दयामय जानकर, [4]जिसे भजा ।

रमणी लम्पट नागर शेखर,
तार मुखे नाहि कथा ॥
अलपे अलपे सू जदि जानितास,
तबे कि एमन करि,[1]
सुखेर लागिया पीरिति करिया,
(एखन) झूरिया झूरिया मरि ॥[2]
स्वप्नेओकभु भावि नाहि जाहा,
ताहाई घटिल काले ।[3]
निदारुन विधि, ए हेन अवधि,
लिखे छिल मोर भाले ॥
भाल हैल कान, दिला समाधान,[4]
आर बा बलिब कि ।
जमुनार जले, ए तनु त्यजिब,
निचय करियाछि ॥[5]

गाते गाते कंठ बिलकुल रुंध गया । अश्रुजलसे मुख और वक्षस्थल भीग गया । संगीगण सब अधीर हो गये । महा-पुरुषकी शक्तिसे सभीके हृदयमें ऐसा भाव छा गया । सबकी आंखोंसे अश्रुधार प्रवाहित होने लगी । किसीको भी देहकी सुधि न रही । सबका कंठ गद्गद हो गया । ऐसा लगा कि कोई

---

[1] मुझे अल्पमात्र भी इसका आभास होता तो क्या मैं ऐसा करती, [2] सुखके खातिर प्रीति जोड़ी और रो-रो कर मर रही हूं । [3] जो स्वप्नमें भी नहीं सोचा था वही आज हो गया । [4] हे श्रीकृष्ण अच्छा हुआ जो तुमने समाधान कर दिया । [5] जमुना जलमें शरीर त्याग करनेका अब मैंने निश्चय कर लिया है ।

भी इस राज्यमें न रहा । सबको प्रतीत होने लगा कि श्रीगौरांग चांद श्रीश्रीजगन्नाथदेवको न देख विरहणी, महाभाव-स्वरूपिणी, रसमयी, श्रीराधिकाके भावमें विभोर हो प्रणयरोषके कारण प्राणनाथको सम्बोधनकर न जाने क्या-क्या कह रहे हैं । पंडा पुजारीगण यह सब देख-सुन अवाक् हैं ! बहुत दिनों बाद एक प्रेमकी नदी न जाने कहांसे आकर आपामर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभीको विरह-सागरकी उत्ताल तरंग मालामें ले जाकर कभी तैराने और कभी डुबाने लगी । सभी विवश हो गये ! कैसी मधुर प्रेमकी लीला थी ! एकदमसे श्रीमन्दिरका कपाट खुला । सब उत्कंठाके साथ दर्शनके हेतु आगे बढ़े । बड़े बाबाजी महाशय दोनों हाथोंसे आंसू पोंछकर झूमते-झूमते चले । पहले जगन्नाथजीके चित्रपटके दर्शन हुए । विरह-ज्वाला कुछ शांत हुई । एक पंडेने जगन्नाथजीकी प्रसादीमाला लाकर बाबा महाशयके गलेमें डाल दी । मालाका स्पर्श होते ही उनका शरीर पुलकित हो उठा । अश्रुधारसे वक्षःस्थल भीगने लगा । थोड़ी देरमें मन ही मन न जाने क्या विचार करते हुए बोल उठे 'अच्छा । मोदेर[1] जा हय होबे, तुमि केन[2] दुःख पाबे, सुखे थाक[3] ओहे सुखमय !' और यही गाते-गाते मन्दिरके बाहर आये और स्नान बेदीकी ओर बढ़े । वहाँ नाना प्रकारका महा-प्रसाद सजा रखा था । बलरामबाबूने अपने दुशालेसे जगह साफ कर बाबा महाशयको वहाँ बिठा दिया । नये-नये बहुतसे भक्त आकर चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठ गये । वे सबसे प्रेमालाप करने लगे । इतनेमें बलराम सारा प्रसाद एकत्र कर सबको परसने लगे । पूज्यपाद श्रीरामकृष्णदास बाबाजीने कुछ महा-

---

[1]मेरा, [2]क्यों, [3]रहो ।

प्रसाद हाथमें ले बड़े बाबा महाशयके मुखमें दिया। उन्होंने भी कुछ महाप्रसाद लेकर उनके मुखमें दिया। इस प्रकार प्राय सभी भक्तगण एक दूसरेको महाप्रसाद खिलाने लगे। महाप्रसाद सेवानन्दमें एक घंटा बीत गया। ग्यारह बजेके करीब उन्हें समुद्र स्नानको जानेकी धुन उठी। किसीके बसकी बात न थी कि उनकी मनोगति को रोकता। एक पंडेने कहा 'कल नवयौवन रूपके दर्शन होंगे।'

बाबाजी—कै बजे होंगे ?

पंडा–शायद दस बजे हों।

बाबाजी–आशा है दर्शन करूंगा। आगे आपके आकर्षण और जगन्नाथदेवकी इच्छाकी बात है।

इसी समय माधव पशुपालक नामक एक पंडा बोला 'देखिये, आप जब पुरीमें नहीं रहते जगन्नाथदेव उदास रहते हैं। मेरा विश्वास है कि आप श्रीजगन्नाथदेवके कोई विशेष अन्तरंग हैं। आपका कीर्त्तन सुनकर हमें ऐसा लगता है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं हम लोगोंको कृतार्थ करनेके लिये फिर से अवतीर्ण हुए हैं' और भी बहुतसे लोगोंने तत्काल इस बातका समर्थन किया। बाबा महाशय कर जोड़कर बोले 'निताई निताई ! ऐसी बात न कहिये। मैं तो उनका दासानुदास हूँ।' इस प्रकार कथोपकथन करते-करते सभी समुद्रकी ओर चल दिये। समुद्र स्नानकर घर लौटते समय महात्मा बिहारीदास पुजारी इन लोगोंको गंगामाता मठमें महाप्रसादके लिये ले गये। इनके साथ करीब पचास आदमी थे। सबने बड़े आनन्दसे महाप्रसाद सेवन किया। गंगा माता मठके महन्त पंडित श्रीयुक्त माधवदास बाबाजी महाशय बड़े बाबाजी महाशयके पास बैठ-

कर नानारूप इष्टालाप करने लगे। कोई चार वजे सब बलराम महान्तिके घरसे रवाना हुए। इधर बलरामने पहलेसे ही इनके ठहरनेकेलिये हरिश्चन्द्र बसुका निवास स्थान ठीक कर रखा था। हरिशबाबू इस समय कलकत्तेमें थे। इसलिये उनके यहाँ ठहरने की विशेष सुविधा भी थी। यह लोग परमानन्द पूर्वक उस दुमजले मकानमें रहने लगे।

तीसरी बार नवयौवन दर्शन और हरिवल्लभ बाबूके घर कीर्त्तन

आज श्रीश्रीजगन्नाथजीका नवयौवन दर्शन होगा। जो भक्तगण उन्हें देखे बगैर एक दिन भी नहीं रह सकते उनका असह्य दुःख देखकर भी न जाने क्यों इतने दिनसे छिपे हुए जगन्नाथदेवको अपने भक्तोंकी याद हो आई है और उनके दुःख के कारण उनके प्राण रोने लगे हैं। भक्तवत्सल प्रभुसे क्या अब रहा जा सकता है? ग्यारह बज गये हैं। चारों ओर लोगों की भीड़ लगी है। सबके नेत्र उत्कंठापूर्वक मन्दिरके दरवाजेकी ओर लगे हैं। सूर्यकी किरणोंके तापके साथ-साथ मानो भक्तों के अनुरागकी तीव्रता भी बढ़ते-बढ़ते अब असह्य हो गई है। इसी समय शान्तिमय श्रीजगन्नाथदेवने अपने मृदु-मधुर, मुसकाते, प्रेम रससे सने मुख-चन्द्रमाके दर्शन करा सबके हृदय की ताप बुझा दी और अपने बांके नयन और कुटिल कटाक्षसे जन साधारणको प्रेमसागरमें डुबा दिया। शंख, घन्टा, मृदंग, मंजीरा, भेरी, तूरी आदिकी ध्वनि और भक्तोंकी गगनभेदी

हरिध्वनिसे त्रिभुवन परिव्याप्त हो गया । किसीके हृदयमें आनन्द समा नहीं रहा था । बाबाजी महाशय अभीतक अपनी भक्तमंडलीके साथ 'भज निताई गौर राधेश्याम, जप हरेकृष्ण हरेराम' नामकीर्त्तन कर रहे थे । श्रीश्रीजगन्नाथदेवका चांद-बदन देखते ही उनका मन भाव राज्यमें प्रवेश कर गया और उन्होंने गाना प्रारम्भ किया:—

जगन्नाथ मुख हेरि[१] गौर किशोर ।
राधिकार भावावेशे हइल विभोर ॥
स्वरूपेर कर धरि कहे धीरि धीरि ।
कि मोहन भंगि चेये देख सहचरि ॥
कालिया बरनखानि केवा निरमिल ।
अलका तिलका दिया केबा साजाइल ॥
भुरु जुग नहे जेन कामेर कामान ।[२]
आंखिठारे अबलार निल कुलमान ॥[३]
नासाय मुकुता दोले[४] मुखे मृदुहासि ।
हेरि सती कुलवती हते चाय दासी ॥
कहित कहिते गोरार भावान्तर हइल ।
राजबेश निरखिला व्याकुल हइल ॥
चल वृन्दावने बन्धु चल वृन्दाबने ।
गोपी सने रासलीला कर कुञ्जबने ॥
व्रजबासी दुःख हेरि विदरये[५] हिया ।

---

[१]देखकर, [२]दोनों भौहें कामदेवके बाणके समान, [३]नेत्रोंके कटाक्षसे मुग्ध अबलाके प्राणहर लिये हैं । [४]हिल रहा है । [५]फटा जाता है ।

पशु पाखी कांदे नाथ तोमा ना देखिया ॥
तृन नाहि खाय गाभी वत्स नाहि हेरे ।
अधोमुखे निरवधि तुया लागि भुरे ॥[1]
कांदिया[2] हइल अन्ध यशोमति माई ।
तुया नाम बिनु तार आन कथा नाई ॥
कानु कानु बले कांदे जत सखा गन ।
सान्त्वना करये ब्रजे नाहि हेन जन[3] ॥
ब्रजबासीगन तुया[4] परान समान ।
केमने[5] भूलिया रइले कठिन परान ॥
वृन्दाबने आनन्द-सिन्धु उथलय ।
इंहा एक बिन्दु नाहि मोर मने हय ॥
वृन्दाबने गोपसंगे नटवर बेश ।
इंहा हाथि घोड़ा रथ देखि राजबेश ॥
ब्रजे बंशीधारी इंहा सदा दंडधर ।
पात्र मित्र भृत्य, भये कांपे निरन्तर ॥
प्रेमहीन स्थाने भय मर्य्यादा संकोच ।
प्रेमेर स्वभाव साम्यभाव निःसंकोच ॥
ताइ बलि जांहानाहि भयेर संचार ।
तांहा चल उथलिबे प्रेमेर पाखार[6] ॥
एत बलि मुख पाने चाहिया रहिल[7] ।
आश्वास पाइया गोरा नाचिते लागिल ॥

---

[1] मुख नीचाकर निरन्तर तुम्हारे कारण रोतीं हैं। [2] रो-रोकर [3] सान्त्वना दे सके ऐसा ब्रजमें कोई भी नहीं हैं। [4] तुम्हारे। [5] कैसे [6] पवन। [7] इतना कह मुखकी ओर देखते रहे।

गाते-गाते बाबाजी महाशय आनन्दमें मधुर नृत्य करने लगे। जगमोहन आनन्दसे परिपूर्ण हो गया एक अपूर्व भाव था। हास्य भी और रोदन भी। हास्यकी हिल्लोल और आनन्दकी तरंगमें डुबकियां लगाते-लगाते नेत्रोंसे जल बह रहा था। प्राण व्याकुल होकर पुकार रहे थे 'काँहा करों काँहा जाओं, कांहा गेले तोमा पाओं 'इत्यादि। नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी। हृदयमें स्फूर्ति थी और मुखपर हँसी। आनन्दमें अधीर हो उद्दंड नृत्य कर रहे थे। विरह और मिलन यह दोनों भाव एक साथ दृष्टिगोचर हो रहे थे या क्षण-क्षणमें बदल कर एक दूसरेका स्थान ले रहे थे। इस प्रकार कुछ समय उद्दंड नृत्य-कीर्त्तनकर बाबा महाशय कोइलबैकुण्ठ नामक मन्दिरके भीतर एक निर्जन स्थानमें जा बैठे। इसी बीच बहुतसे भक्त नानाप्रकारका महाप्रसाद लेकर उपस्थित हुए। बलरामबाबू यथायोग्य महाप्रसाद एकत्रकर सबको परसने लगे। उपस्थित महाप्रसादसे सबकी उदरपूर्ति हो गई। प्रसाद पाकर सबने वहीं विश्राम किया। तीसरे पहर नरेन्द्र सरोवरमें स्नानादिकर सब लोग निवास स्थानको लौट आये।

उस दिन रात्रिमें हरिवल्लभबाबू वकीलके यहां सबका निमन्त्रण था। संध्याके बाद ही ये 'भज निताइ गौर राधे श्याम जप हरे कृष्ण हरे राम'कीर्त्तन करते-करते हरिवल्लभबाबू के मकान पर पहुंच गये। बैठक खानेमें बहुतसे प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस संप्रदायके कई सन्यासी भी थे। सभीकी इच्छा थी बड़े बाबा महाशयका कीर्त्तन सुननेकी। किसी-किसीके मनमें अनेक प्रकारके प्रश्न पूछनेकी इच्छा थी। किसीने यह जाननेके अभिप्रायसे कि बाबा महाशय वेदान्तमें

विश्वास करते हैं या नहीं बहुतसे प्रश्न पूछनेके लिये स्थिर कर रखे थे। हरिवल्लभ बाबूने मन ही मन संकल्प कर रखा था यह परीक्षा करनेका कि इनका किसी धर्म या धार्मिक व्यक्तिके प्रति विद्वेषभाव है या नहीं। इस प्रकार सबके भिन्न-भिन्न भाव थे। कोई किसीके मनोभावको जानता नहीं था। सबने सोच रखा था कि कीर्त्तन समाप्त होते ही अपने अपने प्रश्न पूछेंगे।

बाबाजी महाशय आध घंटा उद्दंड नृत्य-कीर्त्तन करनेके पश्चात् बैठ गये। क्षण भर बाद ही किसीके कुछ कहने सुननेकी अपेक्षा न कर फिर कीर्त्तन करने लग गये। हम पहले ही कह चुके हैं कि किसी प्रकारकी पद-पदावली मुखस्थ करके कीर्तन करनेका इनका कभी अभ्यास न था। जिस समय मनमें जो स्फूर्ति होती थी उसीके अनुसार कीर्त्तन करने लगते थे। आजका कीर्त्तन रस-कीर्त्तन नहीं था। पहले ही कीर्त्तन प्रारम्भ किया जो वेदान्त सम्बन्धी विचारोंसे परिपूर्ण था। ब्रह्म, आत्मा एवं भगवानका भेदाभेद ज्ञान और भक्तिका तारतम्य, ज्ञानके कितने प्रकार हैं; प्रकृत ज्ञानीका आचरण किस प्रकारका होता है, कीर्त्तनमें इन्हीं सब सिद्धान्तोंकी सुविवेचना होने लगी। वेदान्तिक महात्मागण जो अभी तक दूर बैठे थे पास खिसक आये। प्रश्न करनेका न किसीको अवकाश था न इसकी आवश्यकता ही रही। बाबा महाशय त्रिपदी,चौपदी और पयार छंदों में आप ही प्रश्न करते और आप ही उत्तर देते। पहले तो किसी किसीको ऐसा लगा कि इस भावका शायद कोई पद्य ग्रन्थ है जो उन्होंने कंठस्थ कर रखा है। परन्तु थोड़ी देर बाद सबकी समझमें आ गया कि उनकी यह धारणा निराधार थी। यह तो उनकी भगवत्‌दत्त शक्तिका ही प्रभाव था। सब लोग

विस्मित और स्तंभित होकर कीर्त्तन सुन रहे थे। बारी-बारी से सभी बाबू लोग और सन्यासीगण उत्फुल्लित हो रहे थे; क्यों कि उन्होंने बहुतसे शास्त्रोंका अध्ययनकर जिन प्रश्नोंको कठिन और पूछने योग्य समझा था उन्हीं प्रश्नोंका सुन्दर और सरल भाषामें सुर और तालके साथ उन्हें संतोषजनक उत्तर मिल रहा था। 'बलिहारी' 'वाहवा' और हरिध्वनिकी चारों ओर पुकार हो रही थी। एक-एक कर सबके प्रश्नोंका उत्तर हो गया। अन्तमें सर्वधर्मसमन्वय सूचक 'अद्वेष्ट सर्वभूतेषु।' 'अहिंसा परमोधर्म्मः।' 'अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।' 'समः सर्वेषु भूतेषु।' 'सर्वधर्मान्पारित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इत्यादि भगवद्गीताके महावाक्योंको लेकर कीर्त्तन होने लगा। इससे हरिवल्लभबाबू और उनके कई वकील मित्रोंके मनका संदेह भी मिट गया। इतना हो नहीं उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे और वे अपने शिक्षाभिमानको तिरस्कृत करने लगे।

इस प्रकार रात्रिके साढ़े ग्यारह बजे तक कीर्त्तन होता रहा और फिर सब मिलकर पहलेकी भांति 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' कीर्त्तन और उद्दंड नृत्य करने लगे। इसबार कोई बगैर कीर्त्तन किये न रहा। बाबू लोग, सन्यासी, वैरागी सब एक साथ कीर्त्तन करते-करते हाथसे ताली बजा-बजाकर नृत्य करने लगे। बारह बज गये पर किसी को कीर्त्तन समाप्त करनेकी इच्छा न हुई। बाबा महाशयने मानो भक्तोंके थक जानेके भयसे कीर्त्तन समाप्त किया। सब अपने-अपने प्रश्नोंका यथोचित उत्तर पाकर आनन्दित हो बाबा महाशयको प्रणामकर अपना-अपना मनोभाव व्यक्त करने लगे।

किन्तु बाबा महाशयका वही एक भाव था। वे प्रत्येक बातसे निताइ चांदका सर्वान्तरयामित्व, सर्वज्ञत्व, और सर्वैश्वर्त्व स्थापनकर अपना दीन भाव पोषण करते थे। सब लोग परमानन्द पूर्वक प्रसाद ग्रहणकर और बाबाजी महाशयको निकटसे दंडवतकर हरिनाम करते-करते अपने-अपने घर वापस गये।

श्रीश्रीरथयात्रा और श्रीचैतन्यदासका अप्राकट्य

आज श्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्रा है। चारों ओर चहल-पहल है। बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य समापनकर भक्त मण्डली सहित कीर्त्तन करते-करते श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिरमें जाकर उपस्थित हुए। कुछ देर जगमोहनमें कीर्त्तन हो चुकनेके पश्चात् बलभद्रदेव रथपर विराजमान हुए। क्रमशः सुभद्रादेवी और सुदर्शनचक्रने रथको सुशोभित किया। इनके पश्चात् थोड़ीही देरमें जगन्नाथदेव झूमते, नाचते, नर-नारियों का मन हरण करते सहास्य बदन, रथके निकट आये। बाबाजी महाशय अभी तक बाट जोह रहे थे। जैसेही जगन्नाथदेवका चन्द्रबदन दृष्टि-गोचर हुआ उन्होंने भावावेशमें मधुर नृत्य करते-करते पद कीर्त्तन आरम्भ किया.---

भावेते विभोर गौर किशोर,
नव नटवर राय।
स्वरूपेरे धरि, कहे धीरि धीरि,
देखरि सजनी आय॥
आसिछे कालिया, हेलिया दूलिया,

रसमय गुणधाम ।
चरने नूपुर, बाजिछे मधुर,
नवीन नाट्या ठाम ॥
कटिते किंकनी बाजे किनि-किनि,
पीतबास परिधान ।
गले बनमाला करियाछे आला,
रसिक नागर कान ॥
बहु दिन परे जाबे ब्रजपुरे,
ब्रजेन्द्र नन्दन हरि ।
पाइ रसराज, गोपिनी समाज ।
राखिबे हृदय भरि ॥

आनन्द की सीमा नहीं । जन समाजकी भीड़का ठिकाना नहीं । जगन्नाथदेव झूमते-झूमते एक तुलिकासे दूसरी तुलिकापर जा रहे थे । साथही उलुध्वनि,जय ध्वनि,शंख-घंटा-मृदग-मजीरा ध्वनिसे दिगमंडल विकम्पित हो रहा था । धीरे-धीरे जगन्नाथदेव रथपर आ विराजे । कैसी सुन्दर रथकी शोभा है । रथके ऊपर मणि-माणिक्य-जड़ित चन्द्रातप बंधा है । नाना प्रकारके झंडे फहरा रहे हैं । चारों ओर बहुमूल्य वस्त्रादि शोभा पा रहे हैं । झांझ, कांशर, भेरी, तूरी, मृदंग, मजीरा, शख, घंटा प्रभृति न जाने कितने किस्मके बाजे बज रहे हैं । पुरीके राजाका प्रतिनिधि पंडा सोनेकी झाड़ूसे रथके सामने झाड़ू लगता जा रहा है । निर्दिष्ट समयपर कालाबेठियागणने आकर रथकी रस्सी सम्हाली । इधर यात्रीगण भी रथ खींचनेके लिये व्यस्त हो रहे थे । चारों ओर लोगोंकी भीड़ रथमार्गमें समा नहीं रही थी ।

जगन्नाथदेवके मुखकी ओर देख कोई हंसता था, कोई फूट-फूट कर रोदन करता था, कोई आनन्दमें अधीर हो नृत्य करता था। देखकर बोध होता था कि श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकासे व्रजको जानेके लिये रथपर आरूढ़ हैं, इसीलिये द्वारकापुरवासी भावी-विरह चिन्तासे व्याकुल हो चारों ओर आर्तनाद कर रहे हैं।

राजकर्मचारियोंने बहुत चेष्टाकर रथके आगेकी भीड़को थोड़ा हटाया। तब रथ खींचनेका कार्य प्रारम्भ हुआ। दाऊजी मानों नन्दबाबाके घर जानेके लिये अति व्याकुल हो रहे थे। उनके रथकी रस्सी पकड़ते ही वह घड़-घड़ शब्दकर चल पड़ा और देखते-देखते बलगंड़ीपर जा पहुँचा। बलगंड़ीपर मानो बलभद्रदेवको भाईकी याद आई जो पीछे रह गये थे। उन्हें साथ लेनेके लिये वे थोड़ा रुक गये। बड़े भाईको जाते देख सुभद्रा भी उनके पीछे शीघ्रता से जाने लगीं। यह देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों जाते समय लक्ष्मीसे कुछ गुप्त वार्तालाप करनेके हेतु जगन्नाथजीने सुदर्शनचक्रको भी बहिनके साथ कर उन्हें भाईके पास भेज दिया। थोड़ीही देरमें सुभद्रा भाईके पास पहुंच गई परन्तु जगन्नाथजी अभी वहीं हैं। शायद लक्ष्मीदेवी उन्हें किसी प्रकार जानेकी अनुमति नहीं दे रही हैं। इस अवसर पर बाबा महाशयको सरल हृदय वाली व्रजगोपियों की मनोवेदना का अनुभव होने लगा और वे गाने लगे:—

जगन्नाथे हेरि आमार गोरा गुनमनि।
भावाबेशे बले जेन राई कमलिनी[१]॥

[१] जगन्नाथजी को देख हमारे गुणमणि गोराचांद मानो कमलमुखी श्रीराधाके समान कहने लगे।

वृन्दाबने चल वन्धु विलम्ब न कर।
व्रजबासीर दशा जाई नयने नेहार॥
अन्न नाहिं खाय केह पानी नाहिं पिये।
आशाय आछये प्राण पथ निरखिये॥
तृन नाहिं खाय गाभी नाहिं जाय दूरे।
उर्ध मुखे तुया लागि दिवानिशि झूरे[1]॥
ना चराय गाभी केह ना करे दोहन।
दुहिलेओ दुग्ध नाहि करे आवर्तन॥
आवर्तित दुग्ध केह दधि नाहि करे।
दधि करिलेओ केह ना जाय नगरे॥
दधि करि ब्रजनारी ना करे मन्थन।
मथिलेओ ननी[2] लेई करये रोदन॥
ब्रज भूमि हइल बंधु शोकेर आगर।
हासि विनिमये[3] सदा शुनि हाहाकार॥
तुया बिनु ब्रजे कारो ना रबे[4] जीवन।
एक वार ब्रजे चल ब्रजेर जीवन॥

गाते-गाते उच्च स्वरसे रोदन करने लगे। रोनेके स्वरसे चारों दिशायें गूँज उठीं। उसी समय मानो जगन्नाथदेव सोतेसे जाग पड़े। मन वृन्दाबनकी ओर चल पड़ा। रथ भी धीरे-धीरे उसी ओर जाने लगा। आनन्द-समुद्र उमड़ पड़ा। उलुध्वनि, जय-ध्वनि, शंख-घंटा-मृदग-मंजीरा-भेरी-तुरी प्रभृतिकी ध्वनिसे चारों दिशायें गूंज उठीं। आज वृन्दावन चांद वृन्दाबनमें उदित होंगे। ब्रजका विरह अंधकार मिट जायगा। यह जानकर भक्तोंके

---

[1]रोदन करती हैं। [2]मक्खन, [3]बदले, [4]न रहेगा

मनमें आनन्द नहीं समा रहा है और जगन्नाथदेवकी ओर देख-देखकर वह न जाने क्या-क्या कह रहे हैं। जगन्नाथदेव भी झूमते-झूमते कभी दाहिने और कभी बांयें दृष्ठिपात करते जा रहे हैं। आज सभी लोग एक नये भावसे विभावित हो रहे हैं। सभी एक नये आनन्दसे उन्मत्त हो मधुर नृत्य कर रहे हैं। बाबाजी महाशयको इस अवसरपर गौरांगदेवके सपार्षद मधुर कीर्त्तनका स्मरण हो आया। गौराँगचांद तो राधा रानी हैं और उनके भक्त सब ब्रज परिकर। आज वे सब मिलकर कृष्णचन्द्र को वृन्दाबन ले जा रहे हैं और भावावेषमें अनान्दसे नृत्य कर रहे हैं। इस लिये उन्होंने गाना प्रारम्भ किया:—

नाचि नाचि जाय, गोरा नटराय,
भावा वेशे ढुलि ढुलि।
चारिदिके कत[1] भक्त शत शत,
नाचे हरि हरि बलि॥
नाचे नित्यानन्द प्रेमानन्द कन्द,
गोरामुख निरखिया।
नाचये अद्वैत, श्रीवासादि जत,
आनन्द विभोर हइया॥
श्रीअच्युतानन्द स्वरूप रामानन्द,
नाचे मुकुन्द मुरारी।
राम भवानन्द, सेन शिवानन्द,
काशी मिश्रआदि करि॥
सार्वभौम संगे, नाचे मनोरंगे,

[1] कितने

वासुदेव वक्रेश्वर।
नाचे हरिदास, कालाकृष्णदास,
बाणीनाथ गदाधर ॥
श्री कमलाकर दास गंगाधर,
नाचे उद्धारन दत्त।
बैद्य विष्णुदास, श्रीगोपालदास,
नाचे प्रेमे हइया मत्त ॥
नाचे रामदास आर गौरीदास,
अभिराम आदि करि।
नाचे नरहरि गोरामुख हेरि,
भावावेशे घुरिफिरि ॥
जगन्नाथ हेरि आपना पाशरि,
नाचये भकत गण
हरि बोल, ध्वनि बिनु नाहि शुनि।
सबे आनन्दे मगन ॥

आनन्दकी अवधि नहीं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी भाव तरंगमें डुबकियाँ लगा रहे हैं। जगन्नाथ भी मानो आनन्द में झूमते हुए धीरे-धीरे चले जारहे हैं। मानों आनन्दका बाजार लगा है। धीरे-धीरे जगन्नाथदेव राजबाड़ीके सामने आ पहुंचे। वहाँ पंक्ति भोग लगा। बाबा महाशयके मनमें न जाने कौनसा भाव उदय हुआ। साथियोंको चुपचाप छोड़ उदास भावसे धीरे-धीरे रामचडीगलीमें प्रवेशकर स्थानीय पोस्टआफिसके हेड क्लर्क बाबूगोपालप्रसाद दत्त महाशयके बरान्देमें जा बैठे। अति गंभीर भाव था। न मुखपर हसी थी और न शब्द। सभी चिन्ता सागरमें निमग्न थे। रास्ता चलने वाले लोगोंको किसीको

उनकी तात्कालिक अवस्था देख कुछ कहने या पूछनेका सहास नहीं होता था ।

आज आठ मास हुए उनके अन्तरंग भक्त श्रीचैतन्यदास रोगी अवस्थामें गुरप नगरसे इनका साथ छोड़ पुरी पधारे थे। उन्हें बड़े हरिबाबूके पुराने डाकघरके पश्चिम भागके एक कमरेमें ठहराकर उनकी सेवा शुश्रूषा हो रही थी। वे सदा अपनेको दासी समझ गोपी भावसे उपासना करते थे। गुरुमें उनकी अनन्य निष्ठा थी—गुरु सेवा ही उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। गुरुके अतिरिक्त और वे कुछ नहीं जानते थे। श्रीनिवास आचार्य प्रभुके प्रति रामचन्द्र कविराजकी जिसप्रकार की निष्ठा थी श्रीचैतन्यदासकी भी ठीक उसी प्रकारकी निष्ठा थी। शयनमें,स्वप्नमें, आहार-विहारमें, आलाप-विलापमें उनके मुखसे गुरुके अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं सुना जाता था। उनकी सेवाके लिये नवद्वीपदादाने जयगोपालदासको नियुक्त किया था। जयगोपाल भी नवद्वीपदादाके आदेशसे प्राणसे उनकी सेवा करते थे। चैतन्यदासकी कृपा ही जयगोपालका एक मात्र अवलम्ब था। चैतन्यदाससे ही बाबा महाशयके पारषदों में गोपीभावकी उपासना चली थी।

आज चैतन्यदासकी अवस्था बहुत शोचनीय है। उनके जीवनकी आशा भी करीब-करीब जाती रही है। जयगोपाल जब उन्हें पथ्य देनेके लिये निकट गये तो देखा कि उनकी अवस्था बहुत खराब हो रही है। जयगोपाल बालक ही थे। इस लिये उनकी अवस्था देखकर बहुत घबरा गये। उसी समय चैतन्यदासने बहुत प्रकारसे जयगोपालको सान्त्वना देते हुए कहा 'तुम्हारे भयका कोई कारण नहीं है। तुम एक बार मुझे प्राण-

प्रियतम श्रीगुरुदेवके दर्शन करा दो। तभी मैं जानूंगा कि तुम मेरे परम बंधु हो। मेरे मनमें बड़ी अभिलाषा है कि अन्तिम समय श्रीगुरुदेवके चरण दर्शन करते-करते शरीर त्याग करूं। मैं प्रभुके चरणोंमें प्रार्थना करता हूं कि वे स्वप्नमें भी दुष्प्राप्य अप्राकृत वस्तु तुम्हें प्रदान करें। तुम्हें और क्या दे सकता हूं ? गुरुदेवने कृपाकर मुझे जो भाव रत्न प्रदान किया था उसे मैं अकपट हृदयसे तुम्हें प्रदान करता हूँ। तुम यह मधुर भाव अवलम्बन कर कुछ दिन अप्राकृत जगतमें रह अप्राकृत चिन्मय राज्यकी परम सुखमय वस्तु का आस्वादन करो।' इतना कहते-कहते वे नीरव हो गये।

इधर नवद्वीपदादा रथके आगे बाबा महाशयको न देख कर घर वापस आये। वहाँ भी उन्हें न पाकर तुरन्त चैन्तयदास के पास गये। वहां देखा कि उनकी अवस्था बहुत शोचनीय हो रही है। जयगोपालसे जब सारा वृतान्त सुना तो फिर बाबाजी महाशयकी खोजमें निकल पड़े। कुछ ही दूर जाकर देखा कि वे गोपालबाबूके वरान्देमें उदास बैठे हैं और किसी विशेष चिन्तामें निमग्न हैं। निकट जाकर बोले 'चैतन्यकी अवस्था ठीक नहीं है। वह एक बार आपके दर्शन करनेके लिये व्याकुल हो रहा है।' बाबा महाशय निरुत्तर थे। नवद्वीपदादा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो फिर चैतन्यके पास लौट आये और जयगोपालको उनके पास भेज दिया। स्वयं चैतन्यके शरीरको द्वादश तिलक नामांकित छापेसे विभूषित किया। जयगोपाल तो बालक था। बाबाजी महाशयके सामने जाते डरता था और उनसे बातचीत करनेका उसे बिलकुल अभ्यास न था। किन्तु आज नवद्वीपदादा के आदेशके साथ-साथ न जाने क्या शक्ति उसे मिल गई कि

सीधे उनके सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला 'आप कैसे महापुरुष हैं ? एक व्यक्ति अन्तिम समय आपके दर्शन करना चाहता है और आप निश्चिन्त होकर यहां बैठे हैं। शीघ्र चलिये।' यह सुन महापुरुषके मनमें न जाने क्या विचार आया। वे जयगोपालके साथ जाकर चैतन्यके सिरहाने खड़े हो गये। नवद्वीपदादा बोले 'चैतन्य ! दादा आ गये।' चैतन्यदास कुछ बोल न सके। आंखोंके इशारेसे उनसे अपने पैरोंकी ओर खड़े होनेको कहा। बाबा महाशय काठकी पुतलीके समान चैतन्यके पैरोंके पास जाकर खड़े हो गये। चैतन्यदासने आकर्ण विस्तृत नयनोंसे एक बार बाबाजी महाशयको ऐड़ीसे चोटीतक निहारा और फिर उनके मुखकी ओर एकटक देखते रहे। नवद्वीपदादा बाबा महाशयका दाहिना चरण उठा चैतन्यके सीने पर रखने लगे। उस समय देखाकि छातीपर कई कागज रखे हैं जो चादर से ढके हैं। तब कागज हटाकर छातीपर चरण रख दिये। चैन्तयदास सजल नेत्रोंसे बाबाजी महाशयके चरणोंमें क्षमा प्रार्थनाकर मानों अन्तिम बिदा मांगने लगे।

बाबाजी महाशय अभीतक निश्चल, निस्पन्द, स्थिर, धीर भावसे खड़े थे। अब मानों हृदयका बांध टूट गया। प्रेम-सिन्धु उथल पड़ा। नेत्रोंके जलसे मुख और वक्षःस्थल भीग गया। गद्गद् कन्ठसे कहने लगे 'चैतन्य रे ! मुझे परित्यागकर चिर-शान्तिमय राज्यमें प्रवेश करने जा रहा है। मैं और क्या कहूँ ? तेरे जन्म-जन्मार्जित जितने भी पाप ताप और अपराध हैं सब मैं ग्रहण करता हूँ। तू निर्मल और विशुद्ध अन्तःकरणसे परम दयालु निताई चांदके पार्षदोंमें रहकर अपने अभिलषित भावके अनुसार प्रार्थित वस्तु आस्वादन कर।'

इधर श्रीश्रीजगन्नाथदेवका रथ कुन्डाबेंटसाहीके सामने आकर खड़ा हो गया। अभीतक बाबाजी महाशयके प्रिय शिष्य रामदास सदलबल रथके आगे कीर्त्तनकर रहे थे। एकदम ऐसा आकर्षण हुआ कि उद्दंड नृत्य करते-करते सब चैतन्यदासके निकट जा पहुँचे और वहाँ एक अपूर्व दृश्य देखा! चैतन्यके आकर्ण विस्तृत नयन-भृंग-युगल बाबाजी महाशयके मुख-कमलका मधुपान कर विभोर हो रहे हैं। अपने वक्षःस्थलपर बाबाजी महाशयके चरण-कमलका स्पर्श पा वे आनन्द सागर में डुबकी लगा रहे हैं। मुखपर मधुर मुस्कान है और सर्वांग पुलकसे परिपूर्ण है। मनुष्यजीवनके चरमलक्ष्यको प्राप्तकर उनका शरीर बार-बार कांप उठता है, मानो वे परम करुण श्रीगुरुदेव की करुणाके उज्ज्वल दृष्टान्तसे सर्वसाधारणको अवगत करा रहे हैं। सब उच्च कंठसे 'हा! निताईगौर राधेश्याम, हा! हरेकृष्ण राधेश्याम, का जाप,करते-करते अविरल अश्रुधार बहा रहे हैं। एकदम चैतन्यदासका सारा शरीरकांप उठा। दोनों नेत्रविस्फारित हो गये। मुखकी मधुर मुस्कान और अधिक उज्ज-वल भाव सहित प्रकाशित होनेलगी। कुछ विस्मित भावसे वे एकटक बाबा महाशयकी ओर देखने लगे। देखते-देखते शरीरसे श्वास निकल गई,देहका स्पन्दन बन्द हो गया, हृदयमें आवेश न रहा, प्राणोंमें व्याकुलता न रही, नेत्रोंकी भंगी न रही! जय-गोपाल उनके कानमें उच्च स्वरसे श्रीगुरुदेवका नाम सुनाने लगा। बाबा महाशय अबभी पूर्ववत स्थिर भाव से खड़े रहे। अपूर्व दृश्य! इसे मृत्यु कहें या नवजीवन-प्राप्ति! देह त्याग कहें या देह-धारण! अभाव कहें या भावमें प्रवेश! अप्राकट्य या निर्विकल्प-समाधि! अशान्ति या चिरशान्ति! निरानन्द या परमानन्द! उपेक्षनीय या वांछनिय! अन्तिम काल या

प्रथमकाल ! सभी अनिमेष नयन चैन्तयदासके मुख की ओर देखरहे हैं और उनके भाग्यकी भूरी-भूरी प्रशंसाकर रहे हैं। धीरे-धीरे उनका मुख और उज्ज्वल हो गया। सबके नेत्रोंसे अश्रु-धार बह रही है, सबका कंठ गद्गद् है और मुखसे उच्चारित हो रहा है:—'हा निताई गौर राधेश्याम। हा हरे कृष्ण हरे राम।' इस प्रकार प्राय आध घंटा बीत गया। नवद्वीपदादाने चैतन्यके सीनेपर से चादर हटाकर देखा कि नीचे दो कागज हैं। एक पर श्री गुरुबन्दना और श्रीगुरुप्रणाम और दूसरेपर श्रीगुरुदेवके एक लाख नाम लिखे हैं। सब देखकर अवाक्! इस प्रकारकी गुरु निष्ठा और गुरु-भक्ति संसारमें दुर्लभ है। बाबाजी महाशय एक ओर बैठे साश्रु नयन और गदगद कंठसे चैतन्यदासके गुणोंकी प्रशंसा करते-करते बोले 'कृपामय निताई चांदने मुझे ऐसे निष्ठा-वान् भक्त का संग दे क्यों उसे अंगीकार कर मुझे उसके संग सुखसे वंचित कियर वे ही जाने।'

समय अधिक होता देख सुचतुर गोविन्ददादाने चैतन्यके देहको बाहर लाकर एक चौकीपर लिटा दिया। उसी समय कोई श्रीजगन्नाथदेवकी प्रसादी माला, चरन-तुलसी और कुछ महा-प्रसाद लेकर आया। माला बाबा महाशयके गलेमें पहनादी। बाबा महाशयने तुरन्त वह माला चैतन्यके गलेमें डाल दी। चारों ओरसे भक्तगण 'जयनिताई' की ध्वनि करने लगे। राम-कृष्णदास बाबाजीने चरण-तुलसी और महाप्रसाद थोड़ा-थोड़ा सबके मुखमें देकर फिर वही अधरामृत चैतन्यके मुखमें दिया। बाबा महाशय चैतन्यके प्रति जगन्नाथदेवकी भी कृपा देख उसके भाग्यको सराहने लगे। थोड़ी देर बाद सबलोग चैतन्यदासको लेकर नाम करते-करते समुद्रके तीर पर पहुंचे। बाबा महाशय

अपने हाथसे देहको समुद्र जलसे स्नान कराया। पश्चात् प्रसादी डोर-कौपीन और बहिर्वास पहनाकर उसे छातीसे लगा उद्दंड नृत्य करने लगे। आहा! अपूर्व वात्सल्ल! चैतन्यदासका मस्तक बाबा महाशयके कंधेपर है, हाथ गलेमें लिपटे हैं और उनके हंसते हुए मुखारबिन्दको देखकर प्रतीत होता है कि वे चिरअभिलषित, देव-दुर्लभ श्रीगुरुदेवके प्रेमालिगनको प्राप्तकर चिरशान्ति-सागरमें निमग्न हैं। बाबा महाशय इसी प्रकार प्रेमोन्मत्त हो बहुत देर तक उद्दंड नृत्य करते रहे। किसकी शक्ति थी जो चैतन्यके देहको उनसे ले सकता। उनकी यह अवस्था देख श्री हरिदास ठाकुरके निर्वाणकी स्मृति सबके मनमें जाग गई। जब बाबाजी महाशय कुछ स्थिर हुए तो गोविन्द दादाने चैतन्यके देहको इनसे लेकर काष्ठ शैयापर लिटाया। सबके नेत्रों से जलकी वर्षा हो रही थी, और मुखसे हाहाकारका शब्द निकल रहा था। यथासमय सत्कार क्रिया प्रारम्भ हुई। सब अश्रु-गद्-गद्-कंठसे 'हा! निताई गौर राधेश्याम, हा हरे कृष्ण हरे राम' गान करते-करते चैतन्यके चारों ओर परिक्रमा करने लगे। अपूर्व चन्दन गंधसे चारों दिशायें आमोदित हो गईं। उपस्थित जन साधारण इस आश्चर्य्यजनक व्यापारसे अत्यन्त विस्मित हुए।

चैतन्यदासकी तात्कालिक क्रिया समाप्तकर सब लोग घर लौटे। उस दिन बाबा महाशय जिसे भी देखते उसीसे शत मुख से चैतन्यदासके गुणोंका वर्णन करते।

इस बार श्रीजगन्नाथदेव कुछ मन्थर गतिसे यात्रा कर रहे थे। बाबाजी महाशय प्रतिदिन सदल-बल रथके आगे कीर्त्तन करते थे। श्रीजगन्नाथदेवने धीरे-धीरे चलकर अष्टमीके दिन

संध्या समय गुंडीचा मन्दिरमें प्रवेश किया। पुरीवासी जन-साधारणके आनन्दकी सीमा नहीं। नाना प्रकारके भोगरागकी धूम मच रही है। सात आठ दिन बाद जगन्नाथदेवका प्रसाद ग्रहणकर सब परमानन्दित हैं। कई दिन पश्चात् गुंडीचा मन्दिर परित्यागकर जगन्नाथजी अपने मंदिर पधारे।

साथियों के प्रति बाबा महाशयका आदेश था—प्रातः समुद्रस्नान एवं श्रीश्रीजगन्नाथदेवके मंदिरमें संकीर्त्तन, मध्यान्हमें लालाबाबूके क्षेत्रमें और दूसरे क्षेत्रोंमें अलग-अलग दो-दो चार-चार मूर्तियों द्वारा महाप्रसाद सेवन, संध्या समय आश्रममें नाम-संकीर्त्तन, संध्या-आरती-कीर्त्तन इत्यादि। आनन्द मयके साथ सभी कुछ आनन्दमय था। इतना परिश्रम करनेपर भी किसीको आनन्दका अभाव प्रतीत नहीं होता था। इस प्रकार परमानन्दपूर्वक दिन बीत रहे थे।

प्रेमानन्द-सम्वाद

एक दिन बाबाजी महाशय कई साथियोंको ले कीर्त्तन करते-करते लालाबाबूके क्षेत्रकी ओर जा रहे थे। उसी समय उस क्षेत्रके पास वाले मकानसे एक बाबू और उनके साथ एक वैष्णव मूर्ति निकले और बाबा महाशयको बहुत आग्रह कर अपने घर ले गये। थोड़ी देर कीर्त्तन करनेके पश्चात् बाबूके अनुरोधसे सब लोग एक कमरेमें बैठ गये। बाबूने सबको दंडवत् प्रणाम कर पूछा—आप लोग सब किस ओर जा रहे थे ?

बाबाजी— बाबा ! हम लोग कंगाल हैं। लालाबाबूके क्षेत्रमें महाप्रसाद लेने जा रहे थे।

बाबू—यदि दासको आदेश हो तो कुछ महाप्रसाद मगा आप लोगोंकी सेवाकर कृतार्थ हो।

बावाजी---हम लोग तो 'उदर पूरण आशे, कपट वैष्णव वेशे, भ्रमिया बेड़ाई घरे घरे' हमलोगोंको आपत्ति ही क्या हो सकती है। 'एक अंग साधे किबा साधे बहु अंग'हमलोग भक्तिके चौसठ अंगोंमेसे और किसी अंगका पालन चाहे करें या न करें पर महाप्रसाद सेवनमें हमारी विशेष निष्ठा है। यहाँ तक कि महाप्रसाद सेवनमें हमें अश्रु, कम्प, पुलकादि भी होने लगते हैं।

बाबू बाबा महाशयकी दैन्योक्ति सुन और भी उनके प्रति आकृष्ट हुए और पूर्वोक्त वैष्णव मूर्त्तिको महाप्रसाद ले आनेके लिये मंदिर भेजा। तब बाबा महाशयने पूछा, 'तुम्हारा निवास स्थान कहां है ?'

बाबू—दासका निवास स्थान रंपुर जिलेमें है और नाम है प्यारी मोहनदास।

बाबाजी—नाम तो बड़ा मधुर है। क्या काम करते हैं ?

बाबू---आपने कृपा कर कुछ विषय सम्पत्ति दे रखी है। उसीसे काम चलता है। और कुछ काम करनेकी आपने शक्ति भी नहीं दी है। अब श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना है कि विषयभोग से मुक्ति प्रदान कीजिए। बहुत विषय भोग हो लिया है।

बावाजी—स्त्री, पुत्रादि क्या सब घरपर ही हैं।

बाबू—उसमें भी आपकी यथेष्ट कृपा ही है। केवल एक बहिन है। उसे किसी धाममें छोड़कर मैं निश्चिन्त हो जाऊंगा।

बाबाजी—प्रभु जिसके ऊपर कृपा करते हैं ऐसा ही होता है। अच्छा आप कबसे श्रीधाममें बास कर रहे हैं ?

बाबू—केवल चार माससे । रथके समय आपके दर्शन किये थे, परन्तु आलाप करनेका सुयोग नहीं हुआ । आज आपने कृपाकर सुयोग दिया है और आपही ने कृपाकर शक्ति-संचार किया है जिससे आपसे बात करनेका साहस हो रहा है । मैं तो घोर पापी और पाखंडी हूँ, मेरे समान व्यक्तिके लिये तो आपके दर्शन ही असंभव हैं ।

बाबाजी—बाबा ! यह तो सब निताईचांदका खेल है । हम लोग उनकी कटपुतली मात्र हैं । वे जब जिस प्रकार नचाते हैं, इच्छा हो चाहे न हो, हमें वैसे ही नाचना पड़ता है । उन्होंने हमारे परस्पर मिलनके लिये आजका दिन निर्धारित कर रखा था । इसके पहले बहुत चेष्टा करनेसे भी क्या होता ।

इसी बीच महाप्रसाद आ गया । महाप्रसाद सेवनकर सब लोग विश्राम करने लगे । प्यारीबाबू भी महाप्रसाद ग्रहण कर बाबाजी महाशयके पास जा बैठे । उनके मनमें बहुत सी बातें आ रही थीं जिन्हें वे उनसे कहना चाहते थे पर उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी । एकदम बाबा महाशय उनकी ओर उन्मुख हो कहने लगे 'जान पड़ता है तुम कुछ कहना चाहते हो । स्वच्छन्दता पूर्वक कहो, संकोच करनेकी कोई आवश्यकता नहीं ।' यह सुन प्यारीबाबू प्रसन्न हो बोले 'मेरे समान पतित जीवको क्या करना चाहिये जिससे वह सहजमें भगवत् पथपर अग्रसर हो सके । लोग तो तरह-तरहके उपाय बताते हैं, पर मुझे तसल्ली नहीं होती । आप कृपाकर मेरे हृदयका भ्रम दूर करें ।'

बाबाजी—हमारे समान दुर्बल, कलिहत, पापासक्त और मायामुग्ध जीवोंके लिये नाम—संकीर्त्तन छोड़ कोई और

उपाय नहीं है। इस संबंधमें गोस्वामियोंने बहुतसे शास्त्र प्रमाण दिये हैं। श्रीचैतन्यचरितामृतके अन्त्य खंड के बीसवें परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमुखसे इस सम्बन्धमें जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है उसकी बहुत ही सरल व्याख्या मैंने श्रीगुरुदेवसे सुन रखी है। उसीको कहता हूं। सुनो—द्वापरके अवसानकाल में परम पराक्रमशाली कलिराजने राज्याधिकार प्राप्त करतेही देखा कि प्रजामें विद्रोह फैला है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अधर्म, पापलिप्सा, अज्ञान, हिंसा, परनिन्दा आदि प्रधान कर्मचारीगणोंसे नित्य प्रजाकी शिकायत सुनते-सुनते उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने कर्मचारियोंको आदेश दिया 'चाहे जिस उपायसे भी क्यों न हो प्रजाको शीघ्र मेरे वशमें करो।' कर्मचारीगण राजाका आदेश पाकर प्रजापर कठोर शासन करने लगे। उनके उत्पीड़नसे प्रजा मृत प्राय हो गई। जीवगण कलिराजसे भयभीत हो अपना-अपना धर्म-कर्म छोड़ नाना प्रकारके पाप कार्य करने लगे। पृथ्वी शोकाकुल हो धर्मके निकट गई तो देखा कि धर्मरूपी वृष त्रिपदभग्न अवस्थामें एक टांगसे मुमुर्षुभाव ग्रहणकर खड़े हैं। दोनोंने एक दूसरेसे अपने-अपने दु:खकी कहानी कही और एक दूसरेसे परामर्शकर विष्णुभगवान् की अदालतमें जीवोंके विरुद्ध फौजदारी का मुकदमा दायर किया।

जीवोंने न्यायालयमें उपस्थित होकर कहा 'धर्मावतार! इस संबंधमें हमारा तनिक भी दोष नहीं। हम लोगोंको कलिराजके कठोर शासनसे उत्पीड़ित हो अनिच्छावश नाना प्रकारके पाप-कर्म करने पड़ रहे हैं कलिके शासनमें रहते हुए हमारे लिये किसी भी प्रकारका धर्माचरण संभव नहीं है। अतएव

हुजूरसे प्रार्थना है कि हमारी अवस्थाके अनुरूप व्यवस्था कर दी जाय। न्यायाधीशने दोनों पक्षोंकी दलीलें सुननेके पश्चात् प्रधान सरकारी कर्मचारी भक्त प्रवर राजा परीक्षित के ऊपर कलिराज पर शासन करनेका भार सौंपा और जीवोंके प्रति काम्य कर्म, वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, व्रत, नियम-निष्ठा, तीर्थपर्यटन आदि याजन करनेका हुकुम जारी किया। राजा परीक्षितने सुयोग पाकर कलिराज पर निग्रह करते हुए जीवों पर अत्याचार न करनेका आदेश किया।

जीवगण फिर धर्म-कर्ममें प्रवृत्त होने लगे। यह देख कलिराज और कोई उपाय न देख सूक्ष्मरूपसे चतुराईके साथ अपने अधिकार का विस्तार करने लगे। दुर्बल जीव कलिराज की छलतासे उनके वशीभूत हो अनजाने फिर पाप-पथकी ओर अग्रसर होने लगे। पृथ्वी पूर्ववत् पाप भारसे कातर और अति-वृष्टि अना-वृष्टि आदि से जीर्ण-शीर्ण हो गई। वह इन्द्रदेवके पास गई और उनसे इस सब व्यतिक्रमका कारण पूछा। इन्द्रदेव बोले 'इस अनर्थका एक मात्र कारण है जीवोंका यज्ञादि द्वारा देवताओंको उनका प्राप्य अंश न देना।' यह सुन पृथ्वीने द्वारकामें जज कोर्टमें जीवोंके विरुद्ध अभियोग किया। जजसाहब श्रीकृष्णचन्द्रने जीवोंसे इस सबका कारण पूछा। जीव बोले 'महाराज! इसमें हमारा तनिक भी दोष नहीं। विशुद्ध घृतादि और उपयुक्त आचार्योंके अभावके कारण यज्ञादि संभव नहीं। कलिराजके उत्पीड़नसे हमारे हृदय इतने दुर्बल हो गये हैं कि व्रतोपवासादि हमसे नहीं बनते, और मन्त्र तथा मान्त्रिकके असंस्थानके कारण कर्मादिकों के अनुष्ठान नहीं बनते। अतएव हमारी अवस्था देख हजूर जो मुनासिब समझें करें। जज साहब जीवोंकी बेबसी देख और उनके प्रति कृपा परवश हो बोले।

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

'हे जीवों! तुम भय न करो। तुमसे यज्ञ और धर्म-कर्म इत्यादि नहीं बनते तो तुम इन सबका परित्यागकर अनन्य भाव से मेरी शरण ग्रहण करो। मैं सभी पापोंसे तुम्हारा उद्धारकर तुम्हें मुक्ति प्रदान करूंगा।' जजका फैसला सुन वादी-प्रतिवादी दोनों पक्ष प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। परन्तु मूढ़ जीव भगवद्वाक्यका यथार्थ अर्थ न समझकर धर्म कर्मादि परित्याग कर बैठे और यथेच्छाचारी हो गये। भगवद्वाक्यके एकांश अर्थात् सर्वधर्मके परित्यागका विशेषरूपसे याजन करने लगे। यहाँ तक कि देव-द्विज-गुरु वैष्णवादिके प्रति अविश्वास, तीर्थोंके प्रति अश्रद्धा और वेदादिकी अवज्ञा करने लगे और घोर पाखंडी बन गये। भगवद्वाक्यके दूसरे अंशका जिसमें अनन्यभावसे शरणापन्न होनेका आदेश किया था विस्मरण कर बैठे। इसलिये अधर्मभाव अत्यन्त प्रबल हो गया और पृथ्वीका पापभार पहलेकी अपेक्षा और अधिक बढ़ गया। पृथ्वीने देखा कि किसी भी प्रकार जीवोंको धर्म-पथपर लाना संभव नहीं हो रहा है। नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करना, धन उपार्जन करना और पुत्र कन्यादिके विवाहादिमें व्यय करना ही उनके जीवनका उद्देश्य बन गया है। दान, व्रत, जप, तप, नियमादि लुप्त प्राय हो गये हैं। यदि कोई-कोई कुछ अनुष्ठान करते भी हैं तो वह दम्भ और अहंकारसे परिपूर्ण होता है। इसलिये उनका फल विपरीत होता है। बहुत सोच विचार करनेके पश्चात् पृथ्वी ज्ञानावलम्बी महापुरुषोंके पास गई। उनसे अपनी दुःख भरी कहानी कही और जीवोंके सतपथ पर लगानेकी व्यवस्था करने

की प्रार्थनाकी। उन्होंने पृथ्वीको अभय प्रदान कर उचित व्यवस्था करनेका आश्वासन दिया और ततपश्चात् वह शंकराचार्यकृत ब्रह्मसूत्रके भाष्यका प्रचारकर निराकार वादके सिद्धान्तसे जगत्को प्लावित करने लगे। पर लोगोंने 'तत्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' प्रभृति महावाक्योंको केवल मुखस्तकर लिया। इनके अनुरूप आचरणकी तनिक भी चिंता न कर भोग विलासादिमें रत रहने लगे।

इस प्रकार जब पृथ्वीका पाप भार बढ़ कर उसके लिये बिलकुल असह्य हो गया तब परम दयालु प्रभु ब्रज-बिलास परित्यागकर श्रीमती राधिकाकी भावकान्ति अंगीकार कर, श्रीधाम नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए। पृथ्वीने सोचा कि अब मेरे दुर्दिन समाप्त हुए। यह नया हाकिम परम दयालु है। इसके कोर्टमें अपील करनेसे मेरी सुनवाई अवश्य होगी। इसलिये वासुदेव सार्वभौम, प्रकाशानन्द सरस्वती आदि बड़े-बड़े बारिस्टरोकी सहायतासे उसने श्रीगौरांगदेवके हाईकोर्टमें अपीलकी। जीवोंने भी देखा कि यदि इस अन्तिम कोर्टका भी उनके लिये कुछ कठोर आदेश हुआ तो बड़ी चिंताकी बात होगी। इस बार विशेषरूपसे मुकदमेंकी पैरवी होनी चाहिये। इसलिये उन्होने श्रीनिताई, अद्वैत और हरिदास यह तीन बैरिस्टर किये। बहस प्रारम्भ हुई। फरियादीके पक्षके बैरिस्टरोंने जीवोंके बिरुद्ध बहुतसी नजीरें पेशकीं। जजने दोनों पक्षोंकी दलीलें बड़े ध्यानसे सुनी और फिर वह स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द इन दोनों सरकारी वकीलोंसे परामर्श करने लगे। इन्होंने फरियादी के बैरिस्टरके मतका खंडन किया। सुकौशली विचारकने किस भी पक्षको कष्ट न हो यह सोचकर फैसला जुरीके ऊपर छोड़

दिया। सात जूरी नियुक्त हुए-श्रीनिताई, अद्वैत, हरिदास, स्वरूप-दामोदर, रामानन्द प्रकाशानन्द सरस्वती और वासुदेव सार्वभौम। परन्तु जूरीने आग्रह किया कि उनके विचार कर लेनेपर भी अन्तिम निर्णय का भार जजसाहब पर ही होगा। हाकिमने इस बातको स्वीकार किया। बहस प्रारम्भ हुई। जजने दोनों पक्षोंकी दलीलें ध्यानसे सुनी और जूरीका मत लेकर अन्तिम फैसला कर दिया:—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥'

हर्षे प्रभु कहे शुन स्वरूप रामराय।
नाम संकीर्त्तन कलौ परम उपाय॥
संकीर्त्तन यज्ञे करे कृष्ण-आराधन।
सेई त सुमेधा पाय कृष्णेर चरन॥
नाम संकीर्त्तन हैते सर्वानर्थनाश।
सर्व शुभोदय कृष्णे परम उल्लास॥
संकीर्त्तन हैते पाप संसार नाशन।
चित्त शुद्धि सर्व भक्ति साधन उद्गम॥
कृष्ण प्रेमोद्गम प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृत-समुद्रे मज्जन॥

यह फैसला सुन नित्यानन्द और हरिदास आनन्दसे नृत्य करते-करते बोले:—

'पतित पाखंडी स्त्री जवन ए जगते।
उद्धार हइल श्रीचैतन्य-कृपा हइते॥

आचण्डाले नाम प्रेम दिया कैल धन्य।
ऐछे दाता दयालु श्रीकृष्ण चैतन्य॥

अहा ! कैसा सुन्दर निर्णय है महाप्रभुके इस न्यायालय का। न्यायालय क्या है करुणालय है ! न्यायाधीशका मुखकमल जैसे करुणारूपी अमृत बरसानेवाला अकलंक पूर्णचन्द्र है, भक्तोंके चित्तको हरषाने वाला मकरन्दपूर्ण हेम-कमल है, पाखंड रूपी विकारका नाश करने वाली सुतीव्र औषधि है या भक्तोंके हृदयकी चिन्ता मणि है ! उनकी अतुलनीय सौन्दर्यशाली प्रेममय मूर्त्तिके दर्शनकी बाततो दूर रही उसके एक बार हृदयमें उदय होते ही सभी आसामी मुक्तिलाभ करते हैं-फरियादी शान्तिरससे प्लावित हो जाते हैं, वकील प्रेममें विह्वल हो जाते हैंऔर साक्षीगण निर्भीक और आनन्दमय हो जाते हैं। न्यायाधीशने सरकारी वकीलोंसे कहा 'देखो, जीवगण तो अनादिकालसे मोह-कारागारमें बन्द हैं ही। उन्हें मैं और क्या दंड़दे सकता हूँ। मेरे विचारसे जिस प्रकार उन्हें कारागारसे मुक्ति मिल सके हमें ऐसा उपाय सोचना चाहिये। तुम उन लोगोंसे कह दो कि वे केवल एक बार 'हरे कृष्ण' नाम उच्चारण करें। वे चिर-कालके लिये मुक्त हो जायेंगे। न्यायाधीशका यह अपूर्व करुणा पूर्ण आदेश सुन वकील प्रेम-पुलकित और उत्फुल्लित हो मोह-कारागार ग्रस्त, मायाबद्ध जीवोंको सम्बोधित कर उच्च कंठसे घोषणा करने लगे, 'देखो जीवों, तुम एक बार हरे कृष्णनाम उच्चारण करो। परमदयामय न्यायाधीश अशेष यन्त्रणादायक इस महान कारागारसे तुम्हें सदाके लिये मुक्त कर देंगे।' यह शुभ संवाद सुन कोई तो आनन्द विह्वल हो मन और प्राणसे हरिनाम करने लगे। कोई मुखसे तो हरिनाम करने लगे पर

उनका हृदय प्लावित नहीं हुआ। मन और प्राण नाम-प्रेम रसमें डूब न सके। किसी-किसीने जैसे इस घोषणाको सुनकर भी नहीं सुना और बोले 'मौजसे तो कट रही है। नाम आम लेनेसे क्या होगा।' किसीने कहा 'नाम लेनेमें हमें आपत्ति नहीं पर समय कहां है। सारा दिन तो संसारिक कार्योंमें लगे रहते हैं, नाम लें किस समय ? यह सब काम तो उनके लिये हैं जिन्हें और कोई काम ही नहीं। भगवानने दो हाथ-पैर दिये हैं, जिससे मेहनत मजूरीकर पेट भर सकें। यदि सभी लोग साधु हो जायेंगे तो संसार कौन करेगा ?' निताई चांदने सोचा, चिरकालसे कारागारमें रहते-रहते जीव इसीको सुखका स्थान समझने लग गये हैं। इन्हें कारागारसे मुक्ति पानेकी बात अभी समझमें न आयेगी। यह तो कहेंगे ही 'बड़े मजेमें हैं, समयसे भोजन खानेको मिलता है। आलीशान मकान रहनेको है। इसे छोड़ और कहाँ जायंगे और कहां जाकर फिरसे आहारादिकी और रहने सहने की व्यवस्था करेंगे।' इस अवस्थामें उनके उद्धारके लिये कोई दूसरी ही युक्ति करनी होगी। इनसे प्रेमकर जबतक इन्हें जिस सुखका अब यह अनुभव कर रहे हैं उससे अधिक सुखका अनुभव न कराया जायगा तब तक यह मोहकारागारको न छोड़ सकेंगे। यह सोचकर वह जीवोंके द्वार पर जा-जाकर विनीत भावसे कहने लगे 'जीवगण। सोचो तो सही, हमारे कुसुमसुकोमल-तनु, मनोहर कान्ति, वात्सल्य मूर्तिमती असहाया शचीदेवीके वक्षोनिधि श्रीगौरांगचांद किसके लिये वृक्षतलवासी बने हैं ? किसके लिये सतीकुलशिरोमणि विष्णुप्रियादेवीको सदाकेलिये विरह सागरमें छोड़ भूमिपर लोट रहे हैं ? किसके लिये नवद्वीप चांद नवद्वीपको अन्धकारमें छोड़ पतितोंके द्वार-द्वारपर जा रो-रोकर उनसे हरिनामकी भिक्षा मांग रहे हैं ? भाई इससे अधिक

तुम्हारे प्रति उनके प्रेमका परिचय और क्या हो सकता है ? जिन्होंने बिना कुछ सोचे तुमसे इतना प्रेम किया, जो तुम्हारे कारण अपना सुख संपत्ति सब कुछ छोड़ भिखारी बने, उनकी ओर एक बार भी तुमने प्रेमके चक्षुओंसे नहीं ताका, एक महूर्त के लिये भी उनकी अहैतुकी कृपा पर विचार नहीं किया। तुम फिर भी अपनी स्वार्थपूर्ण निकृष्ट वृत्तिके ही आधीन रहे और माया पिशाचीकी लात खाते-खाते जीवन व्यतीत कर दिया। इतनी करुणा पाकर भी तुम्हें चैतन्य न हुआ, तुम्हारी आंखें न खुलीं। अब और तुम्हारे लिये उपाय ही क्या हो सकता है ? भाई मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ, तुम जैसे हो वैसे ही रहो, पर दिन पीछे और रात पीछे एक बार 'हा गौरांग' कह किया करो । तुम्हें किसी प्रकारका अभाव न रहेगा, प्रेमधनकी प्राप्ति होगी, और मैं चिरकालके लिये तुम्हारे हाथ बिक जाऊंगा।' इसीलिये निताईचांदने कहा थाः—

भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांगेर नाम रे
जे जन गौरांग भजे, सेई आमार प्रान रे॥

समझे ? नाम संकीर्त्तन छोड़ कालिकालमें हमारे लिये और कोई उपाय नहीं है।

प्यारी—नाम संकीर्त्तन ही एक मात्र उपाय है यह तो मैं समझा, पर एक शंका रह गई। निताईचांद कहते हैं 'भज गौरांग, कह गौरांग, लह गौरांग नाम।' गौरांगदेव कहते हैं 'कहो हरे कृष्ण'। हम किसका आदेश माने।

बाबाजी—तुमने कहा महाप्रभु कहते है 'हरे कृष्ण' कहो अन्यत्र नित्यानन्दने कहा है—

'जनम धरिया हेलाय श्रद्धाय जे लये निताइएर नाम।
आमि बिकाई तारे दिखाई जुगल राधाश्याम॥

अर्थात् जो श्रद्धासे या अश्रद्धासे किसी प्रकार भी निताई का नाम लेता है, मैं उसके हाथ बिक जाता हूं और उसे राधा-श्यामके दर्शन कराता हूँ। इसके अतिरिक्त गुरुदेव कहते हैं 'निताई गौर भज' अर्थात् नित्यानन्द और गौरांग दोनोंका नाम लो। तो तुम सोचते होगे कि किसकी बात माने और किसकी न माने ?

प्यारी—जी, में इसलिये सन्देहमें पड़ गया हूँ।

बाबाजी—इनमेंसे किसीकी भी अवज्ञा नहीं करनी है। प्रत्येकका वाक्य भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणा पाटव दोषोंसे मुक्त है। भिर भी सबसे पहले श्रीगुरु-वावयका पालन करना ही हमारा कर्त्तव्य है। गुरुवाक्यके पालनसे और सबके वाक्योंका पालन हो जाता है। गुरुदेव कहते हैं 'भज निताई गौर, पाबे राधेश्याम' निताई गौर भजो तो राधेश्याम मिलेंगे। ठीक है, श्री गुरुदेवकी कृपासे जब निताइका आश्रय लिया जाता है तभी गौरांगकी प्राप्ति होती है। क्योंकि निताई आश्रय हैं और गौरांग विषय ! निताईकी कृपासे जब गौरांग मिलते हैं तो वे आदेश करते हैं 'भज राधेश्याम' और राधेश्याम के भजनका एक मात्र उपाय है 'हरे कृष्ण' नामकीर्त्तन। कोई तुम्हारा थोड़ा उपकार करता है या तुम्हें कुछ देता है तो तुम सारे जीवन उसका गुण गाते हो। तो जिसकी कृपासे गोलोकका गोपनीय चिर-अनर्पित धन तुम्हें अनायास प्राप्त हुआ उसे आगे न भजोगे और उसका पहले गुणगान न करोगे तो क्या करोगे ?

यदि न करोगे तो अकृतज्ञ न कहलाओगे। इसलिये पहले नितांईगौरको ही भजो। उन्हें भजने से कोई अभाव न रहेगा और मन का सारा सन्देह मिट जायगा।

प्यारी—प्रभो! अब मेरा सन्देह तो दूर हुआ। पर यह बताइये कि श्रीकृष्णके तो अनेकों नाम हैं। उनमें कुछ तारतम्य भी है क्या?

बाबाजी—नाम और नामी अभिन्न हैं। इसलिये जब नामीके विभिन्न स्वरूपोंमें तारतम्य है तब नामोंमें तारतम्य होगा ही। वैकुण्ठनाथ श्रीपतिके नामसे जिसका संकेत होता है उसका ब्रजनाथ गोपीवल्लभके नामसे क्या हो सकता है? दुर्योधन द्वारा वस्त्र-हरणके समय द्रौपदी जब व्यकुल होकर पुकार रही थी 'हा द्वारकानाथ! हा रुक्मिणीवल्लभ! हा वैकुंठ-नायक! हे कालीयनिसूदन कृष्ण! इस घोर विपदमें मेरी रक्षा करो' तब कृष्ण उस स्थानसे (जिसके नामसे वे उन्हें पुकार रहीं थीं) हस्थिनापुर जानेकी चिंता कर रहे थे। कृष्णके आग-मनमें विलम्ब देख युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई हताश हो गये। द्रौपदी व्याकुल होकर कहने लगी 'हा हृदयनाथ! हा प्राण-वल्लभ! हे पांडवोंके सखा! हे द्रौपदीके प्राण सरवस्व! एक-बार आकर दासीकी दशा देखो।' इतना कहनेकी देर थी कि कृष्ण द्रौपदीके पीछे आ खड़े हुए और कहने लगे 'भयकी क्या बात है सखी? मैं तुम्हारे पास हूँ। किसकी सामर्थ्य है जो तुम्हारा अपमान कर सके?' इतना कह तुरन्त ही वस्त्ररूप धारणकर उन्होंने द्रौपदीकी लज्जाकी रक्षा की। तब द्रोपदीने पूछा 'कृष्ण तुम कहा करते हो कि विपत्तिमें मेरा स्मरण करते ही मैं तुम्हारे पास आजाऊंगा, परन्तु आज ऐसी घोर विपत्तिमें पड़ी मैं तुम्हें इतना पुकार रही थी और तुमने आनेमें इतना

विलम्ब किया।' कृष्णने कहा 'देखो द्रौपदी, मैंने तो कुछ भी विलम्ब नहीं किया। तुमने मेरा नाम ले लेकर मुझे जिस-जिस स्थानको भेजा मैं वहीं से यहाँ आनेकी चेष्टा कर रहा था, और जैसे ही तुमने कहा 'प्राणवल्लभ, हृदयनाथ' मैं तुम्हारे पास खड़ा मिला। तुम्हारी बातकी तो मैं अवहेलना नहीं कर सकता। तुमने जब मुझे 'द्वारकानाथ' कहकर पुकारा मैं उस समय द्वारकापुरीमें था, जब 'वैकुन्ठनाथ' कहकर पुकारा तब मैं वैकुन्ठमें था।' तो देखो नाममें तारतम्य हुआ या नहीं ?

प्यारी—यदि यही बात है, तो इतने नामों का प्रचार कर जीवोंकी उपासनामें व्याघात डालनेकी क्या आवश्यकता थी ?

बाबाजी—बाबा ! 'भिन्नरुचिर्हि लोकः।' सबकी रुचि एकसी नहीं है। इसलिये विभिन्न रुचिके लोगोंके लिये विभिन्न नाम, धाम और रूप हैं। सीधी बात यह है कि जब कोई अपना लक्ष्य स्थिर कर उन्हें पुकरता है तो तुरन्त ही वे उसके अभीष्टदेवके रूपमें उसके निकट पहुंच जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

प्यारी—लक्ष्य स्थिर होनेका उपाय क्या है ?

बाबाजी—एकमात्र प्रेमानुराग।

प्यारी—प्रेमका उपाय क्या है ?

बाबाजी—प्रेम नित्य सिद्ध वस्तु है। साधनादि द्वारा वह साध्य नहीं है। श्रवण-कीर्त्तनादिसे चित्तकी शुद्धि होने पर उसका प्रकाश होता है। महाप्रभुने श्रीमुखसे कहा है:—

नित्य सिद्ध कृष्ण प्रेम, साध्य कभू नय।
श्रवणाद्य शुद्ध चित्ते करये उदय॥

और—जे रूप लइले नाम प्रेम उपजय
ताहार लक्षण सुन स्वरूप राम राय ॥
तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुणा ।
अमानीना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥
अर्थात्—उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम ।
दुई प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम ॥
वृक्ष जेन काटिलेह किछु ना बोलय ।
शुकाइया मैले कारेओ पानी ना मागय ॥
जेई जे मागये तारे देय आपन धन ।
धर्म्म वृष्टि सहि आनेर करये पोषण ॥
उत्तम हइया वैष्णव हबे निरभिमान ।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण-अधिष्ठान ॥
एईमत हआ जेई कृष्णनाम लय ।
श्रीकृष्ण चरणे तार प्रेम उपजय ॥

प्यारी—जब मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ट है तो सब प्राणियोंकी अपेक्षा अपनेको हीन मानना क्या कपटता नहीं हैं ? बाहरसे कितनी भी हीनता क्यों न दिखाई जाय क्या अन्तरमें श्रेष्ठत्वका बोध होना स्वाभाविक नहीं है ?

बाबाजी—स्थावर, जङ्गम, कीट, पतंग, तृण, लता आदिसे मनुष्य किसी प्रकार भी श्रेष्ट नहीं हैं, क्योंकि जिन क्षित्यप्-तेजोमरुद्व्योम पंचभूतों द्वारा वृक्षादि बने हैं उन्हींसे मनुष्य भी बना है । वृक्ष जीवित अवस्थामें निःस्वार्थ भावसे दूसरे प्राणियों को आश्रय प्रदान करता है, पत्र, पुष्प फलादिसे उनका पोषण करता है, अपने देहकी पुष्टि या अपना पेट भरनेके लिये किसीसे प्रार्थना नहीं करता, और दूसरेका अनिष्ट करनेकी चेष्टा किसे

कहते हैं जानता भी नहीं। इसके विपरीत यदि मनुष्य किसीको आश्रय प्रदान करता है या उसका पोषण करता है तो उसमें उसका अपना स्वार्थ निहित रहता है, यहां तक कि अपने स्त्री पुत्रादिका पालन-पोषण करनेमेंभी उसका अपना स्वार्थ रहता है। मानव अपने देहकी पुष्टि करने और अपना पेट भरनेके लिये दूसरे प्राणीका वध करना अपना धर्म समझता है। और इतना ही नहीं, दस बीसको साथले निरीह प्राणियोंका शिकार कर आनन्दोत्सव मनाता है, और मत्स्यादिके तो जैसे प्राण ही नहीं हैं बड़ी-बड़ी मछलियोंको काटनेमें वह आनन्दका अनुभव करता है और प्रशंसाका भागी होता है। परन्तु उसके अपने असंख्य लोम-कूपोंमेंसे एक बिन्दू रक्त पान करनेकी इच्छासे कोई मच्छर उसपर आ बैठता है तो उसका वध कर डालता है। तो बताओ मनुष्य श्रेष्ठ है या वृक्ष ? इसके अतिरिक्त कोमल से कोमल बिछौनों पर लेटकर भी इसे आराम नहीं मिलता। कितने प्रकारके इत्र, एसेन्स और गुलाबजलादिकी आवश्यकता पड़ती है। पर विभिन्न देशीय, विभिन्न प्राणियोंके रक्तमांससे परिपुष्ट इस शरीरमें से जब प्राण निकल जानेके उपक्रम होते हैं, तब पिता-माता, भाई-बहिन स्त्री-पुत्र और सभी नाते रिश्तेदार इसे बाहर निकलनेके लिये व्यस्त हो पड़ते हैं। बाहर निकालकर भी निश्चिन्त नहीं होते। गोबरसे उस स्थानको लीपते हैं। दस, पन्द्रह दिन या एक मास तक अशौच मानते है और होम यज्ञादि द्वारा घरको और अपने आपको पवित्र करते हैं। मृत शव जहां गाड़ा जाता है या जलाया जाता है उस स्थानकी मिट्टी छू जाने पर भी गंगा स्नान करते हैं। यह है तुम्हारे मनुष्यत्वकी श्रेष्ठता। और वृक्षका मृत देह यदि किसी उपयुक्त हाथमें पड़ जाय तो वह उससे रथ, सिंहासन, खाट-

खटोला बकस इत्यादि निर्माणकर अवशिष्ट अंश मनुष्य देहकी पुष्टिके लिये उपयोगी खाद्य-द्रव्य पकानेके काममें लाता है। यदि वृक्षका मृत देह न हो तो मनुष्यकी मृत देहका संस्कार पर्यन्त न हो सके।

यह तो हुई स्थावर देहकी बात। अब जंगम देहकी उपयोगितापर विचारकर देखो! एक क्षुद्र चींटी कहीं थोड़ासा भी खाद्य-द्रव्य पाती है तो द्रुतवेगसे जा अन्य चींटियोंको बुला लाती है, जिससे सब मिलकर थोड़ा-थोड़ा खा सकें। पर मनुष्यको कहीं कोई अच्छी वस्तु मिल जाती है तो वह इस भयसे कि कोई देख न ले, बड़ी सावधानीसे चुरा-छिपाकर उसे घर ले जाता है। अपने भाई-बन्धुओंसे भी उसके बारेमें कहते संकोच खाता है। येतो है मनुष्य जातिकी उच्चता। अब क्षमतामें मुकाबला कर देखो! तुमने किसी वस्तुको बड़े यत्नसे किसी स्थानपर ढक-मूद कर रखा। चींटी अपने बुद्धि-कौशलसे ठीक उसी स्थानपर जा पहुँचती है, और तुम अपनी ही रखी वस्तुको भूलकर जगह-जगह ढूँढते हो और दूसरोंसे ढुंढवाते हो। इस हिसाबसे चींटी की क्षमता अधिक हुई या मनुष्यकी। पशु-पक्षियोंको मल-मूत्र आदि त्यागकर साफ़ करनेके लिए मेहतरकी आवश्यकता नहीं होती ओर न उन्हें स्पर्शकर कोई अपवित्र होता है। गायका मल-मूत्र स्थानको पवित्र करता है; पर मनुष्यका मल-मूत्र स्पर्श करनेकी कौन कहे, जो उसे साफ करता है उसे स्पर्श करने पर भी स्नान करना होता है। अब विचारकर देखो कि मनुष्य बड़ा हुआ या पशु, पक्षी।

प्यारी—अब मेरे मनका भ्रम दूर हुआ और मैं तृणादपि श्लोकाका प्रकृत मर्म समझा। मेरी समझमें आया कि मनुष्य

जाति सबसे हीन है ।

बाबाजी—मनुष्य जातिके निकृष्ट होनेकी बात कहां तक कहूँ ? देखो गाय, भैंस, सिंह, व्याघ्र, श्रृगाल, श्वान आदि निर्दिष्ट समयको छोड़ सदा निर्विकार चित्तसे नर और मादा एक साथ उठते-बैठते और भोजन-शयन आदि करते हैं। पर मनुष्य जातिको स्थान-अस्थान, समय-असमय धर्माधर्म, यहांतक कि सम्बन्ध विचार तक नहीं है । स्त्रीको देखते ही पुरुष और पुरुषको देखते ही स्त्री कामातुर हो जाते हैं । अधिक क्या कहूँ, विचार कर देखनेसे मनुष्यजातिकी निकृष्टताके ही तरह-तरहके सबूत मिलते हैं, उत्कृष्टताके नहीं । फिर भी भगवत् नाम, रूप, गुण आदिका अवलम्बनकर भगवत्-आराधना करनेसे भगवत्-कृपाका भाजन हो वही मनुष्य सर्वोत्कृष्ट हो जाता है । जिस मनुष्यकी यह धारणा बन जाती है कि वह जगत्के सारे पदार्थोंसे हीन है, वास्तवमें वही मनुष्य कहलाने योग्य है । शास्त्रोंमें भी ऐसे ही मनुष्यको सर्व-श्रेष्ठ और भगवत् अनुग्रहका पात्र कहा गया है । नीति शास्त्रमें कहा है—

आहार निन्द्राभय मैथुनंच, सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मोहि तेषाम अधिको विशेषो,धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।।

जो मनुष्य माया मोहमें आबद्ध रहकर भगवत्-आराधना नहीं करता, उसे शास्त्रकार आत्मघाती कहते हैं । जैसे—

नृदेहमाद्यं खलु धर्मसाधनं ।
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारं ।।
मायानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा ।।

प्यारी—आपने कहा कि 'भक्तही भगवान्के अनुग्रहका पात्र है।' भगवान् तो सर्वेश्वर, सर्वान्तरयामी, सर्वनियन्ता हैं, क्या उनके निग्रहका पात्र भी कोई है ? यदि भगवान्के निग्रह और अनुग्रह दोनोंके ही पात्र है तो क्या उनमें वैषम्य दोष नहीं होता ? वे जगत्के माता-पिता हैं। सन्तान चाहे योग्य हो, चाहे अयोग्य, रूपवान् हो चाहे कुरूप, धार्मिक हो या अधार्मिक, माता-पिताके स्नेहमें क्या इस कारण से कोई अन्तर हो सकता है ?

बाबाजी—भगवान्में कदापि वैशम्य दोष नहीं हो सकता। उनमें जो वैषम्य दीख पड़ता है, वह वास्तवमें उनमें नहीं है, वह तो पात्रोंका ही गुण-दोष है। इस संबंधमें एक साधारण दृष्टान्त है, सुनो—एक दिन मैं दोपहरके समय एक पहाड़के ऊपर गया। धूप बहुत तेज थी। मैं छाया ढूँढने लगा। देखा कि एक समतल स्थानपर दो पत्थर पड़े हैं। दोनों कोई हाथ भरके हैं और ठीक एकसे रंग ओर आकारके। बहुत देख-भाल करने पर भी मैं उनमें किसी प्रकारका भेद न पा सका। पर देखाकि एक पत्थरसे अग्नि निकल रहो है। उसके ऊपर शुष्क-तृण लता-पता इत्यादि गिरते ही जल उठते हैं, और दूसरे पत्थरसे पसीनेकी बूदें निकल रही हैं। उसे स्पर्शकर देखा तो बहुत ठडा लगा। तब एक साधुसे मैंने पूछा कि यह क्या बात है! एक ही स्थान पर एकही जातिकी दो वस्तुओंकी क्रियामें पार्थक्य क्यों है ? क्या इस पत्थरपर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ रहीं हैं ? उन्होंने कहा 'बाबा, सूर्यका ताप तो सर्वत्रही समान है ! पर यहसा पत्थर सूर्यकान्त मणि है। इसपर सामान्य सूर्यकी किरणें पड़नेपरभी अग्नि निकलने लगती है। और यह चन्द्रकान्तमणि

है। इसपर जितनी तेज सूर्यकी किरणें पड़ती हैं, उतना ही यह अधिक शीतल, स्निग्ध और स्वेद-विन्दु युक्त हो जाता है।' ऐसे ही देखो, एक तालाबमें दो फूल खिलते हैं। एक कमल और दूसरा कुमुद। प्रभातमें सूर्यकी किरणें निकलते-निकलते कमल प्रस्फुटित होने लगता है। और ज्यों-ज्यौं सूर्यकी किरणें तेज होने लगती हैं, उसकी शोभा भी बढ़ती जाती है परन्तु अभागिनी कुमुदिनी प्रभात होतेही पति-विरहणी पत्नीके समान म्लान होने लगती है और सूर्यका तेज जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वह अधिक म्लान होती जाती है। यहाँ क्या तुम सूर्यमें वैषम्य दोष कहोगे। भगवान्‌की कृपा भी इसी प्रकार सर्वत्र समान है, परन्तु हमारी ग्रहण-शक्तिमें भेद होनेके कारण उसके फलाफलमें भेद होता है। पिता एकही स्कूलमें दो पुत्रोंको पढ़ने भेजता है। एक परीक्षामें सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करता है। दूसरा फेल हो जाता है। एक कक्षामें ध्यानसे पढ़ाई-लिखाई करता है, इसलिए पास हो जाता है; दूसरा ध्यान नहीं देता, खेलकूद और असद् कार्योमें रत रहता है। इसमें क्या पिता-माताका दोष कहा जायगा? भक्त भगवान्‌के शरणापन्न हो कातर भावसे कृपा-प्राथंना करता है। भगवान् उसमें शक्ति-संचार करते हैं। अभक्त उनसे दूर रहता है और अभिमानके कारण अपनेकोही इश्बर-मान विपत्तिमें पड़ जाता है। इसमें भगवानका क्या दोष? भगवान् तो उसे कुपथ पर जानेको कहते नहीं, बल्कि नाना-प्रकारसे उसे कुपथ से हटानेकी चेष्टा करते हैं।

प्यारी—अच्छा, भगवान् जब हमारे प्रति इतने दयावान हैं तो उन्होंने अनिष्टकारी काम-क्रोधादिकी सृष्टि ही क्यों की? उन्होंने जैसे एक अति सुन्दर पात्रमें हलाहल विष भरकर जीवके

सम्मुख रख दिया है, जिसका वह लोभ-वश पान करता है। यह क्या भगवानका अन्याय नहीं है ?

बाबाजी—यह तुम्हारी भूल है। परम मंगलमय भगवान् ने इस जगतमें जिन दृश्या-दृश्य पदार्थोंकी सृष्टि की है, उनमेंसे एक भी हमारे लिए अनिष्टकारी नहीं है। एक व्यक्तिका घर जल जाता है, उसका इकलौता पुत्र और प्यारी पत्नी उसमें भस्म हो जाते हैं। वह व्याकुल हो भगवानसे कहने लगता है 'हे प्रभो ! तुमने अग्निकी सृष्टि न की होती तो आज मेरे धन-दौलत, स्त्री-पुत्रका नाश न होता। अग्निकी सृष्टिकर तुमने बड़ा अन्याय किया। अन्यत्र किसीके यहाँ एक बालकका जन्म होता है, बरफ गिरती है, बालकके हाथ-पैर ठंढमें जकड़ जाते हैं। उसी समय कोई व्यक्ति आग्निका सेंक देकर बालकको स्वस्थ करता है।उस समय वह व्यक्ति भगवानको धन्यवाद देता है और कहता है—प्रभो ! तुम्हारी कैसी अपार कृपा है ! यदि तुमने अग्निकी सृष्टि न की होती तो आज इस शिशुके प्राणोंकी किसी प्रकार रक्षा न होती। अब तुम इसे अग्निका दोष कहोगे या गुण ? एक व्यक्ति एक डॉक्टरके यहां अलमारीमें एक विष की शीशी रखी देखता है। डॉक्टर उससे कहता है—सावधान ! इस शीशीके स्पर्शसे ही मृत्यु हो सकती है। तब वह बड़ी विरक्तिसे डाँक्टरसे कहता है--यह आप लोगोंका कैसा अन्याय है ? लोगोंके उपकारके लिये आप डॉक्टर बने हैं, फिर ऐसा अनिष्ठकारी पदार्थ क्यों रखते हैं ?' डॉक्टर कुछ उत्तर नहीं देता। थोड़ी देरमें उसे एक रोगीकी चिकित्साके लिए बुलाया जाता हैं। रोगीको सन्निपात है, नाड़ी छूट चुकी है। डॉक्टर पूर्वोक्त व्यक्तिसे कहता है, 'इस विषकी शीशीको लेकर जरा मेरे

साथ चलिए।' वह व्यक्ति विषकी शीशीले उसके साथ चल देता है। रोगीके निकट पहुँचते ही डॉक्टर उससे कहता है 'इस शीशी में से छः बूंद थोड़ेसे जलमें मिलाकर रोगीको पिला दो।' वह पहले समझता है कि शायद डॉक्टर रोगीकी असह्य वेदनाको देख विष द्वारा उसके प्राण हर उसे कष्टसे मुक्त करना चाहता है। डॉक्टरके विशेष अनुरोध करने पर वह छः बूँद विष रोगीको पिला देता है। दो ही मिनटके भीतर रोगीकी अवस्था में परिवर्तन होने लगता है। एकबार और छः बूँद विष दिये जानेपर वह स्वस्थ हो जाता है। तब डॉक्टर कहता है 'महाशय अब समझे विषका उपयोग।' कभी-कभी विष भी अमृत हो जाता है, प्राण-विनाश-कारी पदार्थ प्राण-रक्षक हो जाता है, और व्यवहार दोषसे अमृतभी विषके समान फल देने लगता है। इसीलिए कहता हूँ कि पहले श्रीगुरुदेवका आश्राय लेकर महाजनोंके आदेशानुकूल कार्य करना सीखो। तब देखोगे कि काम-क्रोधादि ही तुम्हारे हितसाधक बन जाते हैं। श्री नरोत्तम ठाकुर महाशयने कहा है 'काम कृष्ण कर्मार्पणे, क्रोध भक्तद्वेषी जने, लोभ साधुसंगे हरिकथा' इत्यादि। यदि सत्संग में तुम्हें लोभ है तो लौभ ही भगवत्प्राप्तिका साधन है। और यदि लोभ ही एकमात्र भगवत्प्राप्तिका उपाय है तो लोभकी सृष्टि करनेमें भगवानका दोष है या उनकी कृपा। शास्त्र कहते है--कृष्णभक्ति रस भाविता मतिः, क्रियतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्र मूल्यमेव लौल्यमेकलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते।'

प्यारी—भगवानके लिए लोभ कैसे उत्पन्न हो?

बाबाजी—आर्यगण उच्च स्वरसे कहते हैं कि इसका साधु-गुरुकरुणाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। कोटि-कोटि जन्मोंकी सुकृतिसे भी लोभोत्पात्ति नहीं होती।

प्यारी—साधु-असाधुकी क्या पहचान है ? हम तो अज्ञ जीव ठहरे । आज एक व्यक्तिको असाधु समझ कर उससे घृणा करते हैं, कल देखते हैं वही महापुरुष हो जाता है । तो वास्तविक पहचान क्या है और किस प्रकारका साधुसंग करनेसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है ?

बाबाजी—दृष्टाको छोड़कर संसारमें जितनी दृश्यादृश्य वस्तुएं हैं, सभी साधु-शब्द-वाच्य हैं । चोरमें भी यदि तुम साधु बुद्धि रख सको तो तुम्हारी कार्य-सिद्धि होगी । आचरणसे साधु असाधुकी पहचान नहीं हो सकती ।

गर्हित आचरण करने जदि महा अधिकारी ।
निन्दार आछुक दाय हासिलेओ मरि ॥

तुम हो मायामुग्ध जीव ! तुम्हें अपने आपको साधु-परीक्षाकी कसौटी मान लेना भूल होगा । मनुष्यमात्रमें बिना विचारे साधु-बुद्धि रख अदोष-दर्शी हो, स्वयं भक्तिका याजन करो । इससे तुम्हारी उन्नति होगी, अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी । इस संबंधमें एक कथा है:—

एक राजा बड़ा वैष्णव सेवी था । वैष्णवगण जैसी सेवा चाहते, राजा बिना विचारे उसे संपन्न करता । राजाका ऐसा भाव देख चार डाकू वैष्णवके वेशमें राज्यमें आये और राजासे कहा कि वे अन्तःपुरसे रानीके हाथसे सेवा प्राप्त करेंगे । महाराजने बिना विचारे उन्हें रानीके निकट भेज दिया । वैष्णवोंने भोजनादिकर शयन किया । रानी जब उनकी चरण-सेवाके लिए आई तब चारोंने मिल कर रानीका वध कर डाला और उसके

स्वर्णभूषण ले सवेरा होते न होते वहाँ से निकल भागे। परिचारिकाओंने जब सारा समाचार राजाको सुनाया तो वे बोले 'पापिनीने अवश्य वैष्णव चरणोंमें कोई अपराध किया होगा, नहीं तो ऐसा कभी न होता। वैष्णवोंकी सेवामें कोई त्रुटि अवश्य रह गई है, यदि ऐसा न होता तो वे इस प्रकार क्यों चले जाते। वे जो सामान ले गये हैं, उसके चार भाग करने पर एक-एकके हिस्सेमें पड़ेगा ही कितना।' इतना कह उन्होंने बहुत सा धन लेकर अपने सेवकोंको उन वैष्णव-वेशधारी डाकुओंके पास भेज दिया और कहा, यदि वे न आयें तो उनके चरणोंमें रानी के अपराधकी क्षमा माँग उनका चरणामृत लेते आना। राजाके सेवक द्रुतवेगसे वैष्णवोंके पीछे-पीछे भागने लगे। कुछ देर बाद जब डाकुओंने देखा कि उनके पीछे राजाके सेवक भागे आ रहे हैं तो अपने प्राणोंकी आशंकासे वे तेजीसे भागने लगे। सेवकोंने दूरसे अभय-प्रदान करते हुए उनके निकट जा सारा वृतान्त सुनाया और राजाका दिया हुआ धन अर्पण कर रानीके अपराध की क्षमा माँगी तथा राजधानी लौटनेकी प्रार्थनाकी। वैष्णव वेशधारी डाकुओंका हृदय-परिवर्तन हो गया। वे राजाके सेवकोंके साथ राजधानी लौट आये। देखते ही राजाने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और सम्मान पूर्वक अन्तःपुरमें रानीके शवके पास ले गये। वहाँ उन्होंने चारोंके चरण धो चरणामृत रानीके मुखमें डाल दिया। चरणामृतका स्पर्श पाते ही रानी जैसे निद्रासे जागी हुई सी उठ कर बैठ गई। बताओ, यह डाकुओंके चरणों की शक्ति थी या राजाके विश्वासकी। इसीसे कहा गया है—'विश्वासे मिलिबे बस्तु, तर्कें बहु दूर।' विश्वास करो, फल पाओगे। फिर भी स्वजातीय साधु संग करना आवश्यक है।

प्यारी—स्वजातीय क्या ?

बाबाजी—जिसका एक भाव, एक विषय और एक आशय हो, उसीको स्वजातीय कहते हैं। अर्थात् हमारे प्राण जिस भावसे, जिस अवस्थामें, जिस स्थानपर जिसे चाहते हैं, उसे ठीक उसी भाव, अवस्था और स्थानमें जो चाहता है वह अपना स्वजातीय है। उसीका संग करना चाहिए। मान लो एक स्टेशन पर सैकड़ों व्यक्ति टिकट ले रहे हैं। उनमेंसे कोई कटकका टिकट चाहता है, कोई कलकत्ते का कोई नवद्वीपका, कोई वृन्दावनका, कोई काशी, गया या प्रयागका। कोई प्रथम श्रेणीका टिकट चाहता है कोई दूसरीका, कोई तीसरीका। तुम इनमेंसे किसका संग करोगे ? कौन इनमें से तुम्हारा स्वजातीय होगा ? वह जिसने तुम्हारे गंतव्य स्थानका और तुम्हारी श्रेणी का टिकट ले रखा है—वह चाहे हिन्दू हो मुसलमान या ईसाई, तुम्हारा स्वजातीय है, और उसीका संग करना तुम्हारे लिये ठीक है। गंतव्य स्थान अपरिचित होने पर भी उसके संग-बलसे तुम्हारा साहस दूना बना रहेगा। तुम्हारे सहोदर माता-पिता या भाई-बहन जो तुम्हारे साथ एक भावापन्न नहीं हैं, तुम्हारे लिये विजातीय हैं। उनका संग करनेसे तुम्हारे भावमें अवनति होगी, उन्नति नहीं। क्योंकि देखो, एक ही ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णके उपासक हैं उसके दास और सखागण। दास हाथ जोड़ कर स्तवन करते हैं। उनकी धारणा है कि कृष्ण हमारे हर्त्ता-कर्त्ता-विधाता हैं; और सखागण कृष्णसे कहते हैं—ओ रे कन्हाई, तू क्या रोज-रोज इतनी देर तक सोया करेगा और हम आकर तुझे जगाया करेंगे ? आज चल, तुझे खेलमें हराकर हम सब तेरे कंधे पर चढ़ेंगे। श्रीदाम कहते हैं—तुम कौन से बड़े आदमी हो, हमारे ही जैसे तो हो। बताओ, सखाओंकी बात दास्यभाव के भक्तोंके मनमें ग्लानि उत्पन्न करेगी या नहीं ? एक ही देवके

उपासक होते हुए भी वे एकदूसरेके लिए विजातीय हैं। नरोत्तम ठाकुर महाशयने कहा है—

आन कथा न कहिबे, आन कथा न शुनिबे, शकलै कहिबे परमार्थ।

अर्थात् जो कुछ भी कहो, सुनो, परमार्थके विषयमें, अन्य कथा न कहो न सुनो। रसान्तर कथा भी अन्य कथामें शामिल है।

प्यारी—यदि इस प्रकारका स्वजातीय साधु न मिले तब क्या करना चाहिए?

बाबाजी—'साधु' शब्दसे केवल मनुष्य ही नहीं समझना चाहिए। शास्त्र, श्रीमूर्ति और नाम भी समझना चाहिए। इन चार प्रकारके साधुओंमें प्रत्येकमें स्वजातीय और विजातीय होते हैं। निज अभीष्ट रस प्रतिपादक शास्त्र ही स्वजातीय शास्त्र हैं, उन्हींकी आलोचना करनी चाहिए। निज भाव रसोद्दीपक श्रीमूर्ति ही स्वजातीय है, उसीका दर्शन और उसीकी सेवा करनी चाहिए। निज अभीष्ट भाव, रस और संबंध वाचक नाम ही स्वजातीय हैं। उन्हींका सदा श्रवण और कीर्त्तन करना चाहिए। इस प्रकारके संगसे जीवका अपना स्वरूप प्रकाशित होता है, जीव और कृष्णका संबंध जाग उठता है।

प्यारी—जीवका निज स्वरूप क्या है, मैं नहीं समझा। जीवके जो अवयव हैं उनका स्वरूप तो प्रकाशमान है ही इसके अतिरिक्त प्रकृत स्वरूप प्रकाश क्या है?

बाबाजी—जीव प्राकृत तत्त्वसे आवृत हो चाहे जिस प्रकारका स्वभाव क्यों न प्राप्त कर ले और उस स्वभावके अनुरूप चाहे जिस प्रकारकी आकृति क्यों न प्राप्त कर ले, वह

स्वभाव और आकृति नश्वर हैं। स्वरूपतः जीव नित्य कृष्णदास है। यही स्वरूप नित्य अविनाशी और चिन्मय है। इसीको प्रकृत स्वरूप कहते हैं।

प्यारी—जीव और भगवान्में भेद क्या है? वेदान्त शास्त्र कहते हैं—'अह ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि।' तंत्र कहते हैं 'शिवोऽहम्।' वेदोंका कर्मकाण्ड कहता है—'देवो भूत्वा देवं यजेत्।' और पूजा-प्रणालीमें आर्य ऋषियोंने कहा है 'देवं ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा सोऽहम् इति विचिन्त्य पुनर्ध्या-येत्।' इत्यादि। इन सब शास्त्र-वाक्योंसे जीव और भगवान्का अभिन्नत्व प्रतिपन्न होता है। केवल भक्तिशास्त्र ही कहते हैं 'जीबेर स्वरूप हय नित्य कृष्णदास।' इस विषयको मुझे विशेष रूपसे समझानेकी कृपा कीजिए।

बाबाजी–ब्रह्मसूत्र और भक्तिशास्त्रोंका सिद्धान्त एक है। दोनोंका अभिप्राय एक है। जीव भगवान्की तटस्थ शक्ति है। शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता। 'शक्ति शक्तिमतोर-भेदः।' अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति दोनोंमें परस्पर भेद होते हुए भी अभेद है। अग्निसे दाहिका-शक्तिको पृथक नहीं किया जा सकता। इसीलिए शास्त्रोंमें 'अचिन्त्य भेदाभेद' का वर्णन है। जीव और भगवान्में तत्त्वतः अभेद होते हुए भी लीला-विस्तारके लिए भगवान्ने प्रकाशमें भेद स्वरूप अंगीकार किया है। अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें भेद करना जितना कठिन है, उतना भगवान् और जीवमें भेद करना नहीं। सीधी बात यह है कि भगवत्सत्तासे जीवकी सत्ता है, पर जीवकी असत्ता में भी भगवत्सत्ता विद्यमान रहती है। प्राकृत शक्ति-शक्तिमान् और अप्राकृत शक्ति-शक्तिमान् जीव और भगवान्में यही भेद है।

प्यारी—भगवान्‌से जीवका संबंध जगानेका क्या उपाय है ?

बाबाजी—भगवान्‌से जीवका संबंध जगानेके लिए ही संसार क्षेत्र है। दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर ये चार रस संसार क्षेत्रमें सदा वर्तमान रहते हैं। सबंध न रहनेसे संसार भी नहीं रहता। मनुष्य सांसारिक संबंध-सुख उपभोगकर जब आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक, इन तीन प्रकारके तापों द्वारा नाना प्रकारसे यंत्रणाग्रस्त होता है तब वह विवेक बलसे सांसारिक संबंध सुख छोड़ प्रकृत संबंध-तत्त्वके अनुसंधानके लिए व्याकुल हो उठता है। इस सच्ची व्याकुलताके कारण ही जीवको साधु-संग मिलता है। साधु-संगसे तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान जीवको भगवदोन्मुख करता है। भगवदोन्मुख जीव भक्ति-पथ पर अग्रसर होनेके लिए हृदयसे श्रीगुरुदेवके चरणोंका आश्रय लेता है। गुरुदेव कृपाकर उसके हृदयमें भगवत्संबंध जगा देते हैं। तब जीव भगवानसे संबंध स्थापित कर उससे हृदयसे प्रेम करने लगता है। प्रेमीका हृदय सेवाके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। सेवा ही है प्रेमका प्राण। सेवाके बिना प्रेम जीवित नहीं रहता। भगवत्साक्षात्कार न होने तक सेवा दो प्रकारसे संपन्न होती है—एक तो मानसिक रूपसे, दूसरे श्रीमूर्तिउपासनाके रूपमें। मानसिक सेवामें साधक मानसिक रूप से ठीक उसी प्रकारसे भगवच्चिंतन और भगवत्सेवामें रत रहता है जिस प्रकार प्राकृत जगत्‌में अविवाहित किशोरी स्वामी-सेवा विषयक मानसिक चिंतनमें लीन रहती है। यह स्मरण और मनन बड़ा ही मधुर और आनंदप्रद होता है। साधक इस मानसिक सेवाकी ओर जितना अग्रसर होता जाता है, अन्य विषयोंमें उसकी आसक्ति उतनी ही घटती जाती है और अंतमें भगवत्सान्निध्यकी प्राप्ति होती है। श्रीमूर्ति रूपमें जो भगवत्सेवा होती

है, उसमें साधक अपने अभीष्ट देवकी श्रीमूर्ति स्थापित कर और उसमें नित्यत्वका आरोप कर मनवचनकर्मसे अष्टकाल सेवा करता है। ये मार्ग बड़ा ही सुगम और प्रीतिप्रद है; क्योंकि इसमें पंचकर्मेन्द्रियां, पंचज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार एवं कामक्रोधादि षड्रिपु अपना बहिर्मुख भाव छोड़ अन्तर्मुख हो भगवत्सेवाकी अनुकूलता धारण कर बाधक न होकर साधक बन जाते हैं। इस प्रकारकी सेवा द्वारा साधक थोड़ेही प्रयत्नसे भगवत्साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। तब प्राकृत संसार और प्राकृत देहमें रहते हुए भी वह अप्राकृत, नित्य, सच्चिदानन्दमय निज अभीष्ट देवके साथ साक्षात् आलाप व्यवहारादि करता है।

प्यारी—आपकी बातसे यह समझमें आता है कि गुरु कृपा ही मूल वस्तु है किन्तु समयके प्रभावसे आजकल सद्गुरु मिलना ही तो कठिन है। इसलिए यह सब उपासना मुझे आकाश-कुसुम जैसी जान पड़ती है।

बाबाजी—'गुरु' शब्द भगवत्बोधक है। जिस प्रकार 'भगवत्' के साथ 'सत्' 'असत्' शब्द जोड़ते नहीं बनता वैसे ही 'गुरु'के साथ भी। व्यावहारिक जगत्में भी 'गुरु' का अर्थ है—महत्। सद्महत् और असद् महत् कैसे हो सकता है, बताओ।

प्यारी—'गुरु' शब्द भगवन् बोधक है, यह विचार तो कभी मेरे मनमें आया ही नहीं। गुरुडम चलाने वाले आजकलके व्यवसायी व्यक्तियोंके व्यवहार और उपदेशसे भक्ति-पथ पर अग्रसर होना तो दूर उल्टे अवनति ही होगी।

बाबाजी—क्यों भाई, तुमने तो बहुत शास्त्र देखे हैं। भगवान् कहते हैं—

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥

और गुरु-गीतामें कहा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

कविराज गोस्वामीका वाक्य है—

'दीक्षा-गुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप ।'

अन्यत्र कहा है—

'गुरुरूपे कृष्णकृपा तत्त्वेर अवधि ।'

इसी वाक्यके आधार पर श्रीसनातन गोस्वामीने कहा है—

जीबेर निस्तार लागि नन्दसुत हरि
भुवने—प्रकाश हन गुरु रूप धरि ॥
महिमाय गुरु कृष्ण एक करि जान ।
गुरु आज्ञा हृदे सब सत्य करि मान ॥
सत्यज्ञाने गुरुवाक्ये जाहार विश्वास ।
अवश्य ताहार हय ब्रजभूमे बास ॥
जार प्रति गुरुदेव हन परसन्न ।
कोन विघ्ने सेह नांहि हय अवसन्न ॥
कृष्ण रुष्ट हइले गुरु राखिबारे पारे ।
गुरु रुष्ट हइले कृष्ण राखिबारे नारे ॥
गुरुमाता गुरु पिता गुरु हन पति ।
गुरु बिने त्रिसंसारे नांहि आर गति ॥
गुरुके मनुष्यज्ञान ना कर कखन ।
गुरु निन्दा कभु कर्णे ना कर श्रवण ॥

गुरुनिन्दुकेर मुख कभू ना हेरिबे।
जथा हय गुरुनिन्दा तथा ना जाइबे॥
गुरुर बिक्रिया जदि देखह कखन।
तथापि अबज्ञा नाहि कर कदाचन॥
गुरु-पाद-पद्मे रहे जार निष्ठा-भक्ति।
जगत् तारिते सेइ धरे महाशक्ति॥
गुरु-पाद-पद्म नित्य जे करे बन्दन।
शिरे धरि बन्दि आमि ताहार चरण॥
हेन गुरु-पाद-पद्म हृदे करि आश।
श्रीगुरु बन्दना करे सनातनदास॥

अब विचारकरो। शास्त्र-सिद्धांतके अनुसार यदि गुरु और गोविंद एक ही वस्तु हैं तो उनके क्रिया-कलापकी समालोचना करनेका तुम्हारे जैसे क्षुद्र जीवको क्या अधिकार है? गुरुदेवके प्रति शिष्यका दृढ़ विश्वास होनेसे, गुरु चाहे जैसे भी हों, शिष्य उनके द्वारा अभीष्ट वस्तु लाभ करता है। गुरु गऊ हैं शिष्य दोग्धा। शिष्य एकाग्रचित्त हो जितना दुहता है, उतना फल पाता है। यदि गुरुदेव इस विचारसे कि वह शिष्यके मनोनुकूल न हुए तो उसकी भक्तिके पात्र न हो सकेंगे, सदा शिष्यके मनोमत होनेकी चेष्टा करते रहें, तो गुरुदेव उपासक और शिष्य उपास्य हुए न? श्रीगुरुदेव सर्वशक्तिमान् हैं। वे जो चाहें कर सकते हैं। शिष्य की क्या सामर्थ्य कि उनके गुण-दोष का विचार कर सके। तुलसीदासजीने कहा है—'गुरु मिले लाख-लाख, चेला ना मिले एक।' गुरुदेवके आचरणमें कपट, प्रवंचना इत्यादि देख शिष्य समझ सकता है कि उनकी ऐसी

प्रकृति है,परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं । शिष्यकी अपनी मनोवृत्ति के अनुसार ही शिष्यको तदनुरूप वस्तु दीख पड़ती है । गुरु कैमरे केसमानहैं । शिष्य जिस प्रकारकी चित्तवृत्ति लेकर उनके पास जाता है, वैसा ही फोटो उनमें आ जाता है ।

प्यारी—प्राय: देखने में आता है कि गुरुदेव शिष्यके घर जा अर्थ और वस्त्रादि का लोभ करते हैं । शिष्य किसी प्रकार यह सब भेंट कर देता है तो उसकी कन्या और भगिनी आदिके प्रति लोभ करते हैं । अब बताइए, इस प्रकार का व्यवहार देख कब तक शिष्यकी श्रद्धा उनमें बनी रह सकती है ? इसी-लिए गुरुके आगमन की बात सुन उसके प्राण सशंकित हो उठते हैं ।

बाबाजी—अच्छा बताओ, तुम एक खट्टे आमके बीजसे निकले वृक्षमें से मीठे आम पानेकी आशा कर सकते हो ? यदि मीठा आम खाना चाहते हो तो बीज भी मीठे आमका ही रोपना पड़ेगा । दीक्षा ग्रहण करते समय क्या तुमने श्रीगुरुदेवके चरणोंमें निष्कपट हृदयसे आत्मसमर्पण किया था ? गुरुदेवके दर्शनसे कृष्ण-साक्षात्कार-जनित आनन्द की अनुभूति की थी ? गुरु-दत्त मंत्र प्राप्त करनेके समय कृष्ण-प्राप्ति-जनित सुखका अनुभव किया था ? हम लोगोंका प्रधान दोष है कि हम व्याधि की उत्पत्तिके प्रकृत कारणका अनुसंधान नहीं करते और जब व्याधि बहुत बढ़ जाती है तो हताश हो बैठते हैं । 'कुलगुरु घर आये हैं, क्या करना चाहिये ? आर्थिक अवस्था ठीक नहीं फिर भी एक रुपया प्रणामी और एक जोड़ा धोती तो देनी ही होगी । पूजाका खर्च और चाहिए । जो भी हो, किसी प्रकार मंत्र लेनेका जो एक झंझट है, उसे मिटा दिया जाय, नहीं तो फिर

कभी गाड़ीकर गुरुदेवको बुलाना पड़ा तो खर्च अधिक लगेगा।' शिष्य जब इस प्रकार का सोच विचार करता होता है उसी समय उसका कोई हितैषी बोल उठता है—'धोती-जोड़के वजाय कुछ और रख देने से भी काम चल सकता है। और प्रणामी का रूपया तो उधारभी किया जा सकता है। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध एक दिनका थोड़े ही होता है। शिष्य जब तक जीवित रहता है, देता ही रहता है।' इस भावसे किये गये गुरु-करण का फल क्या कभी अच्छा हो सकता है? गुरुदेवका संशोधन करनेसे पहले अपने अन्तःकरण की ओर देखना चाहिए। गुरुदेव निर्मल दर्पणके समान हैं। शिष्य जिस प्रकार की अन्तःकरण-वृत्ति लेकर उनके पास जाता है, वैसा ही प्रतिबिम्ब उनमें दीख पड़ता है। सारांश यह कि शिष्य अपनी मनोवृत्तिके अनुसार ही गुरु में गुण-दोषका आरोप करता है।

प्यारी—आपने कहा, नाम सर्वशक्तिमान है, नाम लेनेमें देश-काल शुचि-अशुचि का विचार नहीं है, नाम लेते ही प्रेमका उदय होता है। नाम और प्रेम एक ही हैं। जिस किसी रूपमें भी हो, नाम तो हम लोग लेते ही रहते हैं, पर प्रेम-संचारकी बात तो दूर रही, हमारे हृदयका कपट भी दूर नहीं होता। हम तो अविश्वासी जीव हैं; जब तक कोई प्रत्यक्ष फल न देख लें, शास्त्र-वाक्योंमें अंध-विश्वास कैसे करें?

बाबाजी—मान लो एक व्यक्ति अनेक कठिन रोगोंसे पीड़ित है। उसकी बाहरी अवस्था देख कुछ पता नहीं चलता, पर अन्दर ही अन्दर वह भयानक कष्ट-भोग कर रहा है। बहुत डॉक्टर-वैद्योंको दिखाया जा चुकने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ है। तब एक सुविज्ञ चिकित्सक आकर कहता है—देखो भाई!

मेरे पास एक अचूक महौषधि है। उसे लेनेसे मष्तिक स्निग्ध, शरीर पुष्ट और अन्तःकरण प्रफुल्ल होता है। उसका सेवन करनेके बाद तुम्हारे शरीरमें रोग नामकी वस्तु नहीं रहेगी।' इतना कह एक गोली उसके मुखमें रख देता है। गोली खानेके थोड़ी देर बाद रोगी कहता है—क्यों कविराज महाशय! मेरा शरीर तो मोटा हुआ नहीं, व्याधि भी कम नहीं हुई, कैसी आपकी औषधि है? तो कविराज महाशय यही तो कह सकते हैं न, 'बाबा बहुत दिनोंकी संचित व्याधि है, तरह-तरहकी चिकित्सा करते हुए इतने दिन हो गये हैं! विश्वास-पूर्वक दो चार दिन और औषधि लो, अवश्य फल होगा।' इसीलिये तो कहता हूँ, अनादिकालसे कितने पाप, महापाप, अपराध, महापराध, कपट, वंचना, परनिन्दा, हिंसा-द्वेष, ईर्षा, असूया, अभिमान, दंभ, अविश्वास, परछिद्रान्वेषण, देव-द्विज-गुरु-वैष्णव-निन्दा इत्यादि का संचय कर रखा है। फिरभी पूछते हो कि एक बार नाम लेने से प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं होता। यदि श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक नाम लेते तब भी एक बात थी। सीधे तौर पर यों समझो कि तरह-तरहके सामानसे भरे घरकी सफाई करनेके लिए तुमसे कहा जाय तो तुम क्या करोगे? वेकार की चीजोंको फेंक कर कामकी चीजोंको यथास्थान रख दोगे, घरको धूप अगुरु इत्यादि से सुगंधित कर दोगे, तभी तो घरकी सफाई होगी! नाम सर्व-शक्तिमान है रुही पर वह किसीका विनाश नहीं करता। नामके लिये कोई वस्तु वर्जनिय नहीं। नाम दोषको गुणमें, कामको प्रेममें और खेलको लीलामें परिणत करता है; नाम रिपुओं की सहायता करता है, प्रकृत-अप्रकृत बनादेता है और सांसारिकमाया संबंधको नित्य चिन्मय संबंध राज्यमें बदल देता है। पाप दूर

करना नाम या नामाभास की क्रिया नहीं है, वह नामका अवान्तर फल है। जिस प्रकार बहुतसे मच्छरोंको मारनेके लिए तोपकी जरूरत नहीं होती। उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरके अर्जित पाप-पुंजका विनाश करनेके लिए नामकी आवश्यकता नहीं होती। नामके आनेकी संभावना मात्रसे पाप स्वतः भाग जाते हैं।

शास्त्रमें कहा है:—

नाम्नैव यादृशी शक्तीः पापानिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

इसी श्लोकका अर्थ इस प्रचलित पदमें व्यक्त किया जाता है।

एक बार हरिनामे जत पाप हरे।
पातकीर साध्य नाइ तत पाप करे॥

प्यारी—नित्य चिन्मय संबंध क्या है और कैसे उत्पन्न होता है?

बाबाजी—नित्य चिन्मय संबंधका मतलब अप्राकृत अविनाशी चैतन्यमय संबंधसे है। मैं पहले ही कह चुका हूँ, संबंध राज्यका ज्ञान करानेके लियेही हमारा यह संसार क्षेत्र है। शास्त्र ने शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पाँच रसोंका निर्देश किया है। किन्तु संबंध राज्यमें दास्य,सख्य,वात्सल्य और मधुर यही चार रस रहते हैं। शान्त रसमें ईश्वरके अस्तित्वको मानकर और उन्हें सर्वेश्वर,सर्व-नियंता,सृष्टा,पालक और संहारक जान उनकी आराधनाकी जाती है। सनक,सनंद,सनत्कुमार सनातन इत्यादि इस रसके पात्र हैं। शान्त रसमें किसी प्रकारका संबंध

नहीं होता। दास्य रसमें संबंध होता है। उसमें ईश्वरको प्रभु और अपने आपको उनका दास मानकर उपासनाकी जाती है। संसारके अधिकांश व्यक्ति दास्य रसके उपासक होते हैं। दास्य रसके भक्त भक्तिके चौंसठ अंगोंका पालन करते हैं। वह विधि मार्ग और रागमार्ग दोनोंका ही अवलंबन करते हैं।

प्यारी—राग और विधिमें क्या भेद है।

बाबाजी—विधिका अर्थ है नियम या कानून। पापादिके फल स्वरूप नरकयंत्रणाके भयसे अथवा स्वर्गादिके सुखकी अभिलाषासे प्रेरित होकर भगवनोन्मुख व्यक्तिका शास्त्रोक्त विधिनिषेधका पालन करते हुए भगवदुपासना करना ही वैधी उपासना है। मतलब यह कि वैधी भक्ति भगवत्सुख-असुखकी बात नहीं जानता, वह केवल यह जानता है कि शास्त्रकी विधि पालनीय है और उसका निषेध वर्जनीय। भगवान्‌का लोभ रख कर शास्त्रकी बिना अपेक्षा किये भगवदुपासना करनेको राग-मार्गकी उपासना कहते हैं। इस उपासनामें सदा भगवत्सुख अन्वेषण, आत्मसुखाभिलाष शून्यता, फलाकांक्षाराहित्य, और भगवान्‌में दृढ़ श्रद्धा होती है। दोनों प्रकारके भक्तोंकी बाहरी क्रिया एकसी होने पर भी उनकी मानसिक गतिमें तारतम्य होता है। विधि कहती है, स्नान किये बिना मनुष्य पवित्र नहीं होता। राग कहता है 'स्नान करो चाहे न करो, मानसिक पवित्रता होनी चाहिए। विधि कहती है, सफेद पुष्पसे पूजा करनी चाहिए, राग कहता है कृष्ण सेवाके लिए जैसे भी रंगका पुष्प हो सुगंधित और कोमल होना चाहिए। विधि कहती है, पूजा अर्चना करो, इष्ट प्रसन्न होंगे और तुम्हारे अभीष्टकी पूर्ति होगी। विधि फल चाहती है, राग उपास्यदेवका सुख चाहता है। विधि बहिरंग है, राग अंतरंग।

प्यारी—भक्तिके चौंसठ अंग और नवधाभक्ति क्या है ?

बाबाजी—भक्तिके चौंसठ अंग हैं—१. गुरुपदाश्रय । २. कृष्णमंत्र शिक्षा और दीक्षा । ३. विश्वास पूर्वक गुरु सेवा । ४. साधुओंका मार्गानुगमन । ५. सद्धर्म जिज्ञासा । ६. कृष्णकी प्रीतिके लिए सुख भोगोंका त्याग । ७. तीर्थ वास । ८. भक्तिके मुख्य उपायका अवलंबन । ९. हरिवासर सम्मान । १०. धात्र्य-श्वंख गोप, विप्र, वैष्णव पूजन । ११. बहिर्मुख संगका त्याग । १२. बहुत शिष्य न करना । १३. आडम्बरका त्याग । १४. बहु-ग्रंथकलाभ्यास व्याख्या एवं कुतर्क वर्जन । १५. व्यवहारमें अकृपणता । १६. शोकमोहादिके वशीभूत न होना । १७. दूसरे देवताओंकी अवज्ञा न करना । १८. किसी भी प्राणीको उद्वेग न देना । १९. नामापराध और सेवापराध न करना । २०. कृष्ण या कृष्णभक्तोंके प्रति विद्वेष या उनकी निंदा न सहना । २१. वैष्णव-चिन्ह धारण करना । २२. हरिनामांकित चिन्हादि शरीर पर धारण करना । २३. निर्माल्य (प्रसादी) धारण । २४. भगवान्के सम्मुख नृत्य । २५. दंडवत नमस्कार । २६. अभ्युत्थान । २७. अनुगमन । २८. भगवन्मन्दिर गमन । २९. परि-क्रमा । ३०- पूजा । ३१. परिचर्या । ३२. गीत । ३३. संकीर्त्तन । ३४. जप । ३५. निवेदन । ३६. स्तव पाठ । ३७. नैवेद्य-अस्वा-दन । ३८. चरणामृत पान । ३९. धूपमाल्यादि-सौरभ ग्रहण । ४०. श्रीमूर्ति-स्पर्शन । ४१. श्रीमूर्ति दर्शन । ४२. आरत्रिक और उत्सवादि दर्शन । ४३. श्रवण । ४४. कृष्णकृपापेक्षा । ४५. स्मरण । ४६. ध्यान । ४७. दास्य । ४८. सख्य । ४९. आत्म निवेदन । ५०. निजप्रिय वस्तु अर्पण । ५१. कृष्णार्थ अखिल चेष्टा । ५२. सर्वथा शरणागति । ५३. तदीया तुलसी सेवा । ५४. भागवतादि शास्त्र-अध्ययन । ५५. मथुरा मंडल-

वास । ५६. वैष्णव सेवा । ५७. शक्त्यनुरूप वैभव द्वारा साधुगण सहित महोत्सव । ५८. कार्तिक वृत्ति धारण । ५९. जन्मयात्रा महोत्सव । ६०. श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्ति सेवा । ६१. रसिक जनोंके साथ भागवतार्थ आस्वादन । ६२. स्वजातीय स्निग्ध साधुसंग । ६३. नाम संकीर्त्तन । ६४. मथुरा मंडल सेवा ।

नवधाभक्ति इन चौंसठ अंगोंके अन्तर्गत है ।

नवधाभक्ति है—१. श्रवण, २. कीर्त्तन, ३. स्मरण ४. साधुसेवन, ५. अर्चन, ६. वंदन, ७. दास्य, ८. सख्य, ९. आत्मनिवेदन ।

दास्य भावके सेवक चौंसठ अंगोंमें से एक या बहुतसे अंगोंका निष्ठापूर्वक याजन कर भावसिद्ध होते हैं । इनका प्राप्ति स्थान है—१. बैकुण्ठ, २. गोलोक, ३. द्वारका, ४. मथुरा, ५. वृन्दाबन इत्यादि । इनमें से कोई पूर्ण ऐश्वर्य भावसे, कोई ऐश्वर्य मिश्रित माधुर्य भावसे और कोई विशुद्ध माधुर्य भावसे बैकुण्ठनाथ नारायणकी, द्वारकानाथ मथुरानाथ कृष्णचन्द्रकी और गोलोक बिहारी वृन्दाबनचन्द्रकी उपासना करते हैं । दास्य रसका विशुद्ध माधुर्यभाव एक मात्र ब्रजको छोड़ और कहीं दृष्टिगत नहीं होता । इस दास्यभावके संबंधमें श्रीकृष्णने स्वयं कहा है–'आमाके ईश्वर माने आपनाके हीन । आमि तार प्रेमे बाध्य ना हइ अधीन ।' जय विजय, व्यास नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, रक्तक, पत्रक, सारंग इत्यादि इस रसके असंख्य पात्र हैं । सख्य रस अर्थात् बंधुत्व भावमें रागमर्गीको ही प्रवेश करने का अधिकार है, वैधभक्तको नहीं । यह सख्य भाव दो प्रकारका है, ऐश्वर्य मिश्रित सख्य और विशुद्ध सख्य । ऐश्वर्य मिश्रित सख्य भावके पात्र हैं, उद्धव अर्जुन इत्यादि । इसका प्राप्तिस्थान

हैं द्वारका, मथुरा। विशुद्ध सख्यभावके पात्र हैं—श्रीदाम सुबल, मधुमंगल इत्यादि। इसका प्राप्ति स्थान है एक मात्र वृन्दाबन। सखागण तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं—सखा, प्रियसखा और प्रियनर्मसखा। ऐश्वर्य मिश्रित सख्य रसके पात्र उद्धव, अर्जुन इत्यादि जब कभी कृष्णके ऐश्वर्यादि का दर्शन करते हैं तो सोचते हैं—हाय, मैंने सर्वैश्वर्यसम्पन्न कृष्णके साथ निरन्तर सखा जैसा व्यवहार कर घोर अपराध किया है। भगवान् कृष्णचंद्रने जब अर्जुनको अपना ऐश्वर्य दिखाया तो वे मुग्ध होकर बोले--

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण! हे यादव ! हे सखेति !
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥ इत्यादि ॥

इससे यह समझमें आता है कि इनका माधुर्यांश थोड़ा और ऐश्वर्यांश प्रवल है। विशुद्ध सख्य रसके पात्र श्रीदाम सुबल आदिको श्रीकृष्ण की महती ऐश्वर्यशक्ति देखकर भी उनके ऐश्वर्यका बोध नहीं होता, बल्कि वे उसे किसी मंत्रका परिणाम या ऐन्द्रजालिक व्यापार समझते हैं। गोवर्धन धारण, दावाग्निमोक्षण इत्यादि लीलाओं में सम्पूर्ण ऐश्वर्य क्रिया प्रत्यक्ष देखकर भी सखाओंके मनमें थोड़ा भी ऐश्वर्यका स्पर्श नहीं हो सका; वरन् गोवर्धन धारणके समय कोई-कोई तो दौड़कर अपने-अपने डंडेसे कृष्णकी सहायता करने लगे। दावाग्निपानके बाद सुबल कृष्णका मुख अपने हाथोंमें ले कहनेलगे 'भाई कन्हाई, आगसे तुम्हारा सुकोमल मुख झुलस तो नहीं

गया ?' विचार कर देखो, कैसा मधुर भाव है। ऐश्वर्य को देख कर भी ऐश्वर्य की गंध तकका स्पर्श नहीं। इस सख्य रसमें दास्यका सेवागुण और सख्यका मित्रतागुण दोनों वर्तमान हैं। रसोंके तारतम्यके अनुसार प्रत्येक रसमें उसके पूर्वके रसोंके गुण संचारित रहते हैं। वात्सल्य रसमें कृष्णको पुत्र जान उनके प्रति स्नेह-व्यवहार और अपने पिता-माता होनेका ज्ञान रहता है। यह रस दो प्रकारका है—ऐश्वर्य-मिश्रित और विशुद्ध। ऐश्वर्य-मिश्रित वात्सल्यके पात्र वसुदेव-देवकी इत्यादि हैं। इनके प्राप्ति-स्थान द्वारका-मथुरा आदि हैं। ये ऐश्वर्य देखते ही अपने संबंधको भूल जाते हैं। मथुरामें कृष्णचंद्रने जन्म लेते ही वसुदेव और देवकीके वात्सल्यकी परीक्षाके उद्देश्यसे चतुर्भुज रूप-धारण किया तो देवकी अपने संबंधको भूलकर स्तुति करने लगीं—

त्वमस्य लोकस्य विभो ! रिरक्षिषु-
गृंहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वरः।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपै-
र्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः॥

देवकी बोलीं:—

रूपं यत्तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं,
ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारं।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं,
स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः॥

ये लोग कृष्णमें पुत्र-भाव रखते हुए भी कभी उनकी ताड़ना और भर्त्सना आदि करने की बात नहीं सोच सकते।

श्रीकृष्ण भी उस प्रकारसे इनके आधीन नहीं होते। ऐश्वर्य विहीन विशुद्ध वात्सल्य रसके पात्र नन्द-यशोदा इत्यादि सम्पूर्ण ऐश्वर्य क्रियाओं को प्रत्यक्ष देखकर भी उन्हें दैवी या आसुरी क्रिया मानते हैं। श्रीकृष्ण नंद-यशोदाके विशुद्ध वात्सल्य भावकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे मिट्टी खानेकी लीलाके बहाने मुखारविन्दमें ब्रह्माण्डका प्रकाश कर स्वयं ही परास्त होते हैं। क्योंकि मां यशोदा उक्त व्यापारको ग्रहोंकी बाधा समझती हैं—और नन्दसे उसकी शान्तिका उपाय करनेके लिए कहती हैं। नन्द महाराज भी ब्राह्मणको बुला अनेक प्रकारसे शान्ति-विधान कराते हैं। गोवर्द्धन धारणके समय मां यशोदा दूसरे बालकों को बुलाकर कहती हैं—मेरा दुधमुहाँ बच्चा आज सात दिनसे इतने बड़े पर्वतको हाथ पर उठाये हुए है। उसे बड़ा कष्ट हुआ है। तुम सब कुछ सहायता करो। गोपाल को तनिक विश्राम करने दो' इत्यादि। वृन्दाबनमें कृष्णचन्द्र कितना भी ऐश्वर्य प्रकट करें व्रजवासी विचलित नहीं होते। ये सदा कृष्ण की ताड़ना, भर्त्सना, वंदना, शिक्षा, आदि द्वारा लालन-पालन कर उन्हें अपने वशमें रखते है। यदि माँ यशोदा किसीके मुख से कृष्णकी ऐश्वर्य कथा सुनती भी हैं तो कहती हैं—कृष्ण मेरा अबोध बालक हैं उसने तो आजतक भूख लगने पर माँगना भी नहीं जाना। उसके विषयमें ये सब बातें कहने से उसका अकल्याण हो सकता है। अन्नप्राशनके अवसर पर गर्गमुनिने कहा था—'नारायण समो गुणैः।' उस मुनिवाक्य की शक्तिके कारण उसके द्वारा कोई कार्य भले ही सम्पन्न हो सकता है। मेरा विश्वास है, गोपाल की देहमें नारायण आविर्भूत होकर सारी लीलाएँ करते हैं।' इस वात्सल्य रसमें दास्यकी सेवा, सखा का क्रीड़ा-कौतुकादि-सूचक मित्र भाव और वात्सल्यके

लालन-पालनादि गुण सदा वर्तमान रहते हैं। वह किसी प्रकार का ऐश्वर्यादि देख कर भी श्रीकृष्णको अपने वात्सल्य रसके पात्र गोपबालकसे भिन्न और कुछ नहीं समझ पाते। उन्हें कभी भी अपने सुखकी अभिलाषा नहीं होती।

मधुरभाव अर्थात् कान्ताप्रेममें श्रीकृष्ण स्वामी हैं और मैं उनकी प्रेयसी हूँ, यह भाव रहता है। कृष्ण की यह प्रेयसी स्वकीया और परकिया भेद से दो प्रकार की होती हैं। स्वकीया का अर्थ है:—

करग्रहविधिः प्राप्ताः पत्युरादेशतत्पराः।
पातिव्रत्यादविचलाः स्वकीयाः कथिता इह ॥

अर्थात् विधिपूर्वक विवाहिता, पतिकी आज्ञानुवर्तिनी पतिव्रता स्त्रीको स्वकीया कहा जाता है। द्वारकापुरीमें श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पतिव्रता रानियाँ हैं। उनमेंसे रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, शैव्या, भद्रा, कौशल्या और माद्री, ये आठ मुख्य हैं। उनमें भी रुक्मिणी और सत्यभामा प्रधान हैं। ये पतिपारायणा और पतिसेवारता किन्तु धर्मभीरु हैं अर्थात् पतिको सुख देने वाले कार्य भी यदि धर्म-सम्मत और सतीकुलोचित नहीं हैं तो उन्हें करना इनके लिये संभव नहीं है। किसी समय नारदका संदेह दूर करने के लिए द्वारकामें श्रीकृष्णचंद्रने अपने शरीर को ज्वरसे पीड़ित कर लिया और कहाकि किसी प्रेयसी का चरणामृत ही व्याधि-शान्तिका एकमात्र उपाय है। नारद रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि सोलह हजार एक सौ आठ द्वारिकावासिनी रानियोंमें से प्रत्येक के पास गये और श्रीकृष्णके यंत्रणादायक रोग की

शान्तिके लिए अपना चरणामृत देनेकी प्रार्थनाकी । पर कोई प्रेयसी, यह जानते हुए भी कि चरणामृतके बिना कृष्णचन्द्रका जीवन संकटमें पड़ जायेगा धर्मनाश होनेके भयके कारण कुछ न कर सकी । उन्हें पतिको खो कर विधवा होना स्वीकार था पर धर्म खो कर नरक-यंत्रणा भोगना स्वीकार न था । इसलिये वे प्रेममें परिपूर्ण अनुरागवती होते हुए भी स्वार्थपरा और सकामा थीं ।

परकीयाकी परिभाषा इस प्रकार है:—

रागेणैवार्पितात्मानो लोकयुग्मानपेक्षिणा ।
धर्मेणास्वीकृता यास्तु परकीया भवन्ति ताः ॥

अर्थात् जो रागवशवर्त्तिनी होकर ऐहिक, पारलौकिक, सतीकुलोचित धर्मादिका उल्लंघन कर श्रीकृष्णके प्रति आत्म-समर्पण कर देती हैं उन्हें परकीया कहते हैं । ये एकमात्र कृष्ण-सुखमें ही सुखी होती हैं । इनके प्रेममें आत्म सुखकी गंध भी नहीं होती । इस रसकी मुख्य पात्री हैं एक मात्र व्रज-गोपियाँ । ये पड़ोसियों और गुरुजनोंकी ताड़ना, भर्त्सना खुशी-खुशी सहन करते हुए भी उन्हें प्रेम-चक्षुओंसे देखती हैं । इनका भाव पूर्णतः निष्काम है ।

प्यारी—आपने तो कहा कि गोपियोंमें काम नहीं होता किन्तु श्रुति कहती है, 'कामाद् गोप्यः ।' श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा है, 'निरन्तर कामक्रीडा जाँहार चरित' । यह क्या बात है ।

बाबाजी—श्रुति और चैतन्यचरितामृतकी बात जो तुमने कही वह ठीक है । केवल काम ही क्यों क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, प्रवंचना, कुटिलता आदि वृन्दाबनमें पूर्ण रूपसे विराज-

मान हैं । ब्रजगोपियोंका काम क्रोधादि रहित होना वैसा ही है जैसा कृष्णविमुख होना । काम क्रोध लोभ,मोह, मिथ्या व्यवहार इत्यादि ही तो उनकी उपासना हैं । फिर भी जो गोस्वामीगण 'काम'शब्दका उच्चारण करनेमें भयभीत होते हैं उसका कारण यह है कि प्रकृत जगतके लोगोंने अपने मनमें 'काम' शब्दके वास्तविक अर्थके स्थान पर एक प्रकारके कल्पित अर्थको धारण कर रखा है । 'काम' शब्दके उच्चारण मात्रसे ही उन्हें एक प्रकारके कुत्सित अर्थका बोध होता है । इसलिए पिता कन्याके निकट एवं भाई बहनके निकट इस शब्दका उच्चारण करनेमें संकोच करते हैं । इसलिए आचार्योंने कहा है, 'हे जीवों ! तुम 'काम' शब्दसे जो अर्थ लेते हो वह तुम्हारी नितान्तभूल है । वह हृदय-कलुषताको बढ़ानेवाला और भगवत्-पथ-विरोधी है, अतः त्याज्य है । हम जब वृन्दावनके मधुर भावोंके आचरणको 'काम' शब्दसे अभिहित करते हैं तो उसका तात्पर्य 'प्रेम'से होता है । काम प्राकृत है प्रेम अप्राकृत । काम अन्धकार है, प्रेम निर्मल चंद्रालोक; काम आत्म-सुखाभिलाषी है, प्रेम कृष्ण-सुखाभिलाषी; काम असपत्न है, प्रेम बहुजनलिप्सु । इसीलिए कहते हैं 'वृन्दावने अप्राकृत नवीन मदन कामबीज कामगायत्री,जाहार उपासन' । 'काम'का शाब्दिक अर्थ है, 'कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' अर्थात् अभिलाष एवं तृष्णा । ब्रज गोपियाँ कुलमान, मर्यादा, पातिव्रत्य धर्म और स्वर्गाभिलाष इत्यादिको तृणतुल्य त्यागकर एकमात्र कृष्णसुखाभिलाषिणी और इसलिए आत्मसुखविवर्जिता हैं । यह काम अप्राकृत है । जहाँ तक तृष्णा का संबंध है, गोपियोंकी तृष्णा इतनी है कि संसार सागरसे उसकी निवृत्ति नहीं हो पाती । इसलिए वे प्रेम सागरमें कूद पड़ती हैं । इस प्रकार तृष्णा-निवृत्ति होना तो दूर रहा वह और बढ़ने लगती है । वे रस-

मयतनु नवजलधर श्यामसुन्दरका अवलंबन कर रातदिन अप्राकृत रसका आस्वादन करने लगती हैं। फिर भी उनकी प्यास नहीं बुझती, उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। अब तुम्हीं बताओ गोपियाँ निष्काम हुईं या पूर्णकाम। केवल काम शब्दके कुत्सित अर्थका निराकरण करनेके लिए ही 'निष्काम-निष्काम' कहते हैं। सचमुच गोपियोंको निष्काम कहना ही भूल है। संक्षेपमें जिस काममें आत्मसुखकी भावना रहती है, वही काम (कुत्सित वस्तु) कहलाता है और जो आत्मसुखसे रहित होता है, वह प्रेम (जीवनकी आराध्य वस्तु) कहलाता है। उसा काम बीजसे कृष्णकी आराधना होती है और उसी कामग.यत्री से कृष्ण वशीभूत होते हैं। वही काम चेष्टा व्रजलीला है। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है:—

सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीडा साम्ये तार कहि काम नाम॥
निजेन्द्रिय सुखहेतु कामेर तात्पर्य।
कृष्णसुख तात्पर्य हय गोपीभाव वर्य॥
गोपीगनेर प्रेम रूढ़ महाभाव नाम।
विशुद्ध निर्मल प्रेम कभू नहे काम॥
काम प्रेम दोंहाकार विभिन्न लक्खन।
लौह आर हेम जईछे स्वरूपे विलक्खन॥
आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥
कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य हय प्रेम महाबल॥
लोकधर्म वेदधर्म देहधर्म कर्म।
लज्जा धैर्य देह-सुख आत्मसुख मर्म॥

दुस्त्यज आर्यपथ निज परिजन।
स्वजन करये जत ताड़न भर्त्सन॥

सर्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेमेर सेबन॥

प्रेमैव गोपरामाणां काम इतागमत् प्रथाम।
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वांछन्ति भगवत्प्रियाः॥

प्यारी—गोपियोंमें आत्म-सुखकी अभिलाषा न होती तो वह अपने शरीरको नाना प्रकारकी वेशभूषासे क्यों सजातीं, यदि उनकी आत्मेन्द्रिय तुष्टिकी इच्छा न होतो तो कृष्ण-संग की लालसासे बन-बनमें उन्हें खोजती क्यों फिरतीं।

बाबाजी—श्रीचैन्तय चरितामृतमें इस विषयकी मीमांसा इस प्रकार की गई है:—

तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीत।
सेह त कृष्णेर लागि[१] जानिह निश्चित॥

एइ देह कइल आमि कृष्णे समर्पण।
ताँर धन ताँर एई संभोग-साधन॥

ए देह दर्शन स्पर्शन कृष्णे संतोषन।
ए लागि करेन देहे मार्जन भूषन॥

आर एक अद्भुत् गोपी भावेर स्वभाव।
बुद्धिर गोचर नहे जाहार[२] प्रभाव॥

गोपीगण करेन जखन[३] कृष्ण दर्शन।
सुख बांछा नाहिं सुख हय कोटिगुन॥

[१] कृष्णके कारण, [२] जिसका, [३] जब।

गोपिका दर्शने कृष्णेर जे आनन्द हय।
ताहा हैते कोटिगुण गोपी आस्वादय॥
गोपिका दर्शने कृष्णेर बाड़े प्रफुल्लता।
शे माधुर्य बाड़े जार नाहिक समता॥
आमार दर्शन कृष्ण पाइल एत सुख।
एइ सुखे गोपीर प्रफुल्ल अंगमुख॥
गोपी शोभा देखि कृष्णेर शोभा बाड़े जत।
शेइ शोभा देखि गोपीर शोभा बाड़े तत॥
एइ मत परस्पर पड़े हुड़ा हुड़ि[1]।
परस्पर बाड़े केह मुख नाहिं मुड़ि॥
किन्तु कृष्ण सुख हय गोपी-रूप गुणे।
कृष्ण-सुखे सुख-वृद्धि हय गोपी गणे॥
अतएव शेइ सुख कृष्ण-सुख पोषे[2]।
एइ हेतु गोपी-प्रेमे नाहिं काम-दोषे॥
आर एक गोपी प्रेमेर स्वाभाविक चिन्।
जे प्रकारे हय प्रेम काम-गंध-हीन॥
गोपी-प्रेमे करे कृष्ण-माधुर्येर पुष्टि।
माधुर्य बाड़ाय प्रेम हञा महातुष्टि॥
प्रीतिविषयानन्दे तदाश्रयानन्द।
ताहा नाहिं निज सुख वांछार संबंध॥
निरुपाधि प्रेम जाँहा ताँहा एइ रीति।
प्रीति विषयसुखे आश्रयेर प्रीति॥

---

[1] होड़ [2] पुष्टि करता है।

मधुर रसका एक नाम पररस भी है। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनमें से प्रत्येक महाभूतके गुण उसके बाद वाले महाभूतमें संचारित होते रहने के कारण पृथ्वीमें प्रांचों महाभूतोंके गुण रहते हैं वैसे ही शान्त, दास्य, साख्य, वात्सल्य इन चारों रसोंके गुण मधुर रसमें वर्तमान रहते हैं। शान्तिका विश्वास, दास्यकी सेवा, सख्यकी मित्रता और वात्सल्यका स्नेह मधुर रसमें वर्तमान रहते हैं। इस मधुर रसकी एकमात्र अधिकारिणी ब्रजगोपियाँ हैं, स्थान श्रीवृन्दाबन है, विषय श्रीनन्दनन्दन हैं। ब्रजगोपियाँ कन्यका और परोढ़ा भेदसे दो प्रकारकी हैं।

कन्यका के विषयमें कहा हैं:—

अनूढाः कन्यकाः प्रोक्ताः सलज्जाः पितृपालिताः।
सखीकेलीषु विश्रब्धाः प्रायो मुग्धागुणान्विताः॥

अर्थात् जो वयःप्राप्ता, अविवाहिता, माता-पिता द्वारा प्रतिपालिता, पितृ गृहमें अवस्थिता, अपनी समवयस्का सखियों के साथ क्रीड़ा-कौतुक-परायणा और श्रीकृष्णके प्रति अनुराग-वती हैं उन्हें कन्यका कहते हैं। इनकी गणना प्रायः मुग्धाओंमें होती है।

परोढ़ाके विषयमें कहा है:—

गोपैर्व्यूढ़ा अपि हरेः सदा संभोगलालसाः।
परोढ़ा वल्लभास्तस्य ब्रजनार्योऽप्रसूतिकाः॥

अर्थात् जो ब्रजनारियां ब्रजवासी गोपोंकी परिणीता होकर भी अनुराग बलसे श्रीकृष्णके संभोग-सुख की अभिलाषिणी,

योगमाया पौर्णमासी देवीकी शक्तिके प्रभावसे पतिसंभोग विरहिता,अतएव अप्रसूतिका होती हैं, उन्हें परोढ़ा कहते हैं। ये परोढ़ा प्रेयसियाँ रूप, गुण, प्रेम, माधुर्य आदिमें सर्वश्रेष्ठ हैं। साधन-सिद्धा, कृपा-सिद्धा और मंत्र-सिद्धा, ये तीन भेद हैं। साधन सिद्धा दो प्रकार की हैं—यौथिकी और अयौथिकी। जिन्होंने अपने निज-जनोंके साथ एकत्र साधन कर सिद्धिलाभ की है उन्हें यौथिकी साधनसिद्धा कहते हैं। ये मुनिगण और श्रुतिगण भेदसे दो प्रकार की हैं। सीता सहित रामके दर्शनकर दण्डकारण्यवासी गोपालोपासक मुनियोंके हृदयमें गोपी विषयणी रति उद्भुत हुई। उसी भावसे बहुत दिनों तक उपासना करनेसे ब्रजगोपियां की देह प्राप्त कर वे कृष्णमें अनुरक्त हुए। इसी प्रकार समस्त सूक्ष्मदर्शिनी श्रुतियोंने ब्रज-लीला-दर्शनसे परमाश्चर्यान्विता और तद्भावलिप्सु हो गोपीदेह लाभ कर कृष्णमें अनुराग प्राप्त किया। इन दोनों प्रकारकी गोपियों को यौथिकी साधन सिद्धा कहते हैं।

अयौथिकी तीन प्रकारकी हैं,साधन सिद्धा,कृपा सिद्धा और नित्य सिद्धा। जो व्यक्ति ब्रजगोपियोंके भावसे विभावितहो साधन करते-करते ब्रजमें गोपीदेह लाभकर कृष्णानुरागी होता है उसे अयौथिकी साधनसिद्धा गोपी कहते हैं। जो गोपियोंके कृष्णसंभोग सौभाग्यादि दर्शनसे लोभयुक्त हो और गोपियोंका आनुगत्य प्राप्त कर उनकी कृपासे ब्रजगोपकुलमें जन्म ग्रहण कर कृष्णमें अनुरागयुक्त होते हैं अथवा जो योगमायाकी कृपासे गोपियोंका आनुगत्य स्वीकार कर तत्तद्देहमें ही कृष्ण संग लाभ करते हैं, उन्हें कृपा सिद्धा कहते हैं। देव, मानव, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, कोई भी क्यों न हो उसपर एक बार

नित्यसिद्धाओंका कृपा-कटाक्ष होते ही उसे लीला प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। नित्यसिद्धा गोपियाँ इस प्रकार हैं:- श्रीराधिका, चंद्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामा, तारा भद्रा, चित्रा, गोपाली, धनिष्ठा, पाली, खञ्जनाक्षी, मनोरमा, मंगला, विमला, लीला, कृष्णा, शारी, तारावली, विशारदा, चकोराक्षी, कुंकुमा इत्यादि । इनमें ललिता, विशाखा, पद्मा और शैव्या इन चारको छोड़ बाकी सब यूथेश्वरी हैं । इन यूथेश्वरियोंमें श्रीमती राधिका और चन्द्रावली सर्व प्रधान हैं । इनमें भी 'राधिका सर्व-थाधिका हैं । ललितादि चारों गोपियोंने सभी प्रकारसे यूथेश्वरी बननेके योग्य होते हुए भी सखीभावके प्रति आकर्षण होनेके कारण सखीत्व ही ग्रहण किया है । इन नित्य सिद्धा गोपियोंमें से प्रत्येकके यूथमें लाख-लाख गोपियाँ हैं । सभी रूप, गुण प्रेममें अतुलनीया हैं । श्रीमती राधिका महाभाव स्वरूपिणी और असमोर्द्धगुणशालिनी हैं । श्रीचन्द्रावली और श्रीराधिकामें केवल तदीयता और मदीयताके भावको लेकर ही अन्तर दिखाई देता है । चन्द्रावली तदीयभावापन्ना हैं, अर्थात् मैं कृष्णचन्द्रकी हूँ, इस भावसे विभाविता हैं, इसलिए 'घृत स्नेहा' हैं । श्रीमती राधिका मदीयभावापन्ना हैं, अर्थात् कृष्ण मेरे हैं, इस भावसे भाविता हैं, इसलिए 'मधुस्नेहा' हैं ।

प्यारी—इससे तो यह समझमें आता है कि कृष्णसे किसी प्रकारका संबंध स्थापित कर कोई उनका भजन करे तो ब्रज-प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है । तो इसका मतलब हुआ कि वृन्दाबन संबंध राज्य है ।

बाबाजी—सामान्य दृष्टिसे देखेने पर तो यही लगता है कि वृन्दाबन संबंध राज्य है, किन्तु थोड़ा विचार करने पर स्पष्ट

हो जाता है कि श्रीवृन्दाबन संबंधातीत, अप्राकृत अनिर्वचनीय संबंधभावराज्य है। वृन्दाबन लीला केवल भावलीला है। वृन्दाबनमें समस्तभाव ही परकीय हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णका गर्भवास नहीं है। देवकीनन्दन कृष्णके जन्म ग्रहणके समय वसुदेव-देवकी उनके शंख,चक्र,गदा, पद्मधारी चतुर्भुज रूपका दर्शनकर अनेक प्रकारसेउनकी स्तुति करने लगेतो कृष्णने उन्हें आदेश किया,'मुझे गोकुलमें नन्दके घर रखकर वहाँसे यशोद-नन्दिनी महामायाको ले आओ। आदेश पाकर वसुदेव श्रीकृष्णको गोदमें ले गोकुलको चल दिये। जैसे ही वे बीच यमुनामें पहूँचे, श्रीकृष्ण गोदमें से गिर गये। तब वसुदेव अत्यन्त व्याकुल हो उन्हें ढूंढने लगे। थोड़ी ही देरमें कृष्ण मिल गये और वे उन्हें लेकर फिर गोकुलकी ओर चल दिये। तात्पर्य यह कि यमुना-जलमें गिरनेके बहाने मथुरानाथ नारायण तो अंतर्हित हो गये और रसमय श्रीकृष्णचन्द्र आविर्भूत हो गये। यही कृष्ण वृन्दावनेश्वर ब्रजेन्द्रनन्दन नवकिशोर, नटवर, गोपवेश और वेणुकरधारी हैं। यशोदादेवी के गर्भजात पुत्र न होते हुए भी उनका नाम यशोदानन्दन हुआ। माँ यशोदा और नन्द इत्यादि ठीक पुत्र भावसे कृष्णका लालन-पालन, ताड़न-भर्त्सन आदि करते हैं। इसीलिए कृष्णने कहा है—

माता मोरे पुत्र-भावे करये बन्दन।
सखा सखाभावे करे स्कन्धे आरोहण॥
प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।
वेदस्तुति हइते[1] सेओ[2] हरे मोर मन॥

अन्यत्र कहा है:—

उपपति भावे भजे ब्रजरमागण।
ताहादेर प्रेमे आमाय करे याकर्षण॥

---

[1]वेद स्तुति से भी अधिक [2]वह

ऊपर सब स्थानों पर 'भाव' शब्द इस बातका द्योतक है कि श्रीवृन्दाबन लीला परकीया है। अर्थात् पुत्र भावसे तात्पर्य हुआ—पुत्रके प्रति जैसा भाव होता है ठीक वैसे भावसे न कि पुत्ररूपसे। इसी प्रकार सखा रूपसे नहीं, सखाभावसे। उपपति रूपसे नहीं उपपति भावसे। तुम्हीं बताओ कि वृन्दाबनमें गोप-गोपियोंके साथ कृष्णका क्या संबंध था। यदि कोई ग्रंथकार देवकीनन्दन कृष्णका यमुना जलमें गिरनेके बहाने अंतर्धान होना स्वीकार न करें तो भी भावका परकीयत्व असिद्ध नहीं होता, क्योंकि मथुरानाथ कृष्ण तो क्षत्रिय हैं और ब्रजवासीगण गोप अर्थात् वैश्य। वैश्य जातिके व्रज वासियोंके साथ कृष्णका क्या संबंध हो सकता है? इसीलिए कहा है, वृन्दावन संबंधातीत राज्य है। एक अन्य स्थानपर ब्रजवासियोंका स्वरूप-निर्देश इस प्रकार है—

गमन नटन लीला बचन संगीत कला।
मधुर चाहनि आकर्षण।
रंग बिनु नाहिं अंग भाव बिनु नाहिं संग॥
रसमय देहेर गठन॥

स्वभावसे ही ब्रजवासीगण भाव छोड़ अभावका संग नहीं कर सकते।

प्यारी—किस भावकी उपासना करने से ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णकी प्राप्ति होती है।

बाबाजी—ब्रज-उपासनाका मूलाधार है अनुराग अर्थात् प्रेम। यह प्रेम जितना ही विशुद्ध होगा उतना ही उपासनाका मार्ग सुगम होगा और उतना ही कृष्ण निकट आते जायेंगे।

इस विशुद्ध प्रेमका अवलम्बन लेकर–'ब्रज जनार कोन एक भाव लञा भजे। भाव योग्य देह पाइया कृष्ण पाय ब्रजे।'—किसी भावसे भजन करने पर ब्रजमें भाव योग्य देह मिलती है और कृष्णकी प्राप्ति होती है। इसमें आनुगत्य प्रधान सहायक है। बिना आनुगत्यके भजन करने पर भी प्राप्ति नहीं होती।

प्यारी—अच्छा, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर पाँचोंमेंसे कौनसा रस श्रेष्ट है।

बाबाजी—रसके तारतम्य अथवा उपासना पद्धतिके भले-बुरेकी बात में नहीं जनता। जिसको जिस रसका लोभ है उसके लिए वही सर्वश्रेष्ट और अनिर्वचनीय आनन्द देने वाला है। तभी श्रीचैतन्य चरितामृतमें कृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है:—

कृष्ण प्राप्तिर उपाय बहुविध हय।
कृष्ण प्राप्तिर तारतम्य बहुत आछय॥
किन्तु जार जेइ भाव शेइ सर्वोत्तम।
तटस्थ हञा बिचारिले आछे तारतम॥
पूर्व-पूर्व रसेर गुण परे परे हय।
दुइ तिन गणने पञ्च पर्यन्त बाड़य॥
गुणाधिक्ये स्वादाधिक्य बाड़े प्रति रसे।
दास्य सख्य वातसल्येर गुण मधुरेते बइसे॥
\+ \+ \+ \+
परिपूर्ण कृष्णप्राप्ति एइ प्रेमा हइते।
एइ प्रेमार वश कृष्ण कहे भागवते!

प्यारी—इससे तो यह जान पड़ता है कि मधुरभाव ही सर्व-

श्रेष्ठ है। इसी मधुरभावकी उपासना प्रणाली मुझे एक बार अच्छी तरह समझा दीजिए।

बाबाजी—इस उपासना-प्रणालीको मुझे समझानेकी आवश्यकता नहीं। एक बार चैतन्यचरितामृत देखलेनेसे ही अच्छी तरह समझमें आ जायेगी।

राधा कृष्ण लीला हय अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भावेर ना हय गोचर॥
सबे एक सखीगणेर इँह अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार बिस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला बिस्तारिया सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखी भावे जेइ तारे करे अनुगति॥
राधाकृष्ण कुञ्ज सेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय।

\+ \+ \+ \+

सखीनां सङ्गिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तत्तत्कृपालंकारभूषिताम्॥
विभुरपि सुख-रूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः।
क्षणमपि नहि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः॥
प्रवहति रसपुष्टि चिद्विभूतीरिवेशः।
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः॥

\+ \+ \+ \+

सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन।
कृष्ण सह निज लीलाय नाहिं सखीर मन॥

कृष्ण सह राधिकार लीला जे कराय।
निजकेलि हैते ताहे कोटी सुख पाय ।।
राधार स्वरूप कृष्ण-प्रेम कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव पुष्प पाता ।।
कृष्णलीलामृते जदि लताके सिञ्चय।
निजसेक हइते पल्लवाद्येर कोटि सुख हय ।।
यद्यपि सखीर कृष्णसङ्गमे नाहिं मन।
तथापि राधिका जत्ने करान सङ्गम ।।
नाना छले कृष्णे प्रेरि सङ्गम कराय।
आत्म-कृष्णसङ्ग हइते कोटि सुख पाय ।।

\+ \+ \+ \+

सेइ गोपीभावामृते जार लोभ हय।
वेदधर्म त्यजि सेइ कृष्ण के भजत ॥
रागानुगामार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनन्दन ।।
अतएव गोपीभाव करि अंगीकार।
निरंतर चिन्ते राधाकृष्णेर बिहार ।।

अपनी सिद्ध देहकी मनमें सदा भावना करते हुए, प्राकृत देहका विस्मरणकर उसी अप्राकृत चिन्मय देहमें अवस्थान करते हुए और अपनी यूथेश्वरीका अनुगमन कर अष्टकाल सेवा करते-करते भाव स्थायी हो जाता है और फिर उसी भावके योग्य देह लाभ होता है।

प्यारी—तो, यह सेवा कायिक नहीं मानसिक है ?

बाबाजी—उपासक की तीन अवस्थएँ हैं—प्रवर्त्त, साधक और सिद्ध। ये तीनों प्रकारके उपासक कायिक, वाचिक और

मानसिक रूपसे सेवा करते हैं। जो व्यक्ति किसी कामनासे भक्ति करते हैं किन्तु श्रद्धा या निष्ठासे रहित होते हैं उन्हें प्रवंत भक्त कहते हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं—प्रवर्त्त-प्रवर्त्त साधक-प्रवर्त्त और सिद्ध-प्रवर्त्त। कामना-सिद्धिके लिए श्रद्धाकी कोमलताके अनुरूप प्राप्त संगके अनुसार आचरण करनेवाला और दूसरोंमें दोष दृष्टि रखनेवाला व्यक्ति प्रवर्त्त-प्रवर्त्त भक्त कहलाता है। गुरु वाक्यमें थोड़ी श्रद्धा रखनेवाले और कामना-सिद्धिके निमित्त नाना प्रकारसे याजन करने वाले भक्तोंके साथ उसी प्रकारसे याजन कर बादमें अनुताप करने वाले व्यक्तिको साधक प्रवर्त कहते हैं। वासानानुकूल फलप्राप्तिकी कामनासे साधु, शास्त्र और गुरु वाक्यके दोष-गुणकी समालोचना करते हुए, अतृप्त भावसे काम्यकर्मादि द्वारा भगवदर्चना करनेवालेको सिद्ध प्रवर्त्त कहते हैं। जो श्रद्धावान है, जिसकी श्रीकृष्णमें रति है जो नानारूप विघ्नादिसे विचलित हो जाता है, जो भक्ति-याजन परायण है भक्ति चिन्ह धारण करने वाला है, उसे साधक कहते हैं। ये साधक भी तीन प्रकारके हैं—प्रवर्त साधक, साधक-साधक और सिद्ध-साधक। साधु शास्त्र, एवं गुरुवाक्यको मन ही मन समाचोचना द्वारा समन्वित कर श्रद्धा-सहित विधिपूर्वक याजन करने वाले साधकको प्रवर्त्त कहते हैं। संबंध-निर्धारणपूर्वक श्रद्धा-सहित भक्ति-यजन, ईश्वर-प्रेम भक्त-मैत्री' अज्ञ पर कृपा, शत्रुके प्रति उपेक्षा करने वालेको साधक-साधक भक्त कहते हैं।

अद्वेष्टा सर्वभूता नां सर्वप्राणिहिते रतः।
फलेष्वासक्तिरहितो मन्निष्ठो याजकः सुधी॥
निर्ममो निरहंकारो यतात्मा दृढ़निश्चयः।
विकारैः सात्विकैर्युक्तः सिद्धत्वं साधकस्य तु॥

अर्थात् सभी जीवोंके प्रति द्वेषभावसे रहित, प्राणीमात्र का हितू, फलकी इच्छासे रहित, भगवन्निष्ठ, याजनकारी, ममता शून्य. निरहंकार, संयतचित्त, सात्त्विकादि विकारयुक्त, दृढ़ विश्वासी व्यक्तिको सिद्ध-साधक कहते हैं।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तः. कृष्णाश्रितश्रियः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी यथालाभ सुखीक्षमी।
स्थिरधीः सन्ततप्रेम सौख्यस्वादपरायरणः ॥
निराशी सात्विकैर्यूक्तः फलासंगविर्वाजितः।
शुभाशुभपरित्यागी सिद्धः स्यान्मुक्तलिङ्गकः।

अर्थात् न तो किसीको उद्वेग पहुंचाने वाला और न स्वयं किसीसे उद्विग्न होने वाला हर्ष, रोष, भय और उद्वेग-शून्य, कृष्ण सेवामें रत, निन्दास्तुतिमें सम-भाव रखने वाला, मितभाषी, यथालाभ संतुष्ट, क्षमाशील, धीर, सर्वदा प्रेम-सुखके आस्वादनमें तत्पर, निराशी, सात्विक भुषणोंसे भूषित, फलकी इच्छासे रहित और शुभाशुभपरित्यागी व्यक्तिको सिद्ध कहते हैं। ये साधन-सिद्ध, कृपा-सिद्ध और नित्यसिद्धके भेदसे तीन प्रकार के होते हैं। श्रीगुरुवाक्यमें दृढ़ श्रद्धा रखने वाले, भावेक-निष्ठ, कृष्णगुणानुकथनमें आत्म-विस्मृत और विकल हो जाने वाले, कृष्णसुखाभिलाषी, प्रेमानुरागवान्, परिचर्यापरायण, कृष्जार्थ ही समस्त चेष्टाएँ करने वाले, साधन फल त्यागी व्यक्तिको साधन-सिद्ध कहते हैं, जैसे—मार्कण्डेय, ध्रुव, श्रुतिकन्या, मुनि-कन्यागण इत्यादि। कृपासिद्ध के लिए किसी भजन क्रिया की अपेक्षा नहीं होती। उनमें बाहरी क्रियाओंके न होने पर भी आन्तरिक अनुराग, श्रद्धा, हृदय की कामुकता और व्याकुलता

का होना ही पर्याप्त होता है। कृपा-सिद्धके लिऐ पात्रा-पात्र, योग्या-योग्य का विचार नहीं होता। जिससे मन संतुष्ट होता है उसी पर अनुग्रह होता है। वही कृपा-पात्र होता है। प्रह्लाद, बलि, शुकदेव, यज्ञपत्नी इत्यादि कृपा-सिद्ध हैं। श्रीमतीराधिका चन्द्रावली, ललिता, विशाखा इत्यादि नित्य सिद्धा हैं। चाहे कितना भी जप-तप, भजन साधन, नियम निष्ठा क्यों न की जाय, गुरुकृपाके बिना काम नहीं बनता। गुरुकृपाके बगैर किसी की कृपा संभव नहीं। यदि कोई साधन पथ पर अग्रसर होना चाहे तो सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव को संतुष्ट करने का उपाय करे—अक्षय गुरु-कृपा प्राप्त करे—श्रीगुरुदेव का आनुगत्य ग्रहण करे। अत्यन्त कष्ट साध्य कार्य भी सुगम हो जायगा—अलभ्य वस्तु भी अनायास प्राप्त होगी।

प्यारी—गुरुदेव यदि निकट न हों तो क्या करना चाहिए।

बाबाजी—भाई, गुरुदेव के निकट न होने पर जीव एक क्षण भी नहीं रह सकता। बताओ, जब तुमने मातृगर्भसे जन्म लिया तो मातृस्तन हाथमें ले दुग्धपान करने की शिक्षा तुम्हें किसने दी। क्षुधार्त होने पर रो-रोकर माँ को पुकारना किसने सिखाया। थोड़ा बड़ा होने पर किसने माँ, बाबा-दादा बोलना सिखाया। किसने अपना-पराया, भला-बुरा, आग-पानि, शीत-ग्रीष्मका अनुभव कराया। किसने हाथ पकड़ कर चलना सिखाया। किसने वर्णज्ञान कराया? हमें जिस समय जैसी आवश्यकता होती है, भगवान् गुरुरूपमें हमारे पास रहकर ठीक वैसी ही शिक्षा देते हैं। कभी साक्षात् रूपमें उपस्थित होकर कोई बात समझा देते हैं तो कभी अंतर्यामी रूपमें आधुनिक

विज्ञान कहता है कि शिक्षाके लिये गुरुकी आवश्यकता नहीं। मैं पूछता हूँ कि जिस शिक्षाके फलस्वरूप आज तुम ज्ञानी वैज्ञानिक और विद्वान हो वह शिक्षा किसने दी ? किसने तुम्हारा हाथ पकड़ कर क-ख-ग-घ लिखाया और वर्णज्ञान कराया ? गुरु नित्य चिन्मय और सर्वव्यापी हैं। आवश्यकता होते ही वे उपस्थित हो जाते है। जब भी हमें किसी अभाव का बोध होता है, व्याकुल मन से पुकारने से वे दर्शन देते हैं।

प्यारी—जो व्यक्ति सब प्रकारसे अक्षम हो, उसे क्या करना चाहिए। उसका क्या कोई उपाय नहीं ?

बाबाजी—क्यों नहीं है। जो लिखना-पढ़ना नहीं जानता उसकी जमींदारी क्या नहीं चलती ? तुम्हें अगर लिखना नहीं आता और कहीं तुम्हें अपने नाम की सही करनी है तो क्या करोगे ?

प्यारी—क्या करेंगे। किसीसे बकलम दस्तख़त करादेंगे।

बाबाजी—इस विषयमें भी ठीक ऐसी ही बात है। यदि कोई काम नहीं कर सकते या उसकी भलाई-बुराई नहीं सोच सकते तो किसीको अपना क्षमतापत्र दे दो, सुचारु रूपसे कार्य चलता जायेगा—घर बैठे फायदा होगा।

प्यारी—बात तो बिलकुल ठीक जान पड़ती हैं। मेरे जैसे अशक्त, क्षुद्र जीवके लिए यही मार्ग सुगम है। जरा इसे अच्छी तरह जमझा दीजिए।

बाबाजी—समझानेके लिए कोई खास बात नही है। एक बार मन वचन कर्मसे श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दो और सरल मनसे कहो—'प्रभो ! मैं आपके श्रीचरणोंमें

बिक गया हूँ। आजसे अपना सारा कर्त्तव्याकर्त्तव्य आपके ऊपर छोड़ करमैं निश्चिन्त हूँ।' ऐसाकर फिर अपने संबंधमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा विचार न लाओ। यदि गुरुदेवके आदेशानुसार उनके होकर कुछ कर सकते हो तो करो, किन्तु सावधान,लाभकी आशासे नहीं। फलाफल उनका है,रातदिन मन में यही धारणा रखो। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' अर्थात् भगवान्ने अर्जुनको लक्ष्य करके जोगोंको शिक्षा दी कि तुम मेरे हाथों सदाके लिए बिके हुए हो। तुम्हारा केवल कर्म करनेका अधिकार है। फलाफलके भोक्ता तुम नहीं हो। एक जगह कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

अर्थात् हे अर्जुन तुम जो करो, जो खाओ, जो हवन करो, जो दान करो, जो तपस्या करो, उसका समस्त फलाफल मुझे समर्पित कर दो। इसीको 'क्षमता पत्र देना' कहते हैं। तुम अपने बारेमें चिन्ता न करो। वे तुम्हारी चिंता करेंगे।

प्यारी—पर गुरुदेवने जो शिष्यको याजन करनेका आदेश किया है, वह कैसे ?

बाबाजी—वह याजन तुम्हारा नहीं है, उन्हींका है। जिस दिनसे तुमने उनके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण किया उसी दिनमे वे अंगीकार पत्र द्वारा तुम्हारे निकट पूरी तरह बंध गये। वे तुम्हें निश्चय ही मंजिल पर पहुंचा देंगे। उन्होंने जो तुम्हें याजन करनेका आदेश किया वह केवल अपनी सहा-यताके लिए। कल्पना करो कि तुम नवद्वीप जानेके लिए एक

नौका किराये पर लेते हो। माँझीको तुम नवद्वीप तकके दस टके देनेको कहते हो! वह तुम्हारी बात मानकर नाव छोड़ देता है। कुछ दूर जाकर वह कहता है—'महाशय, यदि आप भी एक डाँड़ लेकर नाव खेने लगें तो मुझे भी कुछ सुविधा हो जाय और आप भी कुछ जल्दी पहुँच जायें।' तुम यदि वैसा करते हो तो उसका भी उपकार होगा तुम्हारा भी रास्ता जल्दी तय हो ज़ायगा और यदि नहीं करते हो तो तुम्हारे ऊपर मांझीका जोर भी नहीं। जितने भी समयमें हो, माझी तुम्हें नवद्वीप ले जानेके लिए वाध्य है। किन्तु यदि तुम डांड़ हाथमें ले विपरीत दिशामें नाव खेने लगो तो माँझी क्या करेगा? वह तुम्हारे निकट विनीत भावसे प्रार्थना करेगा—'भाई आप कुछ मत कीजिए, चुपचाप नावमें बैठिए। मैं, जितनी भी देर में होगा आपको गम्य स्थान पर पहुंचा दूंगा।' तुम माझीकी बात न सुन कर विपरीत दिशामें ही नाव खेते रहो तो वह और कोई चारा न देख तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़ देनेको वाध्य हो जायगा। तुम्हारी नौका समुद्रमें चक्कर काटने लगेगी। तुम्हारे सामनेसे कितनी-कितनी नौकाऐं निकलती चली जायेंगीं किन्तु तुम्हारी नौका कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल रूपसे चलती हुई एक ऐसी जगह पहुँचेगी जहां चारों ओर ऊँच-ऊँची लहरें उठ रही होगीं, वहाँ से गम्यस्थानकी दिशाका अनुमान करना तुम्हारे लिए कठिन हो जायगा। बताओ, इस अवस्था के लिए माझी दोषी है, या तुम? रोग होने पर नियमित रूपसे औषधि लो और सुपथ्य ग्रहण करो, शीघ्र अच्छे हो जाओगे। औषधि न खाओ तो न सही लेकिन कुपथ्य न करो तो भी ठीक हो जानेकी आशा हो सकती है। किन्तु तुम औषधि भी न खाओ, कुपथ्य भी करो तो कैसे ठीक होगे?

श्रीगुरुदेवके ऊपर निर्भर रह कर निश्चेष्ट रहो, उनके वचनों पर विश्वास करो, अभीष्ट-प्राप्ति होगी। यदि कुछ करनेका मन हो, गुरुदेवके आदेशानुसार कार्य करो। श्रीगुरुदेवके ऊपर निर्भर रहो और अपनी ओर से चेष्टा भी करते रहो, वह भी प्रतिकूल, तो बोलो, फल कैसे होगा ? सुगम पथके मालिक तो स्वयं बन जाओ और दुर्गम पथ पर जो करें वह प्रभु ! कष्टसाध्य कार्य तो गुरुदेवको अर्पित कर दो और फलप्राप्तिके लिए उतावले रहो तो कैसे चलेगा। पारमार्थिक भावमें दूकानदारी नहीं चलती। जो हो सके करो, न हो सके उन पर डाल दो।

प्यारी---विषय, आश्रयतत्व क्या है, यह भी बताना होगा।

बाबाजी---विषयका अर्थ है उपास्य वस्तु अर्थात् अभीष्ट वस्तु। उस विषयकी प्राप्तिसें जो सहायक होता है उसे आश्रय कहते हैं। आश्रयका अर्थ है अवलंबन। यह पाँच प्रकारका होत है—नामाश्रय, गुरुपदाश्रय, मंत्राश्रय भावाश्रय और भक्ताश्रय। नामकी कृपा न होनेसे कोई कार्य नहीं हो सकता। पहले अपनी रुचिके अनुसार किसी भी नामका आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए। फिर वही नाम करते-करते नामकी कृपासे चित्तकी मलिनता दूर हो जाने पर नामके प्रतिपाद्य विषय अर्थात् नामीके प्रति लोभ उत्पन्न हो जायगा। लोभ उत्पन्न होने पर लोभनीय वस्तुकी प्राप्तिके लिए मनमें व्यकुलता उत्पन्न होगी। यही व्याकुलता गुरु-प्राप्तिका प्रधान उपाय है। व्याकुलता उत्पन्न होते ही गुरुके चरणोंका आश्रय प्राप्त होगा। गुरुपदाश्रय प्राप्त हो जाने मात्रसे गुरुकी कृपासे मंत्र प्राप्ति होगी। नाम और मंत्र जप करते-करते भाव-संचार होगा। एक निष्ठतासे किसी भावका आश्रय लेते ही उसी भावके

भावाढ्य भक्तकी कृपा प्राप्त होगी। भावाढ्य भक्तकी कृपासे ही साधन सिद्ध होगा। भावाढ्य भक्त—अर्थात् विषयके अन्तरंग परिकर की कृपा प्राप्त कर उनके आनुगत्यमें उनके द्वारा आचरित और आदिष्ट पंथका अवलम्बन करनेको आश्रय कहते हैं। इस प्रकार भावाश्रय प्राप्त कर लेने पर फिर कोई बाधा नहीं रहती। यहाँ तक कि विषय उसे स्वयं आकर्षित कर लेता है। इसीलिए श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयने कहा है—'आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे। आर सब मरे अकारण।' वृन्दाबन के विषय हैं यशोदानंदन श्यामसुन्दर। दास्यभावके आश्रय हैं रक्तक,पत्रक आदि, वात्सल्य भावके नन्द, यशोदा इत्यादि, सखाभावके श्रीदाम, सुबल आदि,मधुर भावके श्रीराधा चंद्रावली इत्यादि। ब्रज-उपासना की मूल भित्ति है आनुगत्य। शुरूसे आखीर तक सबको आनुगत्य स्वीकार करना पड़ता है। नामाश्रय ग्रहण कर लेने के बाद श्रीगुरुपदाश्रय प्राप्त करने पर नामाश्रय छोड़ देना पड़ेगा; ऐसी बात नहीं। प्रवर्त, साधक, सिद्ध किसी अवस्थामें किसी आश्रय को छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु आनुगत्य भाव उत्तरोत्तर प्रबल होता जाता है, क्योंकि प्राप्य वस्तु जितनी निकट आती जाती है उसके साधक के प्रति उतनी ही कृतज्ञता-स्वीकृति बढ़ती जाती है।

प्यारी—प्रेम का अर्थ क्या होता है ?

बाबाजी—प्रेम का अर्थ है विशुद्ध स्नेह। यह विशुद्ध स्नेह एक मात्र ब्रज वृन्दाबन को छोड़ और कहीं नहीं है। यह हमारे जैसे स्वार्थ-परायण व्यक्तियोंके लिए सर्वथा असंभव है। यदि भाग्य से ऐसा प्रेम किसी को किसी व्यक्तिके प्रति भी

उत्पन्न हो जाय तो भी वह उसकी ब्रज-प्राप्तिमें सहायक होता है। गोविन्द घोष ठाकुरके हृदयमें अपने पुत्रके प्रति विशुद्ध वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ। उसी वात्सल्यसे उन्हें कृष्ण-प्राप्ति हुई। कृष्णचन्द्र उनके पुत्रको आत्मसात् करके स्वयं घोषठाकुर के पुत्रके रूपमें रहने लगे। संसारमें ऐसे अनेक दृष्टांत पाये जाते हैं। प्रेम अंधा होता है। वह कुल, शील, जाति, विद्या, रूप, गुण, भले, बुरेका विचार करना नहीं जानता। योग, जप-तप, ज्ञान-ध्यान, भजन-साधन नहीं देखता। प्रेम प्राण चाहता है, आत्म समर्पण करना पसंद करता है। प्रेम प्रतिदान चाहे बिना अपने आप मिलता है। इस विषयमें एक सुन्दर दृष्टांत सुनो—

औरंगजेब बादशाह एक बार दुष्ट मंत्रियोंके परामर्शसे बड़ा ही देव-द्वेषी हो उठा। यहाँ तककि जगह-जगह घूम-घूम कर देवी-देवताओंके अनेकों मंदिर तोड़ने लगा और श्रीमूर्तियोंमें से किसीका हाथ, किसीका पैर, किसीकी कमर तोड़-तोड़ कर दिल्ली भेजने लगा। यादवाचल नामक ग्राममें एक साधु एक कृष्णमूर्तिकी सेवा करते थे। एक दिन उन्होंने बादशाह के आगमनकी चर्चा सुनी तो अत्यन्त व्याकुल होकर वे बादशाहके हाथोंसे अपनी इष्टमूर्त्तिकी रक्षा का उपाय सोचने लगे। अन्तमें उन्हें यह उपाय सूझा कि जमीनमें एक गड्ढा खोद कर उसमें ठाकुर को समाधि दे दी जाय। इसी विचार से वे जमीन खोदने लगे। खोदते-खोदते जब गड्ढा चार हाथका हो गया तब उन्होंने श्रीमूर्ति लाकर उस गड्ढेमें रखी। इच्छामय की इच्छाके विरुद्ध कार्य करनेकी किसमें सामर्थ्य है। साधु जब गड्ढा बन्द करने लगे तो देखते क्या हैं कि गड्ढा ठाकुर की कमर तक ही गहरा है। फिर गड्ढे को और गहरा खोद कर

ऊपर आकर देखा तो वैसा का वैसा ही । ऐसा ही करते-करते बादशाहके आदमियोंने आकर उनके मंदिर को गिरा दिया और श्रीमूर्तिको लेकर चल दिये । मूर्तिको बड़ा ही सुन्दर देख बादशाह की कन्याने खेलनेके लिये पितासे उसे माँग लिया । यथासमय बादशाह दिल्ली पहुँचे । जैसेजैसे बादशाहाकी कन्या बड़ी होती गई,मूर्ति पर उसका स्नेह बढ़ता गया, यहाँ तक कि एक क्षणको भी उसके लिए श्रीमूर्तिका साथ छोड़ना असंभव हो गया । नहाते, खाते, सोते, बैठते, सभी समय वह उसे साथ रखती । प्रेममय ठाकुर प्रेममें बँध गये । धीरे-धीरे शाहजादीके साथ बातचीत,शयन-भोजन-विलासादि भी चलने लगा ।

कौतुकी ठाकुर कुछ कौतुक न करें,यह कैसेहो सकता था । अतः रामानुज स्वामी को स्वप्नमें आदेश किया कि 'मैं दिल्ली में औरंगजेब बादशाहके घर हूं,तुम मुझे वहाँसे लाकर सेवा करो ।' प्रातःकाल बहुतसे वैष्णवोंको साथ ले यतिराज दिल्ली की ओर चल पड़े । दिल्ली पहुंच कर सोचने लगे कि ठाकुर को कैसे प्राप्त करें । किन्तु कोई उपाय समझमें नहीं आयातो बादशाहके चारों दरवाजों पर घिराव डाल दिया । बादशाहके पास खबर पहुंची कि बहुत से फकीरोंने दरवाजे रोक लिये हैं । उसी समय बादशाहने हरकारा भेजकर पता लगाया कि वे लोग धनजन नहीं चाहते; बादशाह के पास उनके एक ठाकुर हैं; उन्हीको चाहते हैं । सुनकर बादशाहने यतिराजको अपने दरबारमें बुलाया और जितने भी ठाकुर थे सबको दिखाकर कहा—'तुम जो मूर्तियाँ चाहो ले लो ।' यतिराज यह नहीं पहचान सके कि उन्हें स्वप्नमें आदेश करने वाली मूर्ति कौन सी है । अतः बोले—'मैं कल सवेरे आपको बताऊँगा ।' रात्रिमें उन्हें स्वप्न

हुआ—'मैं बादशाह की मूर्तियोंमें नहीं, बादशाहकी कन्याके पास हूँ।' प्रातःकाल स्वामीजीने इस वृत्तान्तके साथ बादशाह की दासीके हाथों कन्या से मूर्ति देने के लिये कहला भेजा। कन्याने उत्तर भेजा—मूर्ति मेरे प्राणोंके समान है। मैं प्राण दे सकती हूँ, मूर्ति नहीं।' बादशाहने कन्यासे बहुत कहा कि वह जैसी चाहे मणिमाणिक्य खचित रत्नमयी मूर्ति ले ले और फकीरकी मूर्ति दे दे, किन्तु उसने कुछभी नहीं माना। बादशाह अपनी वचन रक्षाके लिए बड़े चिन्तित हो उठे। तभी उन्हें एक तरकीब सूझी। वे कन्या से बोले—'अच्छा, कल मैं दरबार में यह मूर्ति रखवा दूँगा; वह स्वयं चलकर जिसकी गोदमें पहुँच जायगी, उसी की हो जायगी।' सबने यह बात मान ली।

दूसरे दिन यही किया गया। हजार-हजार योगी-तपस्वी साधु-संन्यासी एक ओर,और वह आचार-नियम-निष्ठा-विहीना, योग-तप-रहिता, यवन-पुत्री एक ओर। प्रेममय ठाकुर किसकी मर्यादाकी रक्षा करें? प्रेमकी, या योग तपस्याकी किसको उच्च पद प्रदान करें यह विचारते हुए और रुनझुन-रुनझुन नाचते शाहजादीकी गोदमें पहुंच गये। बादशाह अवाक्! साधु सभी एकके बाद एक शाहजादीके प्रेमको 'धन्य-धन्य' कहने लगे। तब रामानुज स्वामी अत्यंत दुःखित हो त्रिदंड हाथ में ले बोले—'अरे लम्पट! अरे शठ! तेरा यदि यवन-गृहमें ही रहनेका मन था तो मुझे इस यवनपुरीमें बुला कर क्यों अपमानित किया? यह ले अपनी कण्ठी माला, अपना धर्म, अपना वेद। आजसे मैं प्रचार करूँगा कि संसारमें धर्म नहीं रहा, तेरे ऊपर ब्रह्मवधका पातक लगाऊँगा।' यह कह कर जैसे ही त्रिदंड फेंककर वे रोने लगे,ठाकुर शाहजादीकी गोदसे उनकीगोद

आ गये । शाहजादीने विरह-व्याकुल हो आहार निद्रा छोड़ प्राण त्यागनेका दृढ़ निश्चय कर लिया । बादशाह अनेक चेष्टाएँ करके भी उसे शांत न कर पाये । शाहजादीने कहा—'यदि प्राण-रक्षा चाहें तो मुझे साधुके साथ जाने दें ।' मन्त्रियोंके परामर्शसे बादशाहने यही किया । शाहजादी रामानुज स्वामी के चरण पकड़ कहने लगी—'बाबा, सुना है मेरे प्राणप्रिय देवता आपके समीप पुत्रवत् प्रतिपाल्य हैं, अतः मैं आपकी पुत्री हुई । आप मुझे अपने साथ ले चलें और सेवा-पूजाके समयके अतिरिक्त ठाकुरको मेरे पास रहने दें । यतिराजने और कोई चारा न देख शाहजादीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

यतिराजने ठाकुरका नाम रखा सम्पत्कुमार । कुछ दिन बाद शाहजादी सम्पत्कुमारसे बोली–'देखो प्राणनाथ ! मैं क्षण भरके लिए भी तुम्हारी विरह-यंत्रणा नहीं सह सकती । अतः ऐसा करो कि मुझे तुम्हारा पल भर भी वियोग न हो । प्रेममय ठाकुर प्रेमिकाकी पुकार सुननेके लिए बाध्य थे । एक दिन ठाकुर पालकी में शाहजादीके पास थे । शाहजादी उनके मुखचंद्रको अपने नयन-चकोरोंसे अपलक देखते हुए अविच्छेद सुधा-पान करने लगीं, अब वे उनसे एक पल भी बिलग नहीं हो सकती थीं । दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामीजी सेवाके लिए संपतकुमारको लेने गये तो देखा कि शाहजादी उन्हें अपने वक्ष पर लिटाये हुए चिर शान्ति लाभ कर रही हैं । उसी समय उन्होंने शाहजादीकी एक स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर संपत्कुमारके वाम भागमें स्थापितकी और यादवगिरिमें शाहजादीके समाधि-स्थान पर मन्दिर बनवा कर सेवा प्रकाशित की । प्रेमका कौतुक देखो ! शाहजादीने कोई शास्त्रादिके अध्ययन द्वारा कृष्णके

पूर्ण पूर्णतम ब्रह्म होनेका विश्वास प्राप्त कर उनसे प्रेम नहीं किया था। कृष्ण कोई देवता हैं या सुख-मोक्ष-प्रदाता हैं, यह धारणा भी उन्हें नहीं थी। वे केवल इतना जानती थीं कि यह एक खिलौना है। प्रेमकी विशुद्धता और प्रगाढ़ताके कारण उस खिलौनेके माध्यमसे ही उन्हें कृष्ण-प्राप्ति हो गई।

प्यारी—प्रेमको उत्पन्न करनेका उपाय क्या है।

बाबाजी—प्रेम नित्य-सिद्ध वस्तु है, उसकी उत्पत्तिका प्रश्न ही नहीं उठता। कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है।

नित्यसिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभू नय।
श्रवणाद्य शुद्ध चित्ते करये उदय।।

श्रवणादि किसी उपायसे चित्तको विशुद्धता उत्पन्न होते ही प्रेमका विकास होने लगता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रेम चाहता है—स्वच्छता, सरलता और कोमलता। कोई धनी एक कांचके बक्समें वहुतसे मणि-मणिक्य रख देता है। कोई दूसरा व्यक्ति उस काँचके बक्स पर कालिक पोत देता है। धनी मणि-माणिक्य न पाकर जगह-जगह उन्हें ढूंढता हुआ शोकसे कातर हो लोगोंसे उनकी प्राप्तिका उपाय पूछने लगता है। इसी प्रकार सबके हृदयमें प्रेमधन रहता है किन्तु हृदय की मलिनताके कारण उसे पानेमें असमर्थ हो लोग उसे इधर-उधर खोजते फिरते हैं। शास्त्रमें जो कुछ भी साधन-भजन कहे गये हैं वे सब केवल चित्त-शुद्धि-जन्य हैं। साधनादि हृदय-शोधक और उपयुक्त देह प्रस्तुत करनेमें सहायक मात्र हैं, प्रेमके जनक या भगवत्प्राप्तिके सहायक नहीं। साधनादिके साथ प्रेम या

भगवत्प्राप्तिका जन्य-जनक संवन्ध मान लेने पर उसके नित्यत्वकी हानि होती है। भगवान् सर्वव्यापी, सर्वकारण और सर्वनिकट हैं। वे सदा तुम्हारे निकट हैं। उन्हें पानेके लिए तुम्हें साधनोंकी क्या आवश्यकता ?

प्यारी—तो क्या साधनकी कोई प्रयोजनीयता नहीं ?

बाबाजी–साधन तो केवल सेवाकी योग्यता और चित्तकी स्वच्छता प्राप्त करनेके लिए हैं। यदि लीलाकी दृष्टिसे देखो तो कृष्ण लम्पट प्ररुष हैं, तुम युवती स्त्री हो। तुम यदि उनको खोजने निकलो तो क्या तुम्हारा धर्म नहीं जाता ? तुम अनेकों प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जि हो अपने घर बैठी रहो; तुम्हारे सौंदर्य पर मुग्ध हो लम्पट पुरुष कृष्ण स्वयं ही तुम्हें खोजेंगे। तुम्हारे हृदयमें प्रेम-रूपी कस्तूरीका विकास होनेसे गन्ध-प्रेमी कृष्ण-मृग स्वयं मदमत्त हो तुम्हें पानेकी चेष्टा करेंगे। कृष्ण प्रेम-भिखारी, भाव-ग्राही हैं। तुम भाव-भूषणोंसे भूषित हो, अनुरागकी साड़ी पहन, सर्वांगमें प्रेम-कस्तूरी-गंधका लेपन कर, अप्राकृत कला विलासमें कौशल प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। कृष्ण स्वयं तुम्हें पानेके लिए व्याकुल हो उठेंगे।

तब प्यारी बाबू रोते-रोते बाबाजी महाशयके चरणों पर गिर पड़े। बाबाजी महाशय उन्हें आलिंगन कर बोले—'भय क्या है भाई। निताइ चाँद परम दयालु, पतितपावन हैं, उद्विग्न होने की कोई वात नहीं। छल-कपट छोड़ उन्हें पुकारो, अभीष्ट लाभ होगा।'

प्यारी—छल-कपट किसे कहते हैं, समझ नहीं पा रहा हूं।

बाबाजी—छल-कपटके बहुतसे अर्थ हैं। अन्याभिलाषा, ज्ञान, कर्म (काम्यकर्म) भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि इत्यादि भी छल-कपटमें आते हैं। भक्तगण मुक्तिकी प्रार्थना करना तो दूर भगवान्‌के समीप इच्छुक होना भी पसन्द नहीं करते। शास्त्रमें कहा है—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युते।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥

दाताशिरोमणि निताइ चांद अयाचक को भी दान देते हैं, यहाँ तक कि-'जे ना लय तारे बले दन्ते तृण धरि। आमारे किनिया लह भज गौर हरि॥' द्वार-द्वार पर प्रेमकी गागर सिर पर रख 'कौन लेगा, कौन लेगा प्रेम-सुधा'की अवाज लगाते हुए जिन्होंने प्रेमधनका दान किया उनसे मांगकर अपनी वृत्ति खराब करनेसे क्या लाभ! इसीसे कहा है कि कामना-वासना-शून्य हो निताइ चॉदके आदेशका प्रतिपालन करो, अभीष्ट लाभ होगा।

प्यारी बाबू आनन्द विह्वल हो गद्‌गद् कंठसे कहने लगे—'आज मैं धन्य हुआ। मेरे हृदयमें बहुत दिनोंसे संचित संदेह आपकी कृपासे दूर हुए। मैंने अनेक साधुओंका संग किया किन्तु ऐसी सरल भाषामें कठिन तत्त्व मीमाँसा और किसीसे नहीं सुनी। श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना है कि जब एक बार दास कहकर अंगीकार कर लिया है तो अब कभी अलग न करें।'